Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जन ज्ञान

(मासिक)

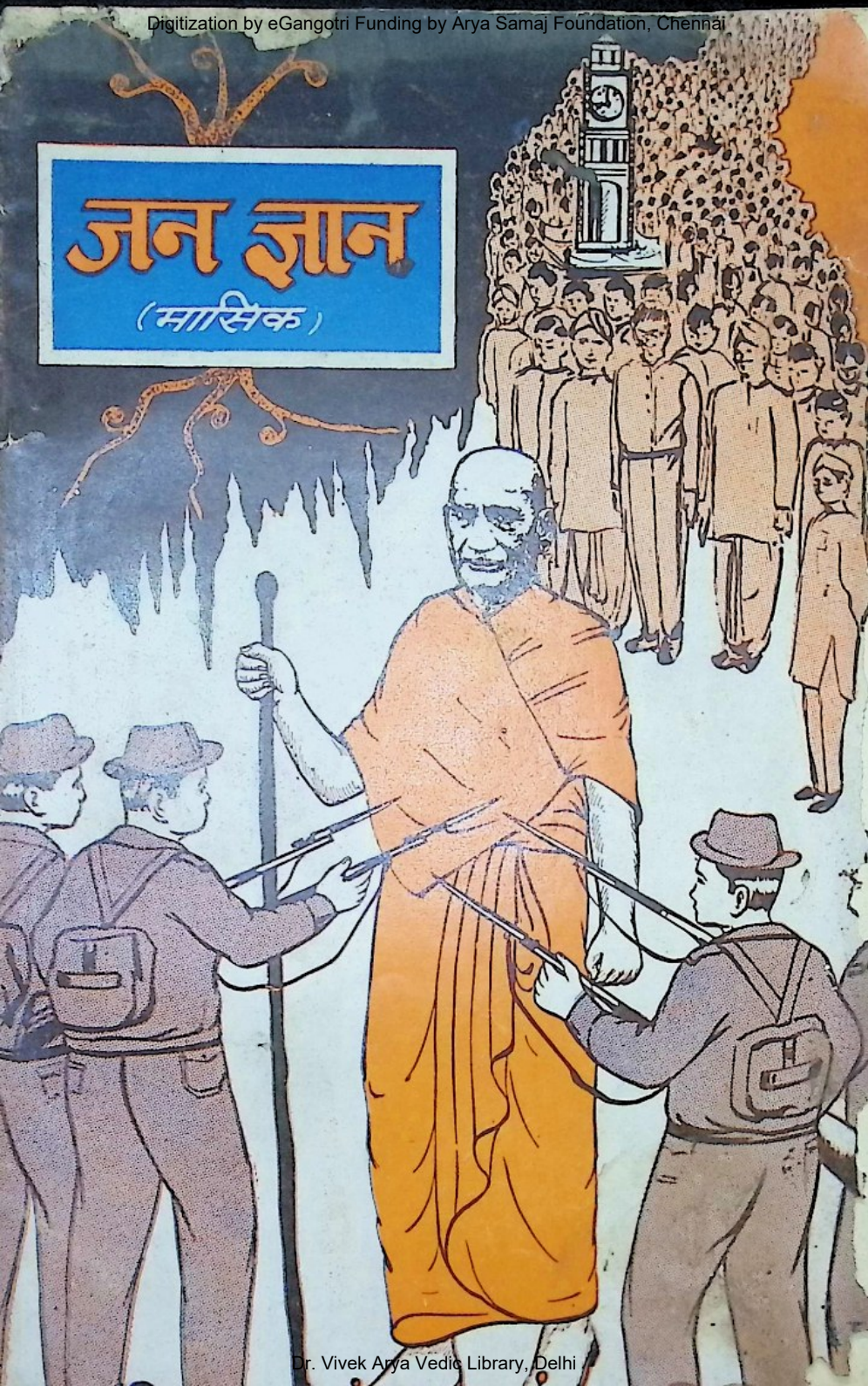

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महर्षि दयानन्द सरस्वती

जिन का कार्य पूरा करने के लिए शहीद श्रद्धानन्द हुए

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जन-ज्ञान
मासिक
सम्पादक
पंण्डित राकेश रानी
सह सम्पादक
—सुमेधा स्नातिका—
दूरभाष : ५६६६३६
पता
१५६७ हरध्यानसिंह मार्ग
[निकट ३१, नांईवाला]
करौलबाग, नई दिल्ली-५
वार्षिक मूल्य १५)
विदेश में ३ पौंड
(हवाई डाक से)
२ पौंड : समुद्री डाक से
आजीवन : २५१ रु०
वर्ष ८ : अंक ८
पौष संवत् २०३३
दिसम्बर १९७६

इस अंक का मूल्य
पाँच रु० केवल

मेरे शहीद !

तुम्हें श्रद्धांजलि देने के लिए,
मेरे पास शब्द नहीं हैं।
क्योंकि श्रद्धा और आनन्द
दोनों ही मैं खो चुका हूं।
अंधकार का प्रतिनिधि बनकर,
सब कुछ गहरे सागर में डुबा चुका हूं ?
तुम्हारी फुलवारी
जिसके लिए तुम्हारा बलिदान हुआ था।
आज मुझे याद नहीं है,
फिर तुम्हारी याद कैसे मनाऊं ?
श्रद्धा के फूल कैसे चढ़ाऊं ?
तुम शहीद थे,
जीवन भर शहीद रहे,
लाल लाल गौरव की पताका
फहराते, उड़ाते.....
उषा की लालिमा से पावन
तपोपूत तुम !
और
स्वार्थ के कीचड़ में फंसे,
पद-मोह-गद्दी की भूख में धंसे,
आपस में लड़ने में निष्णात,
हम तुम्हारे गीत गाते हैं।
और जो कुछ भी तुमने कहा था—
उसे झुठलाते हैं।
मेरे शहीद ! प्राण ! बलिदानी !
लाल रक्त की गरिमा के पुंज,
५० वर्ष पहले,
जो खून तुम्हारा गर्म-गर्म
वृद्धकाया से बहा था,
वही रक्त माथे पर लगा,
अगर हम व्रत कर सकें।
तुम्हारी राह पर चलने का.....
तो सब कुछ बदल सकता है।
बिगड़ा भाग्य बन सकता है। —भारतेन्द्रनाथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सम्पादकीय

शहीदों के चरणों में !

श्रद्धांजलि अर्पित करने की सामर्थ्य हम अपने में अनुभव नहीं कर पा रहे। आशा-श्रद्धा, आनन्द खोकर नैराश्य निशा में बैठकर उस ज्योति पुंज जीवित शहीद को कौन स्मरण कर सकता है।

प्राणों में प्रतिभा का प्रवाहित अजस्र स्रोत, जीवन में कर्म की गंगा का अविरल प्रवाह, शक्ति-भक्ति-साधना का संगम मिलकर कहलाया था श्रद्धानन्द·····

शहादत उसका धर्म था, स्वभाव था, जीवन था, सत्य उसके रोम-रोम में रमा था। ज्ञान से भरा उसका हृदय वेद की ऋचाओं से झंकृत था।

जीवन में जो ठीक समझा किया, विपरीत परिस्थितियों में भी अडिग रहकर लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए संघर्ष किया, सफलता पायी और सदा विजयी हुए।

गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली के संस्थापक, अछूतोद्धार के उद्घोषक, स्वतन्त्रता संग्राम के सफल सेनानी, हिन्दू-मुसलिम एकता के मार्ग दर्शक और शुद्धि मंत्र के प्रसारक के रूप में श्रद्धानन्द की दिव्य प्रतिभा को कौन विस्मृत कर सकेगा ?

आज उनकी बलिदान अर्धशताब्दी मनाते हुए यह आवश्यक था कि हम उनके जीवन में झाँक कर देखें, अतः उन्हीं के पुत्र सुप्रसिद्ध लेखक स्व० श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति लिखित महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ मेरे पिता हम 'जन-ज्ञान' की ओर से भेंट कर रहे हैं।

हमारी इच्छा है कि यह बलिदान अर्द्ध शताब्दी हमारे जीवन से निराशा और भटकाव को समाप्त कर दे, हम नयी शक्ति से कार्य क्षेत्र में लगें और राष्ट्रीयता मानवता, ज्ञान, सत्य और श्रद्धा के प्रवाह को भूमंडल में प्रवाहित करें।

धर्मान्ध व्यक्ति की गोली से वे शहीद हुए थे, किन्तु हम उनके कार्यों की पूर्ति कर उन्हें आज भी जीवित रख सकते हैं। उत्सव, भाषाण और प्रस्ताव नहीं उनके कामों को पूरा करने का व्रत लेकर ही हम श्रद्धांजलि अर्पित करने के अधिकारी होंगे।

'धर्म' पर संकट हो और हम सोते रहें, गुरुकुल उजड़ते रहें और हम देखते रहें, आपस में लड़कर हम अपने घर को जलाते रहें तो फिर कैसी शताब्दी, कैसी श्रद्धांजलि ?

अंतर में झांक कर देखो, अपने को टटोलो और आगे बढ़ो। महान् आदर्शों को संभालो, रास्ता बदलो·····भूलो नहीं, बलिदान का मार्ग—त्याग की राह····· ज्योतिर्मय प्रकाश आपको बुला रहा है।

—राकेश रानी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महान् सुधारक : श्रद्धानन्द

—महात्मा गांधी—

(स्वामी श्रद्धानन्द जी की २६ दिसम्बर १९२६ को धर्मान्ध व्यक्ति द्वारा हत्या करने पर यंग इण्डिया ६ जनवरी १९७६ में प्रकाशित लेख)

जिस बात की सम्भावना थी, वही हुई। आज से लगभग ६ मास पूर्व स्वामी श्रद्धानन्द जी साबरमती में एक-दो दिन ठहरे। बातचीत के प्रसंग में उन्होंने मुझे बताया कि उनके पास प्रायः ऐसे पत्र आते हैं जिनमें उन्हें कत्ल करने की धमकी दी होती है। ऐसा कौन-सा देश है, जहाँ के सुधारक को अपने लक्ष्य के लिए प्राणों की बाजी नहीं लगानी पड़ी ?

स्वामी जी एक सुधारक थे। वह वाक्शूर नहीं, कर्मशूर थे उनका विश्वास जीवित जागृत था। उसी के कारण उन्हें यह विपत्ति झेलनी पड़ी। वह वीरता की साक्षात् मूर्ति थे। उन्होंने आपत्ति में भी कभी साहस नहीं खोया। वह एक योद्धा थे और एक योद्धा रोग शय्या पर नहीं परन्तु लड़ाई के मैदान में मरना पसन्द करता है।

प्रभु उनके लिए एक शहीद की मृत्यु की कामना करते। इसीलिये रोग शय्या में पड़े रहने पर भी एक हत्यारे के हाथों उनकी मृत्यु हुई। गीता के शब्दों में —"सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्।।"

मृत्यु एक वरदान है। परन्तु उस योद्धा के लिए वह दुगुना वरदान है जो अपने लक्ष्य तथा सत्य के लिए प्राण दे देता है। यह मृत्यु कोई भयंकर दैत्य या पिशाच नहीं। वह सबसे अधिक सच्चा मित्र है। वह हमें कष्टों से मुक्त करता है। हमारी इच्छा न होते हुए भी वह वस्तुतः हमारा सहायक होता है। वह सदा हमें नये अवसर और नई आशाएँ प्रदान करता है। यह मृत्यु निद्रा के समान मधुर नवजीवन प्रदान करती है। फिर भी मित्र की मृत्यु पर शोक मनाने का रिवाज चल पड़ा है। परन्तु शहीद की मृत्यु पर इस प्रकार के रिवाज का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। इसलिए मुझे उनकी मृत्यु पर कोई शोक नहीं। मुझे तो उनसे तथा उनके स्वजनों से ईर्ष्या होती है। क्योंकि यद्यपि स्वामी जी की देहलीला समाप्त

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हो गई, तथापि वह जीवित हैं। वह उस समय की अपेक्षा अब अधिक सच्चे अर्थ में जीवित हैं, जब वह अपनी विशाल काया के साथ हमारे बीच विचरण किया करते थे। ऐसी शानदार मृत्यु के कारण वह देश जिसमें उन्होंने जन्म लिया और वह राष्ट्र जिससे उनका सम्बन्ध था, वस्तुतः बधाई के पात्र हैं। वह सम्पूर्ण जीवन एक वीर की तरह जिये और अन्त में वीर की तरह ही उनकी मृत्यु हुई।

मेरा स्वामी जी से प्रथम परिचय तब हुआ, जब वह महात्मा मुंशीराम थे और वह भी पत्र द्वारा। उस समय वह गुरुकुल कांगड़ी के—जो शिक्षा क्षेत्र में उनकी एक मौलिक महान् देन हैं—मुख्याधिष्ठाता थे। वह पश्चिम की प्रचलित पद्धतियों से सन्तुष्ट न थे। वह अपने देश के बच्चों को वैदिक शिक्षा से अनुप्राणित कर देना चाहते थे वह उन्हें अँग्रेजी से नहीं, प्रत्युत हिन्दी के माध्यम से शिक्षा देते थे और वह चाहते थे कि उनके शिष्य शिक्षाकाल में सदा ब्रह्मचारी रहें। उन्होंने अपने ब्रह्मचारियों को दक्षिण अफ्रीका में चल रहे सत्याग्रह की सहायतार्थ एकत्र किये जा रहे चन्दे में अपना योगदान करने के लिये प्रेरणा की थी। उनकी इच्छा थी इस कार्य के लिये उनके ब्रह्मचारी मजदूरी करने वाले कुलियों की तरह कठोर परिश्रम करें। और यह उचित ही था। क्योंकि क्या यह सत्याग्रह कुलियों का नहीं था? ब्रह्मचारियों ने समय की मांग को समझा और मेहनत मजदूरी करके जो धन कमाया, स्वामी जी ने वह मेरे पास भेज दिया। इस विषय में उन्होंने हिन्दी में लिखा हुआ एक पत्र भी मुझे भेजा। उस पत्र में उन्होंने मुझे "मेरे प्यारे भाई" कर के सम्बोधन किया था। इस घटना ने मुझे महात्मा मुंशीराम जी का प्रिय मित्र बना दिया। इससे पूर्व हम दोनों कभी नहीं मिले थे।

श्रीयुत ऐण्ड्रूज महोदय ने हम दोनों के बीच कड़ी का काम किया। वह इस बात के उत्सुक थे कि मैं जब कभी अपने देश (भारत) में वापस जाऊँ तो रवीन्द्रनाथ ठाकुर, प्रिंसीपल रुद्र तथा महात्मा मुंशीराम से—जिन्हें मैं उनकी त्रिमूर्ति कहा करता था—अवश्य परिचय प्राप्त करूं। स्वामी जी के उक्त पत्र मिलने के बाद से हम दोनों सगे भाई बन गये। सन् १९१५ में गुरुकुल कांगड़ी में हम दोनों परस्पर मिले और प्रत्येक मिलन में हम निकटतर होते गये और एक-दूसरे को अच्छी तरह समझने लगे। उनका प्राचीन भारत, संस्कृत, तथा हिन्दी भाषा के प्रति विलक्षण प्रेम था। इसमें संदेह नहीं कि वह इस असहयोग आन्दोलन के जन्म से भी पूर्व असहयोगी थे। वह स्वराज्य प्राप्त करने के लिए अत्यन्त आतुर थे। उन्हें अस्पृश्यता से घृणा थी और वह इन अस्पृश्यों की दशा सुधारने के लिए सदा उत्सुक रहते थे। वह इनकी स्वतन्त्रता पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध सहन नहीं कर सकते थे।

जब देश में रौलट ऐक्ट विरोधी आन्दोलन छिड़ा, उस समय वह उसका स्वागत करने वाले अग्रणी पुरुषों में से एक थे। उन्होंने एक अत्यन्त उत्साहवर्धक पत्र

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मुझे लिखा। परन्तु अमृतसर तथा वीरमगांव की दुर्घटनाओं के कारण जो मुझे आन्दोलन स्थगित करना पड़ा, उससे वह सहमत न हुए।

इसके बाद से हमारे मतभेद बढ़ने शुरू हुये। परन्तु इस निमित्त से उन्होंने हम दोनों में विद्यमान भ्रातृभाव के मधुर सम्बन्ध में कभी ठेस नहीं पहुंचाई। इस मतभेद के समय मुझे उनकी बच्चों जैसी सरल प्रकृति का परिचय मिला। वह जिसे सत्य समझते थे, उसे खुलेआम कहने में संकोच नहीं करते थे, चाहे उसका परिणाम कुछ भी क्यों न हो।

समय के बीतने के साथ-साथ मैंने पाया कि हम दोनों की प्रकृति में पर्याप्त भेद है, परन्तु यह भिन्नता मेरे लिये स्वामी जी की आत्मा की महानता को ही सिद्ध करने वाली हुई। खुले आम विचार करना कोई अपराध नहीं, यह एक गुण है, सचाई की परख है। स्वामी जी के विचारों में सदा स्पष्टवादिता होती थी।

बारदोली आन्दोलन सम्बन्धी निर्णय ने उनका दिल तोड़ दिया था। वह मुझ से निराश हो गए। उन्होंने बलपूर्वक इस मेरे निर्णय का विरोध किया। मेरे पास भेजे गए निजी पत्रों में तो यह विरोध और भी प्रबल होता था, परन्तु उन्होंने उतने ही बल के साथ उनमें मेरे प्रति स्नेह भाव भी प्रकट किया था। केवल पत्रों में ही अपना स्नेह प्रकट करके उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। वह अवसर पाकर मुझ से अलग मिले, उन्होंने अपनी स्थिति स्पष्ट की और मेरी स्थिति को समझने का प्रयत्न किया परन्तु मुझ से अलग मिलने का वास्तविक कारण, जैसा कि मुझे प्रतीत होता है, मुझे इस बात का विश्वास दिलाना था कि वह अब भी मुझे अपना छोटा भाई समझ कर प्रेम करते थे। उनमें किसी प्रकार की कमी नहीं आई। मानो ऐसा विश्वास दिलाना वह आवश्यक समझते थे।

कुछ ही मास पूर्व स्वामी जी जब अन्तिम बार मुझ से साबरमती आश्रम में मिलने आये, उनका स्मरण कराये बिना मैं उस महान् सुधारक के जीवन संस्मरण समाप्त नहीं करना चाहता। (उसके आधार पर), मैं अपने मुसलमान मित्रों को विश्वास दिलाना चाहता हूं कि वह मुसलमानों के विद्वेषी न थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह कई मुसलमानों पर विश्वास नहीं करते थे, परन्तु उनके प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना उनके मन में न थी। उनका विचार था कि हिन्दुओं को डराया जाता है, इसलिये वह चाहते थे कि हिन्दू बहादुर बनें और अपने जीवन एवं सम्मान की रक्षा स्वयं कर सके। उन्होंने मुझे बताया कि इस विषय में मुझे गलत समझा गया है और उनके विरुद्ध कही जाने वाली अनेक बातों में सर्वथा निर्दोष हैं। उन्होंने मुझे बताया कि उनके पास कई धमकी भरे पत्र आये हैं। इसलिए उनके मित्रों में उन्हें अकेला यात्रा करने से सचेत किया है। परन्तु दृढ़ ईश्वर-विश्वासी स्वामी ने कहा—सिवाय परमात्मा के मैं किसी का सहारा क्यों ढूंढूं। उसकी इच्छा के विपरीत

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

की एक पत्ती भी नष्ट नहीं हो सकती। इसलिये समझता हूं जब तक वह प्रभु मेरे इस शरीर से कुछ सेवा लेना चाहते हैं, जब तक मेरा कुछ नहीं हो सकता।"

आश्रमवास के इस काल में उन्होंने आश्रमवासी बालक-बालिकाओं को उपदेश देते हुये बताया कि हिन्दू-धर्म की रक्षा का सर्वोत्तम साधन आन्तरिक शुद्धि अर्थात् आत्म-शुद्धि है।

चरित्र गठन तथा शरीर निर्माण के लिए उन्होंने ब्रह्मचर्य की आवश्यकता पर सब से अधिक बल दिया।

जीवन का मूल मन्त्र—श्रद्धा

मेरे अन्तःकरण में निराशा की लहर जब कभी उठती है, उसी समय श्रद्धासागर में विलीन हो जाती है। मेरा जीवन आशातीत व्यतीत हुआ है। इसलिए जब तक दम में दम है तब तक मनुष्य को बेदम नहीं होना चाहिए। यह मेरा सिद्धान्त है।

—श्रद्धानन्द संन्यासी
(कल्याण मार्ग के पथिक की भूमिका से)

उठो ! चेतो !!

जगत् पिता तुम्हारे अन्दर विराजमान हैं। उनकी अनन्त शक्ति अपने अनन्त बल से तुम्हारी आत्मा को प्रकाश देने के लिये तैयार है। उसके प्राप्ति के साधन भी तुम्हारे अन्दर ही उपस्थित हैं फिर क्यों अज्ञान सागर में डूबे हुए हम सब इधर हाथ-पैर मार रहे हैं ? उठो ! चेतो !! अमूल्य समय व्यर्थ जा रहा है।

—स्वामी श्रद्धानन्द
(धर्मोपदेश भाग ३, पृष्ठ ५६।)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वामी श्रद्धानन्द का बलिदान और उसका प्रतिकार

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर—

हमारे देश में सत्य-व्रत के ग्रहण करने के अधिकारी हैं, एवं इस व्रत के लिये प्राण देकर जो पालन करने की शक्ति रखते हैं, उनकी संख्या बहुत ही कम होने के कारण हमारे देश की इतनी दुर्गति है। ऐसी अवस्था में श्रद्धानन्द जैसे महान् वीर की इस प्रकार मृत्यु से कितनी हानि हुई होगी इसका वर्णन करने की आवश्यकता नहीं। परन्तु इस में एक बात अवश्य है कि उनकी मृत्यु कितनी ही दुःखदायक क्यों न हुई हो, किन्तु इस मृत्यु ने उनके प्राण एवं चरित्र को उतना ही महान् बना दिया है। इतिहास में अनेक बार देखा जाता है कि जिन्होंने अपना सब कुछ देकर कल्याणव्रत को ग्रहण किया है, अपमान और अपमृत्यु ने उनके ललाट पर जय तिलक की तरह अपना स्थान जमाया है। महापुरुष आते हैं प्राण की मृत्यु जय करने के लिये और सत्य को जीवन की सामग्री बनाने के लिये हमारे खाद्य द्रव्य में प्राण देने का जो उपकरण है, वह वायु में भी है, एवं वैज्ञानिक परीक्षागार में भी है। परन्तु जब तक वह उद्भिज प्राणी में जीवन आकार नहीं धारण करता तब तक प्राण की पुष्टि नहीं होती। सत्य के सम्बन्ध में भी यही बात है। केवल वाक्यों के द्वारा आकर्षण कर उसे जीवन-गत करने की शक्ति कितनों में है। सत्य को जानते बहुत हैं, किन्तु उस को मानता वही है जो विशेष शक्तिमान् है। प्राणों की आहुति के द्वारा मान कर ही हम उस सत्य को सब मनुष्यों के लिये उपयोगी बना देते हैं। वह मान कर चलने की शक्ति ही एक सुन्दर वस्तु है। इस शक्ति की सम्पद् को जो समाज को अर्पित करते हैं उन्हीं के दान का महामूल्य है। सत्य के प्रति उसी निष्ठा का आदर्श श्रद्धानन्द इस दुर्बल देश को दे गये हैं। अपनी साधना परिचय के उपयोगी जिस नाम को उन्होंने श्रद्धा की थी। इसी श्रद्धा के मध्य सृष्टि-शक्ति है। इसी शक्ति के द्वारा वे अपनी साधना को मूर्त रूप में सजीव कर गये हैं। इसी कारण उनकी मृत्यु भी प्रकाश मय होकर उसकी श्रद्धा को, उस अर्थहीन दोषहीन तथा कांतिहीन अमृतमय छवि को उज्जवल कर प्रकाशित करती है। सत्य के प्रति श्रद्धा के मूर्तरूप इस श्रद्धानन्द को आज हम उनके चरित्र के मध्य सार्थक आकार में देख रहे हैं। यह सार्थकता बाह्य फलस्वरूप नहीं है, अपितु निज की ही अकृतिम वास्तविकता में है।

पौष संवत् २०३३

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विधाता जब दुःख को हमारे पास भेजता है तब वह अपने साथ एक प्रश्न ले कर आता है। वह हमसे पूछता है कि तुम हम को किस भाव से ग्रहण करोगे ? विपद् आवेगी नहीं ऐसा नहीं हो सकता, संकट का समय उपस्थित होता है, उद्धार का कोई भी उपाय नहीं रहता। किन्तु जिस प्रकार विपद् का हम व्यवहार करते हैं इसी के ऊपर प्रश्न का सदुत्तर निर्भर है। किसी पाप के उपस्थित होने पर हम उस से डरें या उस के सम्मुख अपना सिर झुकावें? अथवा उस पाप के विरुद्ध पाप ही को सन्मुखी करें, मृत्यु के आघात दुःख के आघात के ऊपर रिपु की उन्मत्तता को जागृत करें। शिशु के आचरण में देखा जाता है कि जब वह गिरता है तब वह उल्टे जमीन ही को मारता है। वह जितना ही जमीन को मारता है, फलस्वरूप उसको उल्टा ही जमीन की चोट लगती है। परन्तु यदि किसी वयस्क को ठोकर लगती है तो वह सोचता है कि वह किस प्रकार दूर की जावे। परन्तु हम देखते हैं कि किसी समय बाहर के आकस्मिक आघात की चमक में मनुष्य भी शिशु की बुद्धि वाला हो जाताहै। उस समय सोचता है कि धैर्य का अवलम्बन करना ही कापुरुषता है, क्रोध का प्रकाश करना ही पौरुष है। हम यह स्वीकार करते हैं कि आज दिन स्वभावतः ही क्रोध आवेगा, इस मानव सुलभ-धर्म को बिलकुल छोड़ा नहीं जा सकता। किन्तु यदि हम क्रोध से अभिभूत हो जायें तो वह भी मानव-धर्म नहीं हैं। आग के लग जाने पर यदि सब कुछ भस्म हो जावे तो आग की रुद्रता को लेकर आलोचना करना वृथा है। विपद् सभी पर आती है, जिनके पास उसके प्रतिकार के उपाय नहीं, वे भी दोषी हैं।

भारतवर्ष के अधिवासियों के मुख्यतया दो भाग हैं—हिन्दू और मुसलमान। यदि हम यह सभझें कि मुसलमानों को एक ताक में रख देश की सभी मंगल चेष्टाओं में सफल होंगे तो यह भी बड़ी भारी भूल है। हमारे लिए सबसे ज्यादा अमंगल और दुर्गति का विषय यह है कि मनुष्य-मनुष्य के पास रहता है, किन्तु उनके मध्य किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रहता। विदेशी राज्य में राजपुरुषों के साथ हमारा एक बाह्य योग-दल है, किन्तु आन्तरिक सम्बन्ध नहीं रहता। विदेशी राजत्व में यही हमारे लिये सब से अधिक पीड़ा-जनक है।

इसी से आज हमें देखना होगा कि हमारे हिन्दू-समाज में कहां कौन सा छिद्र है, कौन सा पाप है। अति-निर्भय भाव से उस पर हमें आक्रमण करना होगा। इसी उद्देश्य को लेकर आज हिन्दू-समाज का आवाहन करना होगा। कहना होगा हम पीड़ित हुए हैं, हम लज्जित हुए हैं, बाहर के आघात से नहीं ; किन्तु अपने भीतर के पापों के फलस्वरूप। आओ, आज हम सब मिल कर उस पाप को दूर करें। परन्तु हमारे लिये यह बहुत सहल बात नहीं है, क्यों कि हमारे भीतर बहुत प्राचीन अभ्यस्त भेद-बुद्धि भरी हुई है। बाहर बहुत पुरानी भेद की प्राचीर हैं। मुसलमानों ने जिस समय किसी उद्देश्य को लेकर मुसलमान समाज को आवाहान

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

किया है, उन्हें कोई भी बाधा नहीं पड़ी, एक ईश्वर के नाम पर 'अल्लाह ओ अकबर' कह कर उन्हें बुलाया है फिर आज हम बुलावेंगे, हिन्दू आओ, तब कौन आवेंगे ? हमारे मध्य कितने छोटे-छोटे सम्प्रदाय हैं, कितनी प्रादेशिकता है, उनको पार कौन आवेगा ? कितनी आफतें पड़ीं, किन्तु कभी भी तो हम एकत्रित नहीं हुए। बाहर से जब पहली बार मुहम्मद गौरी का आक्रमण हुआ था, तब भी तो उस आसन्न विपद् के दिन हिन्दू एकत्र नहीं हुए थे। इस के बाद मन्दिर के बाद मंदिर लुटने लगे, देव मूर्तियां भूठी होने लगीं, तब वे अच्छी तरह लड़े हैं, मारे गये हैं, खण्ड-खण्ड हो कर युद्ध करके मरे हैं, किन्तु एकत्र नहीं हुए। अलग-अलग थे, इसलिए मारे गये। युग-युग में हमारे पास इसके प्रमाण हैं। हां सिक्खों ने अवश्य एक समय इस बाधा को दूर किया था। परन्तु सिक्खों ने जिस के द्वारा इस बाधा को दूर किया, वह सिक्ख धर्म था। पंजाब में सिक्ख धर्म के आवाहन करने पर जाट प्रभृति सभी जातियां एक झण्डे के नीचे एकत्रित हो सकी थीं। एवं वे ही धर्म की रक्षा करने के लिए खड़ी हो सकी थीं। शिवाजी ने भी एक समय धर्मराज्य की स्थापना की नींव डाली थी। उनकी जो असाधारण शक्ति थी उसी के द्वारा वे समस्त मराठों को एकत्र कर सके थे। इसी सम्मिलित शक्ति ने भारतवर्ष को अपनाकर छोड़ा था। घोड़े के साथ 'घुड़सवार का सामंजस्य' रहता तभी वह घोड़ा किसी भी तरह नहीं रुकता। शिवाजी के साथ हो कर जो उस दिन लड़े थे, उनके साथ भी शिवाजी का ऐसा ही सामंजस्य था। बाद में ऐसा सम्बन्ध नहीं रहा। पेशवाओं के मन में आचरण में, भेद-बुद्धि का उदय हुआ और इसी के फलस्वरूप उनका पतन भी हुआ। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि वह जो हमने भेद-बुद्धि के पाप को पाल रक्खा है, वह अत्यन्त भयंकर है। पाप का प्रधान आश्रय दुर्बलता के मध्य विराजमान है।

अतएव यदि मुसलमान हमें मारते हैं। और यदि हम उसे पड़े-पड़े सह रहे हैं तो यह केवल संभव हुआ है हमारी दुर्बलता के कारण। हमें अपने लिये, एवं प्रतिवेशियों के लिये भी अपनी दुर्बलता को दूर करना होगा। हम प्रतिवेशियों के निकट अपनी अपील करते हैं कि तुम इतने क्रूर मत बनो, अपनी उन्नति करो। नरहत्या के ऊपर किसी भी धर्म की भित्ति स्थापित नहीं की जा सकती। परन्तु यह अपील इसी दुर्बलता का रोना है। जिस प्रकार वायुमण्डल के घिर जाने पर झड़ी आप ही आरम्भ हो जाती है, धर्म की दुहाई दे उसे कोई बाधा नहीं दे सकता, उसी प्रकार दुर्बलता के पाल रखने पर अत्याचार भी होने लगते हैं, उन में कोई बाधा नहीं पहुंचा सकता। कुछ समय के लिए एक उपलक्ष्य को लेकर परस्पर में कृत्रिम बन्धुता हो सकती है, किन्तु चिरकाल के लिये नहीं हो सकती।

आज हमारे अनुताप का दिन है, आज हमें अपने अपराध का प्रायश्चित करना होगा। सत्यमय प्रायश्चित यदि हम करेंगे तभी शत्रु हमारा मित्र हो सकेगा, रुद्र हमसे प्रसन्न होंगे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महात्मा मुन्शीराम और गुरुकुल की स्मृतियां

श्री राम्जे मैक्डानल्ड

[आज से ४३ वर्ष पूर्व सन् १९१४ की शीत-ऋतु में इङ्गलिस्तान के दिवंगत प्रधानमन्त्री मैकडोनल्ड महोदय भारत में आये थे। उस समय उन्होंने गुरुकुल भी देखा था। अपने संस्मरणों को उन्होंने इङ्गलैंड में 'डेली-क्रानिकल' में छपाया था। उन्हीं स्मृतियों का यह अविकल अनुवाद यहां हम साभार प्रकाशित कर रहे हैं।]

—सम्पादक

आर्यसमाज का शिक्षणालय

जिन्होंने भारतीय राजविद्रोह का अध्ययन किया उन्होंने गुरुकुल—जहां आर्यसमाज के कुमारों को शिक्षा दी जाती है—का नाम अवश्य सुना होगा। यह शिक्षणालय आर्यों की वृत्तियों और आदर्शों का सबसे अधिक अनुरूप प्रतिबिम्ब है, और इस प्रगतिशील धार्मिक संस्था (आर्यसमाज) के विरुद्ध उठाए गये सभी सन्देह इस पर केन्द्रित हो गये हैं। इसी कारण सरकार की इस पर वक्र दृष्टि रही है। पुलिस के कर्मचारियों ने इस पर रिपोर्ट तैयार की है तथा अधिकांश अर्ध-गोरों के दोषारोपों का यह पात्र रहा है। मुझे बताया गया कि रात्रि में यात्रा करके, सप्ताह के अन्तिम दिनों में इस शिक्षण संस्था का अवलोकन करना मेरे लिये बहुत अनुकूल रहेगा। मैं दिल्ली से हरिद्वार जाने वाली एक गाड़ी में, जिसकी चाल मध्यवर्ती स्टेशनों पर विराम करने के कारण अनुमानतः दस मील प्रति घण्टा रही होगी, सवार हुआ। निद्रा लाने का प्रयत्न करते हुए जैसे-तैसे रात कटी।

प्रभात-वेला में हरिद्वार पहुंचा, जहां गंगा नदी पर्वतों की गोद छोड़कर, नीचे मैदान में उतरी है। स्टेशन, आत्मिक पापशुद्धि की विश्व-व्यापिनी और शाश्वत पिपासा से प्रेरित तीर्थ-यात्रियों से भरा पड़ा था। यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि इनमें से बहुत से लोग बहुत दूर से आए हुए हैं। वृक्षों से ढकी हुई पहाड़ियां शीश उठाए खड़ी थीं। पवन इंगलिस्तान के शिशिर-काल के प्राभातिक झोंकों-सा तन को काटता हुआ बह रहा था। हमने पैदल ही यात्रा प्रारम्भ की। नदी-तीर पर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पहुंचते ही सामने का दृश्य खुल गया। समीपवर्ती पहाड़ियां, महान् हिमालय के हिममंडित शिखरों के चरणों में सविनय साष्टांग प्रणिपात करती हुई सी दीख रही थीं। सरिता की एक तरंग, अधित्यका का एक-एक गुल्म, एक-एक हिम मंडित प्रदेश, सूर्य की स्वर्णमयी आभा से भासमान था।

किनारे पत्थरों पर एक तमेड़ (बांस की खपच्चियों से सुबद्ध, मिट्टी के तेल के पीपों का एक बेड़ा) पड़ी थी। इस पर बैठा कर हमें धारा में डाला गया। दूसरे ही निमेष में हम मध्यधारा में पहुंच गये। गहरे जल में हम निश्शंक बह रहे थे। अकस्मात् नदी की तली हमारे नीचे साथ-साथ सरकती हुई मालूम हुई। तमेड़ झटके के साथ टकराई। पानी छींटों में उड़ा। नन्हा बेड़ा तत्क्षण ही झाल में होकर, गहरे जल की भंवरियों तथा लहरियों में पड़कर पूर्ववत् स्थिर हो गया। चक्कर देती हुई, झूले खिलाती हुई और छींटें उड़ाती हुई नदी, अपने भार को वेग से लिये जा रही थी। बन्दर हमें देखकर दांत किटकिटाते थे। वन के अद्भुत दृश्य क्षण भर झांकी दिखाकर, दूसरे ही क्षण लम्बी झाड़ियों में मुंह छिपा लेते थे। एक रेतीली खाड़ी में हम उतरे और एक उत्तप्त और बालुकामय मार्ग से वन में प्रविष्ट हुए। हमारे सिरों से कहीं ऊंची पीली घास खड़ी थी। पर्वतीय शीतल पवन की हिलोरें अब बन्द हो गई थीं। सूर्य का ताप शनैः शनैः दुःसह होता जा रहा था। अन्त को हम वृक्षों से अंशतः आच्छादित एक लम्बी और सीधी सड़क पर पहुंचे। सुदूर, एक उन्नत बांस के सिरे पर, एक पताका दीख पड़ी। गुरुकुल दृष्टिगोचर होने लगा।

महात्मा मुन्शीराम जी

सन् १९०१ की बात है। श्री मुन्शीराम जी, जालन्धर के एक वकील, संसार से विरत, कानून की रीति-नीति और भोग विलासों से उदासीन, अपनी पूर्वकालिक नास्तिक वृत्ति से पराङ्मुख, तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती के धार्मिक आन्दोलन को आत्मार्पण किये हुए, शांति और कर्म की साधना करते फिरते थे। वह हरिद्वार के समीपवर्ती वनों में एक शिक्षणालय की स्थापना करने के लिये आये। आर्यसमाज ने इन दिनों महर्षि दयानन्द के शिक्षा-विषयक विचारों को क्रियात्मक स्वरूप देने का निश्चय किया था। अपने बालकों को अंग्रेजी के पाठ दुहराते सुनकर मुन्शीराम जी इस मत पर पहुंचे कि वह सारी प्रणाली ही दूषित है। उन्होंने इस विषय में एक फर्रा प्रकाशित किया। समाज ने उनको एक नवीन संस्था की अध्यक्षता के लिए आमन्त्रित किया। उन्हें कोई अनुभव नहीं था, पर उनके पास बिचार थे।

शिक्षणालय कहां स्थापित हो? "जहां मनुष्यों का पदार्पण न हो"—भक्त बाले। कारण, सरल भारतीयों को घड़ कर दीन हीन अंग्रेज तैयार करने के उद्देश्य से कोई सरकारी कालेज नहीं बनाया जा रहा था, जो उनके पवित्रतम पैत्रिक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

संस्कारों को खोदकर उसके स्थान पर केवल बालू की इमारत खड़ी कर दे। गुरुकुल में प्रविष्ट होने वाले छात्र को अपनी भारतीय-संस्कृति का अध्ययन कराया जाना था। उसकी बुद्धि का विकास देशभाषा के ही माध्यम द्वारा होना था। संस्कृत भाषा को उसके विचारों के परिमार्जन के लिये मुख्य भाषा का स्थान दिया जाना था। पवित्र वैदिक-धर्म का वातावरण उसके लिये प्रस्तुत किया जाने वाला था। पश्चिम का विज्ञान और भाषा उसके पाठ्य विषय होने को थे, यद्यपि उन्हें गौण स्थान दिया जाना था। और विद्यालय समाप्त हो चुकने पर, पावन ग्रन्थों के पारंगत और धर्मप्राण बालकों को ऋषि दयानन्द की शिक्षाओं का संदेशहर बन कर संसार-सागर में कूद पड़ना था। उनकी जीविका उपार्जन सरकारी नौकरियों द्वारा नहीं होना था और ना ही कानून का गला घोंट कर। वह तो होना था चिकित्सा, कृषि और शिक्षण जैसे कार्यों से, जो उसे जनता के दैनिक जीवन के साक्षात् सम्पर्क में लायें। फलतः शिक्षणालय की स्थापना आम सड़कों से पृथक् तथा जननिवासियों से दूर होनी थी। इतनी दूर, जहां सांसारिक संघर्ष और घात-प्रतिघात की ध्वनि भी न पहुंच सके। और सांसारिक वासनाओं की छाया भी स्पर्श न कर सके। इसे अंशतः सार्वजनिक शिक्षणालय का और अंशतः एकान्त आश्रम का रूप दिया जाना था। इन सब हेतुओं को लक्ष्य में रख कर मुन्शीराम जी उपयुक्त वन की खोज में थे। एक अस्वास्थ्य का चिरसंगी, पुत्र-विहीन, जमींदार श्रद्धालु गृहपत्नी वाला आगे आया। उसने अपना सारा ग्राम मुन्शीराम जी के चरणों में रख दिया। उसकी भूमि में वन व्याघ्रों का आवास था। वर्षाकाल में वन्य हाथी पर्वतों से उतरते—रौंदते आ धमकते थे, पर इस प्रदेश को पुण्य सलिला भागीरथी का आश्रय था। दान स्वीकार कर लिया गया और वहां मुन्शीराम जी ने अपनी होमाग्नि प्रज्वलित की।

गुरुकुल

गुलाब और चमेली के पुष्पों से सुवासित मार्गों से भोजनालय और पुष्प वाटिकाओं में से हो कर, गुरुकुल पहुंचते हैं। चारों ओर क्रीड़ा क्षेत्र हैं। मध्य में वर्गाकार छात्रावास स्थित है। सिंह द्वार (प्रवेश द्वार) पर वेदों के सनातन सूत्र, पवित्र 'ओ३म्' नाम से अंकित ध्वजा फहराती है। सम्प्रति यहां ३०० बालक शिक्षा पा रहे हैं। प्रवेश के समय इनकी उमर अनिवार्यतः ६-१० वर्ष के अन्दर होनी चाहिये। पच्चीस वर्ष की आयु तक उन्हें यहां रहना होता है। उन्हें मुन्शीराम जी (जो कि अब "महात्मा जी" इस उपपद से प्रसिद्ध हैं) के न्यायोचित संरक्षण में छोड़ दिया जाता है। वह उनके पिता हैं और ये उनके बालक। चार बजे प्रातः वे अपनी कठोर चीड़ के तख्तों की शय्या छोड़ कर उठ बैठते हैं, व्यायाम करते हैं और शीतल जल से स्नान करते हैं। अब प्राभातिक संध्या (प्रार्थना) होती है, उष्ण ऋतु में नंगे सिर और नंगे पांव चलते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"संभव है उन्हें संयोग-वश कभी कठोर जीवन व्यतीत करना पड़े, अतः हमें उनको इसके लिये अभ्यास कराना चाहिये।" महात्मा जी ने मुस्कराते हुये मुझे कहा। पीताम्बर शिक्षणालय का गणवेश है। यहां रहते हुये विद्यार्थी, अपने माता-पिता को बहुत कम देख पाते हैं। परन्तु यहां विद्यालय भूमि में प्रति वर्ष एक बड़ा मेला (उत्सव) भरता है। सहस्रों की संख्या में जनता आती है। माता-पिता इस में सम्मिलित होते हैं। विशेष झोंपड़ियां तैयार की जाती हैं। प्राचीन अंग्रेजी मेलों की सी भीड़ एकत्र होती है। दीर्घावकाश में बालकों को उनके अध्यापक भारतभूमि के प्रसिद्ध स्थानों में ले जाते हैं। इन यात्राओं में वे कश्मीर तक भी हो आये हैं।

शासक वर्ग के मानस और दृष्टि के लिये, यह सब एक अशान्ति-जनक समस्या है। कार्य-कर्ताओं और अध्यापकों में कोई अंग्रेज नहीं, अंग्रेजी शिक्षा का माध्यम नहीं, पंजाब विश्वविद्यालय द्वारा भारतीयों की उच्च शिक्षा के मूल स्तम्भ के तौर पर निर्दिष्ट अंग्रेजी-साहित्य की पाठ्य-पुस्तकें यहां प्रयुक्त नहीं होती, विद्यार्थी सरकारी विश्वविद्यालयों की परीक्षा में नहीं भेजे जाते। महाविद्यालय अपनी ही पदवियां देता है। यथार्थतः यह कानून भंग है। आश्चर्य से स्तब्ध अधिकारियों का इसे एक ही सांस में राजद्रोह कहना अनिवार्य था। परन्तु उसे गुरुकुल पर अन्तिम निर्णय कदापि नहीं कह सकते। सन् १८३५ में मैकाले ने सरकारी पत्र में अपने विचार प्रस्तुत किये थे। तब से भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध में किये गये प्रयत्नों में यह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। उन विचारों से भारत में प्रत्येक असन्तुष्ट हैं, परन्तु जहां तक मैं जान पाया हूं, गुरुकुल के प्रवर्तकों के अतिरिक्त अन्य किसी ने भी, अपने असन्तोष को नवीन प्रयोग के रूप में परिणित नहीं किया है।

प्रभावोत्पादक स्वागत

एक उन्नत-काय, दर्शनीय मूर्ति (प्रभाव पूर्ण सौन्दर्य की प्रतिमा) हम से भेंट करने आती है। आधुनिक सम्प्रदाय का कलाकार ईसा की प्रतिकृति घड़ने के लिये आदर्श रूप में इसका स्वागत करता है और मध्यकालिक रुचि का चित्रकार इसमें सन्त पीटर का रूप देखता है। महात्मा जी हमें नमस्कार करते हैं, और हम उनके अभ्रक-जटित 'ओ३म्' नाम से अलंकृत, सादी साज-सज्जा वाले कमरे में प्रवेश करते हैं। मुझे दिये गये कमरे में शुभ्र वस्त्र से ढकी मेज पर उज्जवल वर्ण की पत्तियों से मिश्रित, लाल फूलों से भरे, दो गुलदस्ते रक्खे हुए हैं। किसी अतिथि को कभी इससे अधिक मनोहर कोठरी नहीं मिली। एक सेवक हमारे हाथों पर पानी डालता है, और हमें एक अंगोछा देता है। जूते बाहर उतार कर हम एक कमरे में प्रवेश करते हैं, जहां भोजन परोसा गया है। महात्मा जी भोजन से पूर्व प्रार्थना करते हैं, हमारा मस्तक नत हो जाता है। मैंने अनेक प्रार्थनाएँ सुनी हैं, पर ऐसी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कभी नहीं सुनी थी। हमारे यजमान की संस्कृत स्वरों पर तूल देती हुई फन-गम्भीर वाणी पापशुद्धि के आभार सम्बन्धी संगीत का पूरा-पूरा अनुकरण कर रही है।

भोजन समाप्त होता है, और हम शिक्षणालय की परिक्रमा करने को निकलते हैं। सर्वत्र सुव्यवस्था और प्रसन्नता है। उज्ज्वल, चमकीले नयनों वाले बालबटु और प्रशान्त मुद्रा वाले बड़े कुमार, कहीं मिट्टी में खिलौने बनाते हुए, कहीं-कहीं मिलकर अपना पाठ दुहराते हुए, कहीं श्लोक पाठ करते हुए और अपने गुरुओं के व्याख्यान सुनते हुए (क्योंकि गुरुकुल में व्याख्यान द्वारा ही अधिकतः अध्यापन होता है) श्रेणियों में बैठे हैं। विद्यालय समाप्त होता है। तुरन्त ही ब्रह्मचारियों का, बड़ी उमंग से क्रीड़ा-क्षेत्र की ओर धावा प्रारम्भ होता है। प्रत्येक छात्र गुजरता हुआ अपने आचार्य के पांवों में झुक कर और अंजलिबद्ध हाथों को उठाकर अभिवादन करता है।

दोपहर ढल जाने पर हम वन में भ्रमणार्थ जाते हैं। महात्मा जी हम से सुनी गई बातों की चर्चा करते हैं। वह परिधान, अंगों की वह गठन, यह चाल ढाल, वह लम्बा दण्ड, किशोरावस्था में प्रति रविवार को प्रार्थनालय के द्वार पर देखे हुए गेलिली के भ्रमण के दृश्यों की आश्चर्य स्मृति कराते हैं। एक मैं ही अपने अंग्रेजी वेश में मण्डली और उसके अभिनयों में उपहासास्पद हो रहा हूँ। प्रतीची दिशा, अस्तोन्मुख सूर्य के प्रभा-मण्डल से झलमला रही है: अर्धचन्द्र कब से ऊँचे, सिर पर आकर, रजतवर्ण की चन्द्रिका छिटका रहा है। रात्रि का पवन तथा उसके साथ लम्बी वनस्पतियाँ भी मौन धारण कर रही हैं। कम्पित वस्तुओं की मर्मर ध्वनि स्पष्ट सुन पड़ती है। शीत हमारे ऊपर उतर रहा है। गुरुकुल अन्धकार में मग्न है। परन्तु छात्रावास के मध्य मार्ग में जलने वाली अग्नि शिखाएं आश्रम के द्वारों में से दिखाई दे रही हैं। आंगन मन्त्रोच्चारण के शब्द से परिपूर्ण हो रहा है। घास पर चटाइयाँ बिछा कर बुद्ध की प्रतिमा छोटी-छोटी शुभ्र मूर्तियां बैठी हैं पर उन की गति नहीं है। वे हमारी ओर दृष्टि भी नहीं उठाते। उनकी सामूहिक प्रार्थना (संध्या) समाप्त हो चुकी है। अब वे अलग-अलग एकाग्रचित होकर ध्यान में मग्न हैं।

कमरे के अन्दर फर्श में स्थित एक कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित है। चारों ओर अध्यापक-वृन्द और छात्र मण्डल बैठा है। वह अपने एक प्राचीन धर्मकार्य (अग्निहोत्र) का अनुष्ठान कर रहा है। ज्वाला के हल्के प्रकाश में, अपने सम्मुख रखे हुए एक पात्र में चम्मच डुबोते हुए और अग्नि में कुछ डालते हुए अधिष्ठाता को हम निहारते हैं। सहसा लौ उठती है। एक स्वर से कोमल वाणियाँ पुकारने लगती हैं—"सर्वज्ञ ज्ञान के दाता, ज्योतियों के ज्योति परमेश्वर को हम आत्मार्पण करते

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हैं।" अब कुछ काल विराम होता है। ज्वाला नीचे उतरने लगती है। इतने में एक दूसरी आहुति डाली जाती है। ज्वाला पुनः लपक उठती है। कमरों की भित्तियों और छतों पर पीली आभा छा जाती है और प्रहसन के नृत्यों के से दृश्य अंकित हो जाते हैं। पुनः तोतली बोलियाँ पुकारती हैं—"हे प्रभो, हम तुझे आत्मदान करते हैं, जो तू एक-एक में रम रहा है।" इसी प्रकार क्रमशः विराम प्रकाश और मन्त्र-पाठ होता है। अन्त में यज्ञ पाठ होता है अग्नि शान्त हो जाती है। गुरुकुल के आंगन को प्रकाशित करने के लिए अब एकमात्र तारे रह गये हैं।

एक बार फिर हम अपने हाथ बाहर निकालते हैं। नौकर उन पर पानी डालता है। जूते उतार कर हम उन्मुक्त पवन में, सायंकालिक भोजन के लिए, चटाइयों पर बैठते हैं। हमारे चरणों में गंगा आल्हादकारी कलकल करती हुई, पत्थरों में से होकर वेग से बह रही है। ऊँची-ऊँची घासों की ऊँची शिखाएँ चन्द्र-ज्योत्सना को झेल रही हैं। वन-भूमि ओस से व्याप्त हुई सी झिलमिला रही है। दूर बहुत दूर से आते हुए, अस्फुट वन्य शब्द भूतों और पथभ्रष्ट आत्माओं का भान कराते हैं। मानों स्वप्न में मैं किसी को कहते सुनता हूँ—

"हमें और कुछ नहीं चाहिए। हमें शान्ति से प्रभु का भजन करने दो।"

—अनुवादक : रणजीतराव
आयुर्वेदालंकार।
भूतपूर्व-उपाचार्य : आयुर्वेद महाविद्यालय, सूरत

आज के कठिन समय में महान् शहीद स्वामी श्रद्धानन्द के चरणों में यही सच्ची श्रद्धांजलि हो सकती है कि हम देश, धर्म, और संस्कृति की रक्षा में पूरे बल से लगें। डरें नहीं और विजय प्राप्त करें—

रामगोपाल
प्रधान
सार्वदेशिक सभा नई दिल्ली

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जातिगुरु श्रद्धानन्द

—काका कालेलकर—

स्वामी श्रद्धानन्द जी में आर्य-जाति का मानोन्नत स्वभाव पूर्णतया प्रतिबिम्बित था। वे अपने जमाने के सर्वाङ्गीण प्रतिनिधि थे। सामान्य परिस्थिति में रहते हुए भी आर्य पुरुष अपने पुरुषार्थ से कैसी उच्च और असामान्य कोटि तक पहुंच सकता है, इसका उदाहरण स्वामी जी के सफल जीवन में हम पाते हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जो चैतन्य देश में प्रकट किया, उसका ग्रहण अधिक से किसी ने किया था तो वे स्वामी श्रद्धानन्द ही थे। धर्मप्रचार, शिक्षाप्रचार और लोक सेवा तीनों बातों में अपना जीवन व्यतीत कर के उन्होंने बलिदान के जल में जीवन यज्ञ का अद्भुत स्नान किया। गुरु और शिष्य दोनों पुरुषसिंहों ने अपने निर्भय जीवन से मृत्यु को परास्त किया।

अनार्य हत्यारे से बदला न लेकर उनके असंख्य अनुयायियों ने अपना आर्यत्व ही सिद्ध किया है। निर्भय पुरुष का रक्त संस्कृति क्षेत्र का उत्तम स्वाद है। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने जीवन भर अपने पसीने से सेवा की और अन्त में अपने खून से। इसलिए वे अमरपद प्राप्त कर सके।

संस्था खोलना और चलाना आजकल सामान्य सी चीज हो गई है। क्योंकि अब जनता देख चुकी है कि लोक-जीवन में सुव्यवस्थित संस्थाओं का महत्व कितना है। लेकिन जब ऋषि दयानन्द सरस्वती ने आर्य संस्कृति के आत्मा को जागृत करने के लिए सत्यार्थप्रकाश में नई शिक्षा-प्रणाली का आदर्श पेश किया, तब भारतवर्ष में स्वदेशी संस्थाएं बहुत कम थीं। ऐसे समय पर सर्वस्व त्यागकर अपने पुत्रों को साथ लेकर गंगा के तट पर जंगल में जाकर बसना केवल श्रद्धानन्द पुरुष का ही काम था। मानों वह एक का विश्वजित् यज्ञ ही था। मुंशीराम जी चाहते तो वे किसी भी क्षेत्र में अपनी कार्यशक्ति का परिचय दे सकते थे। फौज में दाखिल होते तो नामांकित सेनानी हो जाते, किसी रियासत की सेवा में प्रवेश करते तो प्रजाहितैषी प्रधान बन जाते। राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश करते तो महासभा की धुरा को वहन करते। केवल धर्मोपदेशक बन बैठते तो हजारों सम्राज्य हासिल करते। साहित्य सेवा का पेशा पसन्द करते तो साहित्य सम्राटों से कर-भार वसूल करने की योग्यता प्राप्त

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करते। परन्तु उन्होंने सब छोड़ कर शिक्षा का ही कार्य अपना जीवन कार्य बनाया। इसलिये मेरा सिर उनके सामने झुकता है। शिक्षा का क्षेत्र जगत् में अभी उतना प्रतिष्ठित नहीं है कि जितना उसका अधिकार है। तो भी मनुष्य जाति की उत्तम सेवा शिक्षा द्वारा ही होने को है।

शारीरिकशक्ति, द्रव्यशक्ति, राजशक्ति, संघशक्ति इत्यादि सब शक्तियाँ शिक्षा शक्ति के मुकाबले में गौण हैं। धार्मिकता, सेवा, ज्ञानोपासना और बलिदान यही जीवन का सर्वस्व है। और इन जीवन तत्वों का पोषण केवल शिक्षा-प्रसार से ही हो सकता है, दीर्घदर्शी समाज ही इस बात को समझ कर शिक्षा के क्षेत्र में अपना जीवन प्रदान कर सकता है। वे सच्चे ब्राह्मण थे। और ब्राह्मण होने के कारण ही वे हरिजन सेवा की विशेष जिम्मेदारी अपने सिर पर है, ऐसा समझते थे। स्वामीं श्रद्धानन्द जी को इसलिए मैं जातिगुरु कहता हूं।

कल्याण मार्ग के पथिक स्वामी श्रद्धानन्द जी की सेवा अपनी दृष्टि से अपूर्व है। राष्ट्रीय शिक्षण, धर्म, जागृति, समाज सेवा आदि अनेक क्षेत्रों में उन्होंने भारत वर्ष को एक नया ही रास्ता दिखाया है। श्रद्धा के बल से ही वे यह सब कर सके। जिस दिन उन्होंने अपने प्रिय पुत्रों को लेकर गुरुकुल की स्थापना के संकल्प से गंगा के तट पर निवास किया, वह दिन भारतवर्ष के वर्तमान इतिहास में महत्व का था। उस दिन उन्होंने हिन्दू जाति के उद्धार की नींव डाली, ऐसा कहा जा सकता है। जिस दिन उन्होंने अन्त्यज बालकों को अपनाया उसी दिन हिन्दू जाति को उन्होंने संगठित किया। और जिस समय उन्होंने पत्थर, गोली और खञ्जर की तरफ तुच्छता की नजर से देखा, उसी दिन भारतवर्ष को उन्होंने निर्भय किया अपनी अतुल श्रद्धा से उन्होंने अपना दीक्षा-नात कृतार्थ किया। सचमुच श्रद्धानन्द राष्ट्रमूर्ति थे। ऐसा समय जरूर आयेगा कि जब उनके द्वेषों और विरोधी भी स्वीकार करेंगे कि यह भारतवर्व का आधुनिक संन्यासी मित्र की नजर से ही सभी की तरफ देखता था। कायरों के जमाने में इस पुरुषसिंह की निर्भयता बहुत लोग न समझे होंगे और संशय की नजर से उन की तरफ देखा होगा, तो वह स्वामी जी का दोष नहीं था। वैदिक आर्यों का स्वभाव हम श्रद्धानन्द जी में देख पाते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

श्रद्धांजलियां

वीर सैनिक !

स्वामी श्रद्धानन्द जी एक सुधारक थे। कर्मवीर थे, वाक्शूर नहीं। उसका जीवन-जागृत विश्वास था। इसके लिये उन्होंने अनेक कष्ट उटाये थे। वे संकट आने पर कभी घवराये नहीं थे। वे एक वीर सैनिक थे। वीर सैनिक रोग-शय्या पर नहीं, किन्तु रणांगन में मरना पसन्द करता है।

ईश्वर उनके लिये धर्मवीर हुतात्मा की मृत्यु चाहते थे और इसलिए यद्यपि वे उस समय भी रोग-शय्या पर थे, एक घातक के हाथों से उनके देह का अन्त हुआ। गीता के शब्दों में "सुखिनः क्षत्रियाःपार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्।" धन्य और सौभाग्य-शाली हैं वे वीर, जिनको ऐसी मृत्यु प्राप्त होती है।

मृत्यु किसी भी समय सुखदायक होती है। किन्तु वह इस वीर के लिये दुगुनी सुखदायक होती है, जो अपने ध्येय या सत्य के लिये मरता है। इसलिये मैं उनकी मृत्यु पर शोक नहीं मना सकता। उनसे तथा उनके अनुयायियों से मुझे एक प्रकार की ईर्ष्या होती है। क्योंकि यद्यपि स्वामी जी मर गये हैं तथापि वे जीवित हैं, जबकि वे अपने विशाल देह के साथ हमारे मध्य विचरण करते थे। जिस कुल में उनका जन्म हुआ और जिस देश के साथ उनका संबंध था वे उनकी इस प्रकार की शानदार मृत्यु पर वधाई के पात्र हैं। वे वीर के समान जिये और वीर के समान ही मरे।

—महात्मा गांधी

नव भारत के पथप्रदर्शक

स्वामी श्रद्धानन्द जी से प्रथम परिचय का सौभाग्य मुझे भागलपुर में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के समय प्राप्त हुआ। उस समय तक स्वामी जी ने संन्यास नहीं लिया था और महात्मा मुंशीराम जी के नाम से ही प्रसिद्ध थे। गुरुकुल की स्थापना करके राष्ट्रीय-पद्धति से शिक्षा देना उन्होंने बहुत पहले ही आरम्भ कर दिया था और गुरुकुल का काम शान से चल रहा था। आप हिन्दी प्रेम और हिन्दी सेवा को देख कर ही सम्मेलन ने सभापति के पद पर आप का निर्वाचन किया था। सम्मेलन को जिस उत्तमता के साथ आपने निभाया, वह हमें आज भी अच्छी तरह याद है। पर स्वामी जी के गुणों को भारतवर्ष ईस्वी सन् 1919 और उसके बाद ही पूरी तरह से जान

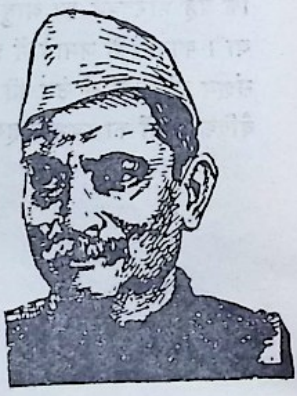

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सका। स्पष्टवादिता और निर्भीकता के वे मूर्तिमान् स्वरूप थे। उनकी निर्भीकता, साहस व स्पष्टवादिता के गुणों को अंग्रेजी सरकार अच्छी प्रकार जानती थी। परन्तु इन गुणों को उनके स्वदेशवासी सहयोगी कार्यकर्त्ता भी तीव्रता से अनुभव करते थे। जो लोग काले कानून के विदोधी आंदोलन के समय दिल्ली के चांदनी चौक में मौजूद न भी थे, उनके हृदय-पट पर भी स्वामी जी की वह निर्भीक मूर्ति अमिट रूप से चित्रित है। उस समय स्वामी जी ने अंग्रेजी गोलियों और संगीनों के सामने अपना सीना खोलकर हृदय की निर्भीकता तथा उच्चता का प्रत्यक्ष उदाहरण उपस्थित किया। उनकी उस शुद्ध तथा उच्च भावना ने जामामस्जिद के मिम्बर पर से उनसे उपदेश करवाया और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का मनोरम दृश्य दिखलाया और उसी दृढ़ता, सत्यनिष्ठा, स्पष्टवादिता और निर्भीकता के कारण आततायी के हाथों से शहादत प्राप्त की। भारत के आधुनिक इतिहास में स्वामी जी का स्थान प्रथम सांस्कृतिज्ञ पथप्रदर्शक का है। जिसको स्वामी जी के साक्षात् दर्शन का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, उनके लिये स्वामी जी के जीवन वृताण्त को पढ़ना ही मनुष्य को उन्नति के मार्ग पर अग्रसर करने वाला है। स्वामी जी ने गुरुकुल की स्थापना करके ब्रह्मचारियों के शिक्षण का ही प्रवन्ध नहीं किया, प्रत्युत उनका सारा जीवन ही देश के लिये एक महान् गुरुकुल का काम कर रहा है और करता रहेगा।

—डॉ० राजेन्द्र प्रसाद

निर्भीकता और समाज का पुञ्ज

1926 के अन्त में यह वर्ष एक भारी दुःखद दुर्घटना से सर्वत्र अन्धकारमय हो गया। इस दुर्घटना से सम्पूर्ण भारतवर्ष रोष व घृणा से कांप उ ठा। इस घटना से पता चलता है कि साम्प्रदायिक जोश हम लोगों को कितना नीचे गिरा सकता है। रोगशय्या पर पड़े हुये स्वामी श्रद्धानन्द जी की एक धर्मान्ध युवक द्वारा हत्या कर दी गई। जिस वीर पुरुष ने गोरखों की संगीनों के सामने अपनी छाती अड़ा दी थी और जो उनकी गोलियों का मुकाबिला करने के लिए आगे वढ़कर खड़ा हो गया था, उस वीर पुरुष की ऐसी मृत्यु ? लगभग आठ वर्ष

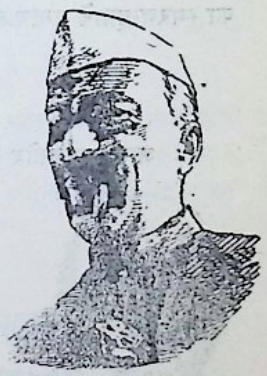

पूर्व आर्यसमाज के इस प्रमुख नेता ने देहली की शानदार जामा-मस्जिद की वेदी पर खड़े होकर हिन्दुओं तथा मुसलमानों के सम्मिलित विशाल जनसमुदाय को 'हिन्दु-मुस्लिम एकता' तथा भारतवर्ष को स्वतन्त्रता का सन्देश दिया था और उस विशाल समुदाय ने भी 'हिन्दू मुसलमानों की जय' के नारों से उनका स्वागत किया था तथा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मस्जिद से बाहर देहली की गलियों में हिन्दू व मुसलमान, दोनों ने उसको अपने खून से अधिक संपुष्ट किया था। आज उनकी अपने देश-भाई द्वारा हत्या कर दी गई। वह धर्मान्ध व्यक्ति निःसन्देह यह समझता था कि वह एक ऐसा पुण्य कार्य कर रहा है, जो उसे स्वर्ग में पहुंचा देगा।

विशुद्ध शारीरिक साहस का अथवा किसी भी शुभ कार्य के लिए शारीरिक कष्ट सहन करने एवं उस कार्य के लिये मृत्यु तक की परवाह न करने वाले गुणों का मैं सदा से प्रशंसक रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि हम सभी व्यक्ति ऐसे अद्‌भुत साहस की प्रशंसा करते ही हैं। स्वामी श्रद्धानन्द में इस प्रकार का निर्भीकता पूर्ण साहस आश्चर्यजनक मात्रा में विद्यमान था। वृद्धावस्था में भी उनकी उन्नत सीधी आकृति तथा संन्यासी वेश में उच्च भव्यमूर्ति, लम्बा कद, शाहाना शकल, चमकती हुई अन्त-र्भेदिनी आँखें और कभी-कभी दूसरों की निर्बलताओं पर मुख पर आ जाने वाली झुंझलाहट की झलक—इस सजीव मूर्ति को मैं कैसे भूल सकता हूं ? प्रायः यह तस्वीर मेरी आंखों के सामने आ जाती है।

—जवाहर लाल नेहरू

वीरता और बलिदान की मूर्ति

स्वामी श्रद्धानन्द जी की याद आते ही 1919 का दृश्य मेरी आँखों के सामने खड़ा हो जाता है। सरकारी सिपाही फायर करने की तैयारी में हैं। स्वामी जी छाती खोलकर सामने जाते हैं और कहते हैं—'लो, चलाओ गोलियाँ।' उनकी उस वीरता पर कौन मुग्ध नहीं हो जाता ? मैं चाहता हूं कि उस वीर सन्यासी का स्मरण हमारे अन्दर सदैव वीरता और बलिदान के भावों को भरता रहे।

—सरदार वल्लभभाई पटेल

हरिजन उद्धारक

आज ट्रावनकोर में हरिजनों के लिये मन्दिरोद्‌घाटन की जो ऐतिहासिक घोषणा हुई है, उससे स्वामी श्रद्धानन्द जी की दिवंगत आत्मा अवश्य प्रसन्न होगी। वस्तुतः हम से दस वर्ष पूर्व वियुक्त उस महान् आत्मा की इच्छापूर्ति का यह एक विशेष आयोजन है। उनके जीवनकाल में यह संभव नहीं था कि वे अपनी आँखों से अपने संदेश को पूरा होता हुआ देख सकते, जिसे आज हम ट्रावनकोर की हिन्दू रियासत में देखने का सौभाग्य प्राप्त कर रहे हैं। यदि आज वे जीवित होते तो उन्हें निःसन्देह हर्ष होता।

—चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्फूर्ति के स्त्रोत

श्रद्धेय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी की पुण्य-स्मृति का सन्मान करने में मैं हृदय से आपके साथ हूं। उनका उत्कृष्ट उदाहरण युवक पीढ़ियों के लिये स्फूर्ति का ऐसा स्रोत रहेगा, जो सदा युवकों में आत्मत्याग, तपस्या और कष्ट सहन की भावना का विकास करने वाला और कर्त्तव्य-पालन में उत्साह और साहस का संचार करने वाला होगा।

—मदनमोहन मालवीय

श्रद्धामय जीवन

श्रद्धानन्द जी की भारत को देन उनकी सत्य में अगाध श्रद्धा है। श्रद्धानन्द यह नाम ही उनकी उस भावना का परिचायक है। वे नित्य प्रति श्रद्धावान् थे और उसी में आनन्द मनाते थे। उनके लिये सत्य और जीवन एक हो गये थे। सत्य ही जीवन था और जीवन ही सत्य था। उनकी मृत्यु उनके निर्भीक अनथक प्रयत्नों के अमर चित्रों को आलोकित करती हुई एक प्रकाश किरण की तरह हमारे सामने आती है।

—कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर

भव्य-मूर्ति

वर्तमान काल का कोई कलाकार यदि ईसा की मूर्ति बनाने के लिए कोई जीवित मांडल सन्मुख रखना चाहे तो मैं इस भव्य-मूर्ति की ओर इशारा करूंगा। यदि कोई मध्यकालीन चित्रकार सैंटपीटर के चित्र के लिये नमूना मांगेगा तो मैं उसे इस जीवित मूर्ति के दर्शन करने की प्रेरणा करूंगा।

—रेम्जे मेकडानल्ड

दलितों के उद्धारक स्वामी श्रद्धानन्द

इस जीवन में बहुत कम ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्हें मैं उतना प्रेम करता हूं जितना स्वामी श्रद्धानन्द जी को करता था। हमारी स्वच्छ, निर्मल तथा प्रगाढ़ मैत्री में कदाचित् ही घुंघलापन आया हो। उनके उच्च चरित्र की ही महत्ता थी जिसने उनके प्रति मेरे प्रेम को सच्चा और गहरा बनाया था। यह जानकर मैं बहुत प्रसन्न होता था कि स्वामी जी भी मुझसे प्रेम करते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस 'बलिदान-जयन्ती' के अवसर पर, श्रद्धानन्द ट्रस्ट के मन्त्री जी की अपील मुझ तक महात्मा गाँधी जी के साथ वर्षा आश्रम में ठहरे हुए पहुंची है। आज मैं 20 वर्ष पूर्व के उस दिन की ओर आँख उठा कर देखता हूं, जब मैंने पहले-पहल महात्मा गाँधी से गुरुकुल हरिद्वार के उस तपस्वी महात्मा मुंशीराम जी के सम्बन्ध में बातचीत की थी। दक्षिण अफ्रीका के प्रिटोरिया में जब हम आपस में बातचीत कर रहे थे तो बातचीत के अन्तर्गत महात्मा गाँधी गुरुकुल और महात्मा मुंशीराम जी के प्रति प्रकट किये गये मेरे उत्साह पर बीच-बीच में मुस्करा उठते थे। महात्मा गाँधी उस समय की प्रतीक्षा में थे जबकि वे गुरुकुल को देखने का प्रसन्नतादायक अवसर प्राप्त करेंगे। हम दोनों ने यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि संभव हुआ तो हम दोनों एक ही साथ महात्मा मुंशीराम जी से भेंट करेंगे।

इस जयन्ती के पुनीत अवसर पर जो संदेश मैं देना चाहता हूं वह बहुत सीधा-सादा है और मुझे आशा है कि वह सन्देश प्रत्येक आर्यसमाज के प्रत्येक सदस्य और उसके द्वारा शेष भारत तक पहुंचेगा। मैं यह भी चाहूंगा कि यह संदेश समुद्र पार समस्त भारतवासियों तक पहुंचे। भारत के बाहर आर्यसमाज में मेरे बहुत से दोस्त हैं, जो मुझे इसलिए प्रेम करते हैं कि मैं स्वामी श्रद्धानन्द जी को जानता और उन्हें प्रेम करता था। मेरा संदेश यह है कि स्वामी श्रद्धानन्द एक अत्यन्त स्निग्ध और उदार हृदय रखते थे। जब कभी गरीबों, दुखियों और दलितों के नाम पर उनके हृदय को अपील की जाती थी तो वह अपील उनके लिए अपरिहार्य हुआ करती थी। इसलिए जब-जब बलिदान जयन्ती आये तब-तब उनके सच्चे प्रेमियों का ध्यान गरीबों की ओर जिन्हें वह प्यार करते थे, जाना चाहिए और उन गरीबों को भी परमात्मा के बच्चे समझना चाहिए।

—सी. एफ. एंड्रूज

अनुराग के आराध्य देवता

मेरी स्मृति और मेरे अनुराग के आराध्य देवता स्वामी श्रद्धानन्द वर्तमान

सन्तति के सन्मुख एक ऐतिहासिक मूर्ति के रूप में विराजमान हैं। मैं सदैव अनुभव करती हूं कि स्वामी श्रद्धानन्द भारत के वीरकाल की एक दिव्य विभूति थे। अपनी भव्य मूर्ति और ऊंचे व्यक्तित्व के द्वारा वह अपने साथियों में देवता की नाँई रहा करते थे। एक समय वह एक बड़े शिक्षा केन्द्र (गुरुकुल काँगड़ी) के मुख्याधिष्ठाता थे। यद्यपि उन्होंने कभी किसी बड़े विश्वविद्यालय में शिक्षाप्राप्त नहीं की भी तो भी वह अपने जीवन की शहादत की अन्तिम घड़ियों तक साहस और कर्मयोग की अनुपम मूर्ति

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रहे और भारतीय जीवन के धार्मिक व आध्यात्मिक क्षेत्र में ओर राष्ट्र-सुधार के कार्यों में इन गुणों का सुन्दर परिचय देते रहे। मानव-समाज की सेवा के सम्बन्ध में उनके उच्च भावों का मैं बहुत आदर करती हूं।

—सरोजनी नायडू

निर्भय वीर सेनापति

स्वामी श्रद्धानन्द एक ऐसे पुरुष थे जिन्हें 'यथावादी तथाकारी' कहा जा सकता है। अपनी मातृभूमि से सब तरह की बुराइयों का नाश करने में वह एक निर्भय योद्धा थे। वास्तव में उन्होंने अपना सभी कुछ होम कर अन्त में मातृभूमि की सेवा के लिये अपना जीवन भी समर्पित कर दिया। अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए उन्होंने अपना जीवन का भी मोह नहीं किया।

—विधिशेखर भट्टाचार्य

स्वामी श्रद्धानन्द की जय

स्वर्गीय स्वावी श्रद्धानन्द जी आर्यसमाज की महात्मा पार्टी के नेता थे। वह स्वयं उच्च वर्ग के हिन्दुओं में से थे। परन्तु उन्होंने दलित-जातियों को उच्च जाति के अत्याचारों से मुक्त कराने में किंचिन्मात्र भी संकोच नहीं किया। उन्होंने अपना सारा जीवन मनुष्य-मात्र की सेवाओं के अर्पित किया हुआ था। वह सच्चे हिंदू थे। उन्होंने अस्पृश्यता और सामाजिक विषमता जैसी उन अहिन्दू दुर्भावनाओं तथा रीति-रिवाजों को, जो कि मध्यकाल के ब्राह्मणों के अज्ञान के कारण पैदा हो गये थे, अपने हृदय से निकाल दिया था।

कुछ समय के लिए उन्होंने कांग्रेसमैन के रूप में भी काम किया। परन्तु अन्त में उन्होंने अपना सारा जीवन हिन्दू-जाति के सामाजिक और धार्मिक सुधार करने में लगा दिया। वह वैदिक संस्कृति के प्रकाश स्तम्भ थे। उन्होंने अपने जीवन का चरम भाग दलित-जाति के उद्धार के काम में अर्पित किया था। उनका वैदिक धर्म में अटूट और अदम्य विश्वास था। वह वैदिक धर्म के निर्भीक प्रचारक थे।

पौराणिक मूर्तिवाद के प्रचारकों ने हिन्दू-समाज में छुआछूत की प्रथा को प्रचलित कर दिया था। यह छुआछूत का धर्म घृणा का धर्म है। ऐसा धर्म वैदिक धर्म की पवित्र भावनाओं के प्रतिकूल है। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने छुआछूत के धर्म की जी-जान से निन्दा की। वेद सार्वभौम मानव-धर्म के स्रोत हैं। उन्होंने वैदिक-धर्म की विश्वव्यापी शोभा तथा आभा को संसार में स्थापित करने के लिए भागीरथ प्रयत्न किया और अन्तिम क्षण तक इस उद्देश्य-पूर्ति में लगे रहे। इसी महान् उद्दे-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

श्य के लिए आंदोलन करते हुए प्रत्येक हिन्दू को उनके इस पवित्र बलिदान-यज्ञ में अपना-अपना भाग समर्पित करना चाहिये जिससे स्वामी श्रद्धानन्द जी की स्मृति सदा चिरंजीवी रहे।

—लाला हरदयाल

प्राणीमात्र का प्रेमी

प्रातः स्मरणीय स्वामी श्रद्धानन्द के बलिदान को अनेक वर्ष हो गये। गुरुकुल की स्थापना कर और उसमें हिन्दी को मुख्य स्थान देकर उन्होंने शिक्षा-सम्बन्धी दूर-दर्शिता और सच्ची राष्ट्रीयता का रास्ता दिखाया था। उनकी सात्विक सरलता, सिद्धान्तों में दृढ़ता, देश, मानव-समाज तथा प्राणी-मात्र के लिएसच्चा प्रेम और स्वाभाविक निर्भयता आदि गुणों की छाप आज भी मेरे हृदय पर अङ्कित है और मेरे जीवन की सुरक्षित सम्पत्ति है।

—पुरुषोत्तमदास टण्डन

असीम साहस की मूर्ति

मैं अपने आपको इस बात से गौरवान्वित समझता हूं कि स्वामी जी की पुण्य स्मृति में मुझे भी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने का अवसर दिया गया है। मुझे तो स्वामी जी के अनेक गुणों में उनका असीम साहस सब से अधिक आकर्षित करता रहा है। शारीरिक, मानसिक, सामाजिक आध्यात्मिक साहस व उत्साह से वह जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त कार्य करते रहे। उसका सात्विक हठ बहुत ही प्रिय था। उनका सारा जीवन वीरोचित था और अन्त में भी उन्हें वीरगति ही मिली। ऐसे ही महापुरुष हमारे देश का सिर इस गिरी अवस्था में भी उन्नत किये हुए हैं।

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं, मम तेजोंऽशसंभवम्॥

—श्री प्रकाश

महान् हुतात्मा का हिन्दू-जाति को सन्देश

इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि हमारे श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द जी ने हिन्दू-जाति पर तथा हिन्दुस्तान की बलि वेदी पर अपने जीवन की आहुति दे दी। उनका संपूर्ण जीवन और विशेषकर उनकी शानदार मौत हिन्दू-जाति के लिये एक स्पष्ट संदेश देती है हिन्दू-राष्ट्र के प्रति हिन्दुओं का क्या कर्तव्य है—इसे मैं स्वामी जी के अपने शब्दों में ही रखना चाहता हूँ। सन् १९२६ के २९ अप्रैल के "लिबरेटर" पत्र में वे लिखते हैं—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"स्वराज्य तभी संभव हो सकता है, जब हिन्दू इतने अधिक संगठित और शक्तिशाली हो जाएं कि नौकरशाही तथा मुस्लिम धर्मोन्माद का मुकाबला कर सकें।

उपर्युक्त उद्धरण से हिन्दू-जाति की तीव्र मांग का पता चल सकता है और विशेष ऐसे नाजुक समय में जब कि इस में चारों ओर से आघात और आक्रमण हो रहे हों। हिन्दुओं का एक प्रबल संगठन ही चारों ओर से सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता है और यही सब दुर्घटनाओं की एकमात्र रामबाण औषध है। यदि हिन्दू-जाति को ज्ञान और सम्मान से जीवित रहना है। तो उसे यही पाठ याद करना होगा और उसे अमल में लाना होगा। हे हिन्दुस्तान के हिन्दुओ ! यदि तुमने उस महान् हुतात्मा के बहुमूल्य आदेश और सम्मति की अवहेलना की तो तुम्हारा क्लेश और नाश निश्चित ही है। हां, यदि तुम इसे क्रियात्मक रूप दे सके तो तुम उस भयङ्कर युद्ध में अवश्य विजयी होगे, जो युद्ध चारों ओर से इस जाति पर असंख्य दुर्घटनाओं के साथ हो रहा है। तभी तुम जातीय गौरव को स्थापित कर सकोगे और हिन्दू-राष्ट्र को इस मर्त्यलोक में तीव्र ज्योति से चमकता हुआ राष्ट्र बना सकोगे।

—विनायक दामोदर सावरकर

मनुष्य जाति का महान् पुनर्निर्माता

स्वामी श्रद्धानन्द जी मनुष्य-जाति के एक महान् पुनर्निर्माता थे। स्वामी दयानन्द जी के बताये मार्ग पर उत्तर भारत में की हुई स्वामी जी की सेवाओं के लिये पंजाब को गर्व हो सकता है। यह स्वामी जी जैसे कर्मठ पुरुष के प्रयत्नों का ही फल है कि बंगाल के नौजवानों में आर्यसमाज के आदर्शों और कार्य-प्रणाली के प्रति आदर का भाव उत्पन्न हुआ है। बंगाल की जनता के मन में स्वामी जी वर्तमान भारतवर्ष के एक आदरणीय व्यक्ति के रूप में हमेशा के लिये अंकित रहेंगे।

—विनयकुमार सरकार

स्वामीजी के कार्य पूरे करो

अमर शहीद श्रद्धानन्द जी का स्वर्गवास हुए बहुत वर्ष हो चुके हैं तो भी उनकी स्मृति अभी तक पुरानी नहीं होती है, और हो भी कैसे ? स्वामी जी का उज्जवल सेवा कार्य आज भी हमारे सामने प्रत्यक्ष है और बहुत वर्ष बीतने पर भी उनका शुरू किया हुआ एक भी कार्य हमने पूरा नहीं किया है। राष्ट्रीय शिक्षा, राष्ट्रभाषा का प्रचार और हरिजन उद्धार, ये तीन कार्य इस क्षण मेरी नजर के सामने हैं। 'कल्याण मार्ग पथिक' जो कुछ कह गया और कर गया, उसी को इन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

थोड़े वर्षों में अगर हम पूर्ण करें तो हमारा जन्म सचमुच कृतार्थ होगा। स्वामी जी के खून का बदला प्रतिहिंसा से लेने का किसी भी भारतवासी ने प्रयत्न नहीं किया, यही स्वामी जी की शिक्षा का आर्यत्व सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है।

—काका कालेलकर

महात्मा और ज्ञानी पुरुष

स्वामी श्रद्धानन्द जी ज्ञानी और महात्मा थे। वे ज्ञानी की अपेक्षा महात्मा अधिक थे। उनका जीवन तथा प्राणोत्सर्ग धर्म और देश के लिये हुआ। मैं उस महान् आत्मा के प्रति कृतज्ञतापूर्वक अपनी श्रद्धांजलि भेंट करता हूं।

—श्री चक्रवर्ती विजय राघवाचार्य

स्वामी जी का अमर सन्देश

जब मैं स्वामी जी के जीवन का, उनके उत्तम विचारों का, उनके भाव एवं सेवा का ख्याल करती हूं तो ऐसा मालूम देता है कि वह आज भी जीवित हैं। यद्यपि शरीर नहीं लेकिन भारत में उनकी आत्मा पूर्णत: नजर आती है।

वह हरिजनों की उमड़ती लहरें, वह मन्दिरों का खुलना, वह गली-गली में भगवान् की कथाओं का होना, उन कथाओं में हरिजनों का सम्मिलित होना, मंदिरों में हंस-हंस कर जाना और हाथ बांध कर भगवान् के सामने खड़े होकर यह शिकवा करना कि भगवान् ! क्या पाप हमसे हुए हैं ? क्या हम तुम्हारे जीव नहीं, क्या हम इतने दरिद्र थे, जो तुम हमसे छिपे बैठे थे। आज इतने अरसे बाद तुमने दर्शन दिये।

वे सारे दृश्य जब आंखों के सामने से गुजरते हैं, तो एक बार स्वामी जी की शिक्षा व उपदेश स्मरण हो आते हैं।

स्वामी जी का एकमात्र संदेश यही है कि हम हरिजनों को इन्सान समझ कर उनका सुधार करें, जाति-भेद को मिटाने की कोशिश करें, आपस में प्रेम व एकता के भाव पैदा करें और अंत में सारी शक्ति को मिलाकर देश सेवा में लगा दें। यही उनका उपदेश हैं और यही उनकी आत्मा चारों कोनों से कह रही है।

—उमा नेहरू

महान् भारतीय की विरासत !

स्वामी श्रद्धानंद जी एक महान् पुरुष, महान् भारतीय तथा महान् आत्मा थे। मुझे उन को समीप से जानने और उन के साथ कार्य करने का सौभाग्य एवं अवसर प्राप्त हुआ था। वे अपने पीछे हिन्दुत्व तथा हिन्दुस्तान के कार्य के लिए

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अपने महान् सच्चे त्याग और लगन की विरासत छोड़ गये हैं। हम लोग हिन्दू या भारतीय कहलाने के अयोग्य सिद्ध होंगे यदि हम ने हिन्दुस्तान को स्वतंत्र न किया और हिन्दू समाज की बुराइयाँ निकाल कर उसे पवित्र न बना दिया। मेरा विश्वास है कि उनकी स्मृति चिरकाल तक हमारे लिये स्फूर्ति और आदर्श का काम देगी।

—सत्यमूर्ति

उच्च चरित्र और अनुपम त्याग

स्वर्गीय स्वामी जी ऐसे प्रसिद्ध व्यक्ति थे, जिन्होंने देश भर में अपने उच्च चरित्र, गम्भीर पवित्रता, अनुपम त्याग तथा देश और हिन्दू-जाति के प्रति नानाविध बहुमूल्य सेवाओं के कारण अपने सहधर्मियों से प्रतिष्ठा और प्रशंसा प्राप्त की थी। वे जाति के भूषण थे। हम उनके विनीत प्रशंसक इससे अधिक और क्या शुभ कार्य कर सकते हैं कि हम सचाई के साथ उनके उज्जवल उदाहरण की प्रतिस्पर्धा करने की चेष्टा करें और उनके योग्य सहधर्मी तथा देशवासी बनने का यत्न करें।

—सी० वाई० चिन्तामणि

धन्य है वह जीवन !

स्वामी श्रद्धानन्द ;

वे लक्ष्य पर पहुंचे !

उन्होंने सब कुछ पाया !

वह अपना काम इतिहास में बहुत गहरा अंकित कर गये !

उन्हें मेरी श्रद्धाञ्जलि !

प्रत्येक जीवन का कोई चिन्ह होता है। उनके जीवन का चिन्ह 'सेवा' !

उनकी स्मृति नये जीवन को जगा देवे और राष्ट्र के युवकों में नई रूह फूंक देवे !

दीन दलितों की इस सेवा के लिए, जो धर्म और आजादी दोनों का दिल है हम से अलग होकर भी वे मरे नहीं !

वे तो अब भी बोल रहे हैं !

और उन सब को जिन्हें मैं सुना सकता हूं, उस शहीद का वह संदेश सुनाना चाहता हूं जो इस क्षण मुझे याद आ रहा है !

यह वह संदेश है जिस में प्राचीन नवीन का अभिनंदन करता है— 'धन्य है वह जीवन जो बलि में प्रज्वलित हो।"

—टी० एल० वासवानी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मेरे प्रेरणा स्रोत

स्वामी जी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने भारत में माध्यमिक और उच्च शिक्षा के माध्यम के रूप में देशभाषा (स्वभाषा) को प्रयुक्त किया। अब तो इस सिद्धांत का अनेक विश्वविद्यालयों ने अनुसरण कर लिया है। वह स्वामी जी ही थे जिन से प्रेरणा पाकर मैंने अपने भारतीय महिला विद्यापीठ की समस्त परीक्षाओं में स्वभाषा को माध्यम बनाया।

—महर्षि अण्णा साहब कर्वे

राष्ट्र-निर्माता

स्वामी श्रद्धानन्द जी भारत के उन महापुरुषों में हैं, जिन का इतिहास में शाश्वत स्थान है। भारत के सांस्कृतिक इतिहास की कहानी अधूरी ही रह जायेगी यदि उस में शिक्षा सामाजिक सुधारणा, धार्मिक पुनरुत्थान और वेद धर्म की सेवा के क्षेत्र में की गई स्वामी जी की सेवाओं का उचित अंकन न किया जाय। आर्य ऋषियों की दो विशेषताओं—आदर्शवादिता और त्याग की भावना—का स्वामी जी में सुन्दर समन्वय हुआ था। स्वाधीन भारत के तरुणों के लिये उनका जीवन प्रेरणा स्रोत बना रहेगा। वे स्वतंत्र भारत के निर्माताओं में अनन्यतम हैं।

—श्री माधव श्रीहरि अणे

उज्ज्वल चरित्र!

स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानंद जी की तपस्या, स्वार्थ त्याग, समाज-सेवाएँ सब बहुत ही उज्जवल हैं। जब-जब उनकी स्मृति जागृत होती है तब-तब उन की धीरोदात्त, भव्य और गम्भीर मुद्रा मानों आँखों के सामने उपस्थित हो जाती हैं। इस शुभ अवसर पर मैं उनके प्रति स्मृति रूप में अपनी श्रद्धांजलि विनीत भाव से अर्पित करता हूं। जिस देश में ऐसे महानुभाव जन्म लेते हैं उन देशों की कभी भी अवनति नहीं हो सकती।

—गणेश वासुदेव मावलंकर

भारत की सर्वश्रेष्ठ विभूति

स्वामी जी की पुण्य स्मृति को निरन्तर देश और समाज के सामने जीवित और जागृत रखना उपयोगी और आवश्यक है। स्वामी जी का स्थान हमारे देश की सर्वश्रेष्ठ विभूतियों में है और सदैव रहेगा। उनका देश प्रेम, भारतीय-संस्कृति और सभ्यता के प्रति अगाध श्रद्धा और विश्वास, अदम्य साहस और वीरता, असाधारण त्याग, निर्बल और दलितों के प्रति आन्तरिक प्रेम व सहानुभूति और पुनीत सदाचार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भारतीय पुरुषरत्नों के इतिहास में सदैव अंकित रहेंगे। उनके यशस्वी जीवन के प्रधान गुणत्याग और सेवा से आज हम भारतवासियों का मस्तक गर्व से ऊंचा है।

—गोविन्द वल्लभ पन्त

सामाजिक और धार्मिक सुधारक

श्रद्धानन्द जी का स्थान सामाजिक और धार्मिक सुधारकों में बहुत ऊँचा है। उन्होंने वैदिक-संस्कृति का पुनरुत्थान करने का स्तुत्य प्रयत्न किया। उन्होंने देश की स्वतन्त्रता के लिए जो कुछ किया है वह हम भूल नहीं सकते। इस महान् आत्मा को मैं इस सन्देश से श्रद्धाञ्जलि दे रहा हूं।

—कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

जातीय निर्माता

निःसन्देह राजनीतिज्ञों और योद्धाओं का किसी जाति के निर्माण करने में बड़ा हाथ होता है। परन्तु उनके नाम सहज में ही भूल जाते हैं, जब कि उन महात्माओं के नाम, जो किसी जाति के नवीन जीवन को बनाते हैं, आगामी नस्लों की स्मृति में सदा बने रहते हैं। उन्हीं में से स्वामी श्रद्धानन्द जी थे। मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि उनका नाम ऐसे जातीय निर्माताओं के रूप में, जिन्होंने बड़े से बड़े बलिदान किये, सदा स्मरण रहे। उनके बलिदानों में से सबसे बड़ा बलिदान यह था कि उन्होंगे हिन्दू-मुस्लिम एकता की वेदी पर अपने शरीर की भी आहुति दे दी।"

—पट्टाभि सीतारामैय्या

उस नर-रत्न से भारत धन्य है

स्वामी जी की सेवाएं, उनका साहस और प्रखर प्रतिभा की बात जब याद आती है, तो हृदय कृतज्ञता से भर जाता है। यह इस देश का परम सौभाग्य है कि उस दुःख दुर्दिन की अवस्था में भी उसे स्वामी जी जैसे नर-रत्न को अपने बीच पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, जिन्होंने न केवल अपने जीवन से बल्कि मृत्यु से भी देश को साहस और तपस्या के मार्ग में अग्रसर कर दिया। हम आप के अनुष्ठान की सफलता चाहते हैं।

—आचार्य क्षितिमोहन सेन

उन का कार्य सर्वोत्कृष्ट था

स्वामी जी की प्रतिभा बहुमुखी थी और देश के लिए उनका कार्य सर्वोत्कृष्ट

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

था। उनके प्रति वास्तविक श्रद्धांजलि यही हो सकती है कि हम उनके कार्य को जारी रखें और उनको सफल बनाएं।

—जगजीवनराम

देदीप्यमान मूर्ति

मेरा दृढ़ निश्चय है कि भारत के आधुनिक संकट-मय समाज में मानवता के प्रतिनि:स्वार्थ सेवा ही, जिसके लिये अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपने जीवन का समर्पण कर दिया, हमारा पथ-प्रर्दशन कर सकती है। मुझे आशा है कि स्वामी जी की वह देदीप्यमान स्मृति यावच्चन्द्रदिवाकरौ हमारे अन्दर अपने कर्त्तव्यों को पूरा करने के लिये नवचेतना का संचार करती रहेगी।

—गोविन्द सखाराम सरदेसाई

धर्मयुद्ध की शिक्षा

स्वतन्त्रता-संग्राम के प्रधान सेना-नायकों और नये भारत के निर्माताओं में स्वामी श्रद्धानन्द जी का स्थान ऊँचा है। उनकी स्मृति को सदा उज्ज्वल बनाये रखना चाहिये और उस से स्वार्थत्याग, परहित एवं देशहित चिन्तन और निर्भय युद्ध की शिक्षा लेनी चाहिये।

—भगवानदास-

सेवा और त्याग की मूर्ति

स्वामी श्रद्धानन्द जी इस देश के सर्वमान्य नेता थे। उन की स्मृतियों को हम कभी भूल नहीं सकते। उन की सेवा, उन का त्याग, उनकी कार्यक्षमता हमारे लिये आदर्श स्वरूप है। हमारा कर्तव्य है कि उनकी स्मृति में प्रतिवर्ष उन का गुण-गान करें और अपने को इस योग्य बनायें कि उन का महान् कार्य सुचारू रूप से संपन्न कर सकें।

—अमरनाथ झा

जनता का निर्भीक सेवक

स्वामी श्रद्धानन्द जी एक महापुरुष थे। उन्होंने अपना सारा समय हिन्दू जाति के उपकार और संगठन में लगा दिया और अन्त में इसी कारण उन्होंने अपने प्राण न्योछावर कर दिये। उनकी बरसी मनाते समय उन के अनुयायियों के लिये मेरा यही संदेश है कि सब निर्भीक जनता के सेवक बनने का यत्न करें।

—बालगंगाधर खेर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उनके अनुकरणीय गुण

स्वामी श्रद्धानन्द जी जिस काम को ठीक समझते थे उसे पूरा करने में जिस जबरदस्त लगन, साहस और त्याग के साथ जुट जाते थे, वह बात आज देश के लोगों में बहुत ही कम दिखाई देती है। वे जिसे न्याय समझते थे उस के लिये "निन्दन्तु नीतिनिपुणाः" वाले श्लोक को अपने जीवन में पूरी तरह उतार देते थे। वे महान् थे। उन के थोड़े से भी गुण अगर हम में आ जावें तो देश आज के दुःखों को बहुत जल्दी पार कर जावे।

—सुन्दरलाल

जीवन को आदर्श बनाने का व्रत

प्रत्येक आर्य-पुरुष हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी को स्मरण करेगा। गुरुकुल कांगड़ी उन की अमर स्मृति है। यदि कुलवासी अपने कुलगुरु स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की उस सन्देश-परम्परा को प्रचलित रख सकें जिसे उन्होंने ऋषि दयानन्द से ग्रहण किया था और उन के व्रत को धारण कर सकें, जो अपने जीवन को आदर्श आर्य जीवन बनाने तथा प्रचलित असत्य प्रवाह के विरुद्ध बुद्धि-स्वातन्त्र्य के निर्भीकता पूर्वक सत्य को ग्रहण करने तथा इस के लिये मृत्यु तक को सहर्ष आलिंगन करने का था, तो हम सभी का कल्याण होगा।

—मदनमोहन सेठ

(पूर्व प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश)

निर्भय और निःस्वार्थ त्याग

स्वामी जी के अन्दर वे महान् गुण थे जो कि प्राचीन परम्पराओं के अनुरूप एक सच्चे संन्यासी में होने चाहियें। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी स्वामी जी की निर्भय और निःस्वार्थ त्याग की भावना भारत की सच्ची राष्ट्रीयता के लिए महान्तम आदर्श है।

—जी० वी० केसकर

वे समस्त संसार को आर्य देखना चाहते थे

स्वामी श्रद्धानन्द जी का शुद्धि संदेश अर्थात् 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' के आदर्श का भारत तथा यूरोप, अमेरिका आदि अन्य देशों के लोगों में, जो आर्यवंश के (आर्य रक्त के) होते हुए भी आर्य धर्म के नहीं हैं, उन में आर्य-धर्म का प्रचार करना गुरुकुल के प्रत्येक स्नातक का विशेष ध्येय होना चाहिये।

—जुगलकिशोर बिड़ला

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वतन्त्रता के उपासक

धन्यकीर्ति स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज उन थोड़ी सी विभूतियों में से थे जिन्होंने देश और धर्म दोनों की सेवा की। भारत की स्वतंत्रता की उन के हृदय में लगन थी और उन की कल्पना केवल भौगोलिक किंवा धार्मिक आज़ादी तक ही सीमित नहीं थी, अपितु ऋषि दयानन्द की भाँति वे भारत की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक स्वतंत्रता भी चाहते थे। भारत की सांस्कृतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक परतंत्रता की शृंखला को तोड़ने के लिये उन्होंने उस कठिन समय में भी गुरुकुल की स्थापना की थी। इस से उन्होंने उन क्षेत्रों में (सांस्कृतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक) विदेशी आधिपत्य जो चुनौती दी थी। हमारे दुर्भाग्य से यह चुनौती अभी तक, भारत की भौगोलिक और राजनैतिक स्वतंत्रता हो जाने पर भी, सफल नहीं हुई है। और मुझे तो पहले से भी अधिक खतरा दिखाई देता है। पहले तो हम विदेशी भाषा, विदेशी वेषभूषा और विदेशी संस्कृति पर मुग्ध नहीं थे। और उन सब को शीघ्र से शीघ्र हटाना चाहते थे। परन्तु आज उच्च कोटि के भी ऐसे-ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं जो उन की रक्षा करना चाहते हैं और भारत की भारतीयता को गौण मानते हैं।

—घनश्यामसिंह गुप्त

साहस और त्याग का जीता जागता उदाहरण

स्वामी जी ने इस आदर्श संस्था गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापन में जो अनथक परिश्रम और आदर्श त्याग किया, वह भुलाया नहीं जा सकता। इस के अतिरिक्त राजनीतिक क्षेत्र में भी स्वामी जी ने साहस और त्याग का जीता जागता उदाहरण हमारे सामने प्रस्तुत किया। स्वामी जी के ये प्रशंसात्मक कार्य उन के अनुगामियों और प्रशंसकों का पथ प्रदर्शन करते रहेंगे और एक नई स्फूर्ति का संचार करते रहेंगे।

—गोकुलचन्द्र नारङ्ग

अमर शहीद

पूज्य प्रातः स्मरणीय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी की पवित्र-पुण्यस्मृति राष्ट्र की बुझी हुई आत्मा में जीवन-ज्योति जागृत करे, यही एकमात्र कामना है। वे मर कर भी अमर हैं। महान् पुरुषों का भौतिक शरीर भले ही तिरोहित हो जाय परन्तु उन का अमर आत्मा विश्व के लिये प्रकाशस्तम्भ बन जाता है।

जिये तो जान लड़ाते रहे वतन के लिये,
मरे तो हो गये कुरबान संगठन के लिये।

—हरिशंकर शर्मा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हम उन के चिर ऋणी हैं

भारत में कौन ऐसा अभागा होगा जो स्वामी जी के नाम और काम से अपरिचित हो। स्वामी जी का कार्य भुलाये नहीं भूल सकता। अपनी ही बलि चढ़ा कर हिन्दू धर्म की स्वामी जी ने जो सेवा की उस के लिये हिन्दूसमाज आपका सदैव ऋणी ही रहेगा।

—दा० वि० गोखले

गौरवशाली बलिदान

ऋषिकल्प श्रद्धानन्द को मैं युग-पुरुष मानता हूं। उत्तर भारत के आज के तरुणों में जो दिमागी गुलामी का ह्रास हुआ है, तथा आज का हिन्दी-साहित्य रूढ़िवाद से मुक्त हो कर जो चिर सत्य और संयतमुक्त विचार का प्रकटीकरण कर सका है, उस का शत-प्रतिशत श्रेय श्रद्धानन्द जी को है। यही बात मैंने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में भी व्यक्त की थी।

संयोग से मैं उन की मृत्यु के कुछ क्षण बाद, पुलिस के भी आने से पहले पहुंच गया था, उस क्षण को मैं अपने जीवन में नहीं भूल सकता हूं, न आंखों से ओझल होने देता हूँ। अभी तो मेरा उपन्यास 'सोमनाथ' छपा है, उस में बहुत भारी प्रेरणा उसी क्षण ने दी है वे शब्द भी याद हैं जो उस दिन दिल्ली में अपना सिर घुमाते हुए लाला लाजपतराय ने कहे थे –

"श्रद्धानन्द ने मुझे परास्त कर दिया, उन की मौत पर मैं रश्क करता हूं। ऐसी इज्जत की मौत मुझे कहां नसीब हो सकती है।

मैं यह मानता हूं कि श्रद्धानन्द के न रहने से आर्यसमाज ही नहीं, समूचा उत्तर भारत असहाय, सूना और अनाथ रह गया है।

—चतुरसेन शास्त्री

कैलेंडर : डायरी

१९७७ के लिए

इस बार महर्षि दयानन्द के असली चित्र के साथ
कैलेंडर छपा है, भेज रहे हैं डायरी तैयार है।
तुरन्त आदेश भेजें।

डायरी सजिल्द : मूल्य ६)। ४०५) सैंकड़ा
कैलेंडर : ६०) सैंकड़ा

दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शहीद श्रद्धानन्द !

● स्वर्गीय महाशय कृष्ण जी

मैंने पहली बार शहीद श्रद्धानन्द के उस समय दर्शन किये जब कि मैं कालेज का विद्यार्थी था। उनसे मिलकर मेरे हृदय में उनके लिये जो श्रद्धा उत्पन्न हुई वह बढ़ती ही गई। उसका कारण यह था कि उनके तप और त्याग के जीवन में वृद्धि होती गई और मेरी ही नहीं अपितु हमारे आर्य जगत् की श्रद्धा बढ़ती गई। १९०१ या २ से लेकर १९२६ तक जब कि उनका बलिदान हुआ मुझे उनके चरणों में बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनका जीवन आदर्शजीवन तो था ही उसके साथ भरपूर भी था। उनके सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि वे बड़े भाग्यवान् थे। आर्य समाज में जो यश उन्हें प्राप्त हुआ है वह किसी और को नहीं हुआ। यह इस लिये कि आर्य समाज ने सुधार की ओर जो भी पग उठाया। उनके द्वारा वे उस प्रत्येक आन्दोलन के जिससे आर्य समाज के यश में वृद्धि हुई, अगुआ थे। दूसरों को उपदेश देने की अपेक्षा उन्होंने प्रत्येक सुधार में आर्य जनता का पथ-प्रदर्शन किया। उनकी धर्मपत्नी का देहान्त उस समय हुआ जब कि वे केवल ३२ वर्ष के थे। किन्तु उन्होंने दूसरे विवाह का चिन्तन न किया। उनके कई सहकारियों ने उनसे बड़ा होने पर भी दूसरा विवाह किया। उन्होंने यह लहर चलाई कि पहली धर्मपत्नी के देहान्त पर आर्य कोई दूसरा विवाह न करें और आर्य समाज के मुखिया होने पर कुछ एक सज्जनों ने पुनर्विवाह किया तो वे बदनाम हुए। किन्तु उनकी चलाई हुई लहर देर तक चल न सकी। हां, उन्हें यह लाभ अवश्य हुआ कि अपनी धर्म पत्नी के देहांत पर उन्होंने ब्रह्मचर्य का जो व्रत धारण किया उससे उनकी शारीरिक तथा मानसिक अवस्था उन्नत हुई और वे निश्चिन्त होकर आर्यसमाज अर्थात् धर्म, देश, और जाति की सेवा कर पाए ! उन्हें यह सौभाग्य प्राप्त है कि उन्होंने सब से पहिले पंजाब में हरिजनोद्धार का कार्य आरम्भ किया। यह १८९९ की बात है जब कि महात्मा गांधी अभी दक्षिण अफ्रीका में थे। उन्होंने हरिजनों की एक जाति रहतियों को आर्य

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समाज में प्रविष्ट किया। यह नई या निराली बात थी। सारे पंजाब में इस पर शोर मचा। पुराने विचारों के हिन्दु और सिख इसके विरोध पर तुल गये किन्तु महात्मा मुन्शी राम ने इस विरोध की किंचिन्मात्र भी परवाह न की। हिन्दू बिरादरी ने आर्य समाजियों का बहिष्कार कर दिया। कहारों ने उनका पानी भरना बन्द कर दिया, नाइयों ने उनकी जरूरत पूरी करने से इन्कार कर दिया। बिरादरी ने प्रत्येक रीति से उन्हें बहिष्कृत सिद्ध करने का यत्न किया। यह बहिष्कार जालन्धर व रोपड़ तथा अन्य स्थानों में हुआ। रहतियों के प्रवेश के साथ समस्त हरिजन जातियों के लिये आर्य समाज का द्वार खुल गया। मेरी जन्म भूमि गुजरांवाला की एक तहसील वजीराबाद है। वहां की आर्यसमाज ने मेघों को अपने साथ मिलाया तो वहां की हिन्दू बिरादरी ने आर्य समाजियों का पानी बन्द कर दिया। मेरी गली का कुआं मेरी निजि सम्पत्ति था। मेरी बिरादरी के लोग मुझे तो पानी भरने से रोक न सकते थे, उन्होंने मेरे कुएँ का बहिष्कार कर दिया। किन्तु बहिष्कार देर तक न चल सका। धीरे-धीरे आर्य समाज ने हरिजनों की तमाम जातियों को अपनी गोद में ले लिया। और आर्य समाज से बाहिर कोई भी हरिजन न रहा। आर्य समाज ने छुआछूत समाप्त कर दी थी किन्तु १९३८ के Communal Award ने जो बर्तानिया के प्रधान मंत्री मिस्टर रैमसे मैकडानैल्ड ने दिया इसे पुनर्जीवित कर दिया। चुनाव में भाग लेने के लिये जो हरिजन अपने को आर्य कहने लग गये थे वे फिर से चमार, मेघ, डोम बटवार इत्यादि कहने लग गये। महात्मा गांधी ने हरिजनों की आर्थिक तथा नैतिक स्थिति को उन्नत करने के लिये बहुत कुछ किया है किन्तु निस्संदेह उन पर उत्तरदायित्व है कि उन्होंने हरिजनों को विस्तृत आर्य (हिन्दू) समाज में विलीन होने नहीं दिया। आज उनका अपना अस्तित्व है और जब किसी हरिजनमंत्री का नाम लिया जाएगा तो उसके साथ हरिजन शब्द का प्रयोग अवश्य किया जायेगा। शासन कांग्रेस तथा महात्मा गांधी के भक्तों के हाथ में है इस लिये हरिजनोद्धार का सारा श्रेय महात्माजी का दिया जाता है। किन्तु इतिहासवेत्ता इस बात से इन्कार न कर सकेंगे कि हरिजन उद्धार का श्रीगणेश स्वा० श्रद्धानन्द, भूतपूर्व महात्मा मुन्शी राम ने किया। इतिहास की व्यवस्था यह होगी कि हरिजन उद्धार का काम सब से पहले कांग्रेस ने नहीं बल्कि आर्य समाज ने आरम्भ किया।

हरिजनोद्धार का कार्य बड़ा विकट है। कई शताब्दियों से सुधारक तथा महात्मा लोग छुआछूत के विरुद्ध प्रचार करते आये हैं किन्तु वह इस समय तक मिट नहीं सकी। और वह मिट भी नहीं सकती जब तक कि जन्म पर आश्रित जाति पांति की अंत्येष्टि न हो जाय। आर्य समाज छुआछूत को समाप्त करने से लिये कुछ काम कर पाया तो इस लिये कि वह जन्म पर आश्रित जाति के विरुद्ध है और गुण कर्म के आधार पर वर्ण मानता है महात्मा मुंशी राम को यह श्रेय भी प्राप्त है कि पंजाब

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में सब से पहले उन्होंने जन्म की जात पाँत को तोड़ कर अपनी कन्या का विवाह किया। इस पर उनका घोर विरोध हुआ। हिन्दू बिरादरी की ओर से ही नहीं अपितु आर्य पुरुषों की ओर से भी, जिन्होंने यह समझा कि अभी इस सुधार का समय नहीं आया। वे भूल गये कि सुधार का समय स्वयं नहीं आया करता, उसे विशेष पुरुष लाया करते हैं।

जन्म की जातिपांति का विरोध उतना ही कठिन था जितना कि छुआछूत का किन्तु दोनों के विरोध में क्रियात्मक पग उठाने का श्रेय महात्मा मुन्शीराम को प्राप्त हुआ।

फिर उन्हें यह श्रेय भी प्राप्त है कि उन्होंने वैदिक वर्ण व्यवस्था को पुनर्जीवित करने के लिये हरिद्वार में गंगा के तट पर गुरुकुल स्थापित किया। और अपने दोनों पुत्र हरिश्चन्द्र तथा इन्द्र को अपने साथ लेकर हरिद्वार चले गये। उन्होंने केवल इसके लिए वकालत ही न छोड़ी प्रत्युत अपनी सारी सम्पत्ति उसके अर्पण कर दी। उन के दोनों पुत्र सबसे पहले गुरुकुल के स्नातक हो कर निकले। धर्म पत्नी के देहान्त पर वे एक प्रकार से वानप्रस्थका जीवन व्यतीत करने लग गये थे। गुरुकुल आकर तो वास्तविक अर्थों में वानप्रस्थी हो गये। उन्हों ने अपना सारा समय और सारी शक्ति गु०कु० की सेवा में लगा दी और एक भिक्षु का जीवन व्यतीत करने लग गये। गुरुकुल कांगड़ी १९०२ में स्थापित हुआ। १९१८ में उन्होंने आश्रम मर्यादा को पूरा करने के लिए संन्यास ग्रहण किया। और मुन्शीराम से श्रद्धानन्द बन गये। आश्रम मर्यादा को पूर्ण करने का श्रेय भी उन्हें ही प्राप्त हुआ।

१९१८ में उन्होंने संन्यास धारण किया और १९१९ में वे राजनैतिक क्षेत्र में कूद पड़े और महात्मा गांधी जी के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर देश की सेवा करने लग गये। महात्मा गांधी ने रोलट एक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह जारी किया। परिणामतः प्रजा पर बड़ा अत्याचार हुआ। पंजाब पर मार्शल ला लगा दिया गया। जनरल डायर की आज्ञा से जलियाँवाला बाग में हजारों निहत्थे स्त्री पुरुषों पर गोली चलाई गई जिससे हजारों व्यक्ति मारे गये।

कई देशभक्त फांसी के तख्ते पर लटकाये गये और कई आयु भर के लिए समुद्र पार अंडमान भेजे गये। कई परिवार निराश्रित हो गये। जब मार्शल ला उठा तो स्वामी श्रद्धानन्द ऐसे निस्सहाय परिवारों के लिये पंजाब भर में घूमे। जिन परिवारों को कोई आशा न रही थी उनकी फिर से आशा बंधाई। जहां पं० मदन मोहन मालवीय और पं० मोतीलाल नेहरू न्यायालयों में निरपराधियों की ओर से वकील के पेश होने का प्रबन्ध करते थे वहां स्वामी श्रद्धानन्द ने उनके निस्सहाय परिवारों के लिये आर्थिक सहायता की। पंजाब ने उनका उपकार माना। और

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१९१९ के दिसम्बर मास के अन्तिम सप्ताह में कांग्रेस का जो अधिवेशन अमृतसर में हुआ उसकी स्वागत समिति का अध्यक्ष उन्हें बनाया।

उन्हें जीवन में इतने श्रेय प्राप्त हुये जितने कि किसी भी मनुष्य को प्राप्त न हुये होंगे। किन्तु उन्हें जो शानदार मौत हासिल हुई उसने जीवन को चार चांद लगा दिये। २३ दिसम्बर १९२६ को अब्दुल रशीद नामक एक व्यक्ति ने जो यह कहकर उनके पास आया था कि वह उनसे धर्मचर्चा करना चाहता है, उन पर गोली चला दी। उस समय वे रोग शय्या पर लेटे हुये थे। निमोनिया के रोग ने उन पर आक्रमण कर रखा था। उन्हें एक शहीद अथवा हुतात्मा की मृत्यु प्राप्त हुई। और इस प्रकार उनका यश तथा कीर्ति अपनी पराकाष्ठा तक पहुंच गया। जिस समय रोगी श्रद्धानन्द पर गोली का वार हुआ उस समय आसाम की राजधानी गोहाटी में कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा था। स्वा० श्रद्धानन्द के बलिदान का समाचार सुन कर उन्होंने ये शब्द कहे—

A glorious end to a glorious Career. अर्थात् जैसा शानदार स्वामी श्रद्धानन्द का जीवन था वैसी ही शानदार उनकी मृत्यु हुई। कौन है जिसकी यह इच्छा न हो कि उसका अन्त ऐसा शानदार हो ? किन्तु विरले और भाग्यवान् पुरुषों को ही इस प्रकार की मृत्यु मिल सकती है। कौन कह सकता है कि यह श्रेय कितने जन्मों के कर्मों का फल है। शहीद तीन प्रकार के बताये गये हैं। एक वे जो जीवन के लिहाज से शहीद थे किन्तु उन्हें शहीदों की मृत्यु प्राप्त हुई। दूसरे वे जो जीवन के लिहाज से शहीद न थे किन्तु उन्हें मृत्यु शहीदों की मिली। और तीसरे वे जो जीवन और मृत्यु दोनों लिहाज से शहीद थे। महात्मा हंसराज पहली श्रेणी के, महाशय राजपाल दूसरी श्रेणी के, और पं० लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द और महात्मा गांधी तीसरी श्रेणी के शहीद थे। शहीद श्रद्धानन्द की पुण्य स्मृति में ये चन्दशब्द कह कर मैं उनके चरणों में अपनी श्रद्धांजलि भेंट करता हूँ।

कार्यकर्त्ता व्यक्ति चाहिए !

हमें ऐसे योग्य व्यक्तियों की आवश्यकता है जो निर्वाह योग्य धन लेकर संस्थान के कार्यालय में काम कर सकें। योग्यता में उपाधियों को नहीं, भावना, ईमानदारी और हस्तलेख को महत्त्व दिया जायेगा। इच्छुक सज्जन पत्र व्यवहार करें—

प्रबन्धक दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आपके चरणों में सिर झुकाने को मैं अपना फ़र्ज़ समझता हूं।
—महात्मा गांधी

महात्मा गांधी जिन्हें अपना बड़ा भाई समझते थे ?

सन् १९१३ में महात्मा गांधी ने अफ्रीका में भारतीयों के अधिकारों की प्राप्ति के लिए सत्याग्रह आरम्भ किया। आन्दोलन के इस नये रूप से जहाँ अफ्रीका वासी भारतीयों में आत्म विश्वास और नव चैतन्य का संचार हुआ वहाँ इस देश के राजनैतिक नेताओं को भी पराधीनता की बेड़ियाँ काट कर फैंकने के लिए एक नई दिशा सूझी और स्वभावतः ही शिक्षितवर्ग में अफ्रीकावासी अपने भाइयों के लिये सहानुभूति अनुभव हुई। भारत में श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने जिन्हें महात्मा गांधी एक रूप में अपना राजनीतिक गुरु तक मानते थे, इस आन्दोलन की सफलता के लिए भरसक प्रयत्न किया और स्थान-स्थान घन संग्रह करके अफ्रीका भेजा। पर इस एक दम नये और समुद्रपार के आन्दोलन के लिए श्री गोखले को आशानुकूल घन की प्राप्ति नहीं हो रही थी। एक दिन वह इसी चिन्ता में लीन निराश हुये बैठे थे कि अकस्मात् हरद्वार से उन्हें इकट्ठी १५००) की राशि उपरिखित रूप से मिली जिसे पाते ही वह प्रसन्नता से उछल पड़े। इस प्रसन्नता का कारण राशि मात्रा इतनी नहीं थी जितनी की दान की सात्विकता। गुरुकुल विश्व विद्यालय काँगड़ी के ब्रह्मचारियों ने अपने भोजन में कमी करके और कठोरशीत में दूधिया-बन्द पर कड़ी मशक्कत करके एक एए पैसा जमा किया था और इस प्रकार उपर्युक्त राशि श्री गोखले के पास धर्म युद्ध की सहायतार्थ भेजी थी।

जब अफ्रीका में महात्मा गांधी को विद्यार्थियों के इस निस्वार्थ त्याग का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समाचार मिला तो वह इससे इतने प्रभावित हुये कि २१ अक्तूबर १९१४ को उन्होंने फिनिक्स नैटाल से महात्मा मुंशीराम को (जो बाद में स्वामी श्रद्धानन्द के नाम से विख्यात हुये) निम्न आशय का पत्र अंग्रेजी में लिखा—

प्रिय महात्मा जी !

श्री एण्ड्रूज ने मुझे आपके नाम और काम का परिचय दिया है। श्री एण्ड्रूज ने मुझे यह भी बताया है कि आप, गुरुदेव (श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर) और श्री रुद्र से किस प्रकार प्रभावित हुये हैं। आपके शिष्यों ने सत्याग्रहियों के लिये जो काम किया है उसका वर्णन भी उन्होंने मुझसे किया है। अतः मैं तीन संस्थाओं के संचालकों, व भारत के तीन सपूतों के प्रति अपना आदर व्यक्त करना चाहता हूं।

आपका—

मो० क० गांधी

महात्मा गांधी स्वामी श्रद्धानन्द और गुरुकुल से इतने प्रभावित थे कि सन् १९१५ में जब फिनिक्स सत्याग्राहाश्रम के विद्यार्थी भारत आए तो गाँधी जी ने उन्हें कई मास तक गुरुकुल में ही रखना उचित समझा और स्वयं भारत पहुंचते ही पूना से स्वामी जी को पत्र लिखा—

आपके चरणों में सिर झुकाने को मैं अपना फर्ज समझता हूं।

आपका सेवक—

मो० क०

और अपने आने की सूचना दिये बिना ही हरिद्वार चल पड़े। उन दिनों गुरुकुल गंगा के पार चण्डी पर्वत की उपत्यका में हरिद्वार से लगभग ४ मील दूर काँगड़ी ग्राम के समीप था। हरिद्वार से गुरुकुल तक सवारी का साधन भी कोई नहीं था। जो यात्री बरसात में वहाँ जाते थे उन्हें बाँसों और पीपों की बनी छोटी सी तमेड़ पर ही अपनी जान हथेली पर लेकर गंगा की विशाल और भयंकर धारा को पार करना पड़ता था।

गाँधी जी किसी तरह गुरुकुल पहुंचे वहाँ न कोई उन्हें पहचानता था, और न ही उनके आने की कोई सूचना थी। तब तक वह इतने विख्यात भी नहीं हुये थे। जब गांधी जी ने गुरुकुल भूमि में सर्व प्रथम मिलने वाले व्यक्ति से पूछा—"महात्मा (मुन्शीराम) जी हैं।" तो उस व्यक्ति ने अत्यन्त अन्यमनस्क भाव से 'होगा कोई' की उपेक्षा के साथ महात्मा मुंशीराम की कुटिया की ओर इशारा कर दिया (गाँधी जी धीर पदविन्यास पुण्यसलिला जान्हवी के तट पर खटुए की छाया में अविष्ठित कुटिया में पहुंचे और जाते ही महात्मा मुंशीराम के चरण पकड़ लिये।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महात्मा मुंशीराम स्तब्ध होकर देखते रहे कि काठियाबाड़ी पगड़ी बाँधे और खद्दर का अत्यन्त सादा सा कुर्ता पहने, पतला और लम्बा, ग्रामीण सा दिखने वाला यह अजनबी व्यक्ति कौन है ?

महात्मा मुंशीराम को इस आश्चर्य मुद्रा में क्षण भर भी न बीता होगा कि गांधी जी स्वयमेव बोल पड़े—"क्यों आपने मुझे पहचाना नहीं ? मैं हूं आपका छोटा भाई मोहनदास कर्मचन्द गांधी।" और तब महात्मा मुंशीराम ने गांधी जी को गले लगा लिया। यह था दोनों महापुरुषों का प्रथम साक्षात्कार।

पीछे जब गुरुकुल वासियों की ओर से अभिनन्दन पत्र समर्पित किया गया तो उसका उत्तर देते हुये भी गांधी जी ने कहा था—"मैं हरिद्वार महात्मा (मुंशीराम) जी के दर्शनों के लिए आया हूं। मैं इनके प्रेम के लिए कृतज्ञ हूँ। मिस्टर एण्ड्रूज ने मुझे भारत में अवश्य मिलने योग्य जिन तीन महापुरुषों का नाम बताया था उनमें से महात्मा जी मुझे अपना भाई कहकर पुकारते ·· ··· हैं।"

गुरुकुल कांगड़ी के चौदहवें वार्षिकोत्सव पर गाँधी जी पुनः गुरुकुल पधारे। उस अवसर पर अपने भाषण में उन्होंने कहा था—इस समय मैं महात्मा जी का बन्दा बनकर आया हूं। महात्माजी मेरे बड़े भाई हैं। जब मैं विदेश में था तब मेरे लड़के यहाँ रहते थे। महात्मा जी उनके पिता और ब्रह्मचारी उनके भाई थे मैंने १४ वर्षों से देखा है कि इनमें स्वार्थः त्याग और भारत के हित का भाव है। अतएव मैं इनका सत्संग करना चाहता हूं।

गांधी जी स्वामी श्रद्धानन्द जी का कितना मान करते थे और किस प्रकार उन्हें अपना मार्ग दर्शक मानते थे, यह उनके एक अन्य पत्र से विदित होता है। एक पत्र उन्होंने स्वामी श्रद्धानन्द जी को लिखा—

आपका पत्र मुझे बल देता है·· ·· मेरे कार्य में आर्थिक त्रुटियाँ आयेंगी तब आपका स्मरण अवश्य करूँगा। आश्रमवासी सबसे अधिक आपके आने की राह देखते हैं। अवधि बीतने पर हम सब अधीर हो जाएंगे।" एक दूसरे पत्र में गांधी जी ने लिखा था 'मेरी यह आजिजी है कि थोड़े दिनों के लिए अहमदाबाद के इस आश्रम को पवित्र करो। आश्रमवासी आपका दर्शन कर कृतार्थ होंगे।

गांधी जी स्वामी श्रद्धानन्दजी का केवल आदर ही नहीं करते थे, किन्तु उनके जीवित जाग्रत विश्वास के कायल भी थे। जब सन् १९२० में अमृतसर में अखिल भारतीय काँग्रेस महासभा के स्वागताध्यक्ष पद से भाषण देते हुए स्वामी श्रद्धानन्द जी ने कांग्रेस जैसी राजनीतिक संस्था के मंच से अस्पृश्यता निवारण पर बल दिया

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तब कुछ वाकशूर राजनीतिज्ञ खिलाड़ियों ने इसे दकियानूसी कहा। किन्तु गांधी जी ज्यों २ इस प्रश्न के महत्व को हृदयंगम करते गये त्यों त्यों स्वामी जी के विचारों के समर्थक होते गए। और आगे जाकर स्वामी जी की एतद्विषयक जीवित धारणाणों से वह इतने अधिक प्रभावित हुये कि हरिजनोद्धार केवल उनके जीवन का ही नहीं, प्रत्युत कांग्रेस के कार्य-क्रम का आवश्यक और अविच्छिन्न अंग वन गया। अपने 'बड़े भाई' और 'मार्गदर्शक' की मृत्यु पर गाँधी जी ने लिखा—

'ईश्वर उनके लिए कर्मवीर हुतात्मा (शहीद) की मृत्यु ही चाहते थे और इसलिए यद्यपि वह उस समय रोग शय्या पर थे उनके शरीर का अन्त एक घातक के हाथ से हुआ। मृत्यु किसी भी समय सुखदायक होती है। किन्तु वह उस वीर के लिए तो दुगुनी सुखदायक है जो अपने ध्येय के सत्य के लिए मरता है·· उनसे तथा उनके अनुयायियों मे मुझे ईर्ष्या है।···जिस कुल में उनका जन्म हुआ और जिस देश के साथ उनका सम्बन्ध है वे उनकी इस प्रकार की शानदार मृत्यु के लिए बधाई के पात्र हैं। वह वीर की तरह जिये और वीर की ही तरह मिटे।"

जानकार लोगों का कहना है कि उपर्युक्त सन्दर्भ में जिस वीर गति और उसके प्रति ईर्ष्या का उल्लेख है, अपने जीवन के अन्तिम दिनों में गांधी जी के मन में उसकी लालसा तीव्रतम रूप में जागृत हो उठी थी और वह प्रायः स्वामी श्रद्धानन्द और उनकी मृत्यु को याद किया मरे थे।

जव कलकत्ते में मुस्लिम लीग की "सीधी कार्यवाही" के परिणाम स्वरूप खून की होली खेली गई और उसकी बिहार में हुई प्रतिक्रिया के दूषित चक्र की नोआखली में पुनरावृत्ति हुई और वहाँ के अल्पसंख्यक 'त्राहि— त्राहि' पुकार उठे तव गांधी जी एकाकी और अराधीत अवस्था में वहां गये और बुढ़ापे में जवानी को लजाते हुए पैदल जाकर लोगों को सान्त्वना, शांति और निर्भयता का संदेश देने लगे, तव उस साम्प्रदायिक विद्वेष से लबालव भरे वातावरण में यह नितान्त सम्भव था कि कोई मनचला मतान्ध उस वृद्ध शांतिदूत को भी अपने खंजर का·····(शांतं पापम्)।

इसी मानसिक स्थिति में नोआखाली में गांव २ पैदल भ्रमण करते हुये एक दिन शाम को पड़ाव पर पहुंच कर गांधी जी अपने प्राईवेट सेक्रेटरी श्री निर्मल बोस से पूछने लगे— निर्मल, तूने [स्वामी श्रद्धानन्द जी का नाम सुना है ?" कौन स्वामी श्रद्धानन्द ? श्री निर्मल बोस ने पूछा।

'जिसे एक भ्रान्त मुसलमान ने बुढ़ापे में रोग शय्या पर पड़ी हुई दशा में गोली का निशाना बनाया था।' गांधी जी ने उत्तर दिया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

निर्मल बोस अभी इतना ही कह पाये थे कि गांधी जी बीच में बोल पड़े — 'मैं सोचता था कि कहीं उनकी तरह "और इतना कहकर गांधी जी ने स्वयं ही अपनी बात काट दी और कहने लगे—'नहीं कुछ नही, कोई खास बात नहीं। तुम, अपना काम करो। देखो मेरे पैर धोने का पानी गर्म हो गया या नहीं ?

बात आई गई हो गई। किन्तु इस छोटी सी घरती से जीवन के अन्तिम दिनों में गांधी जी की मनःस्थिति की कल्पना की जा सकती है। अपने बड़े भाई की मृत्यु पर जो उद्‌गार उन्होंने प्रगट किये थे—'ईश्वर उनके लिए ही शहीद की ही मृत्यु चाहता··उनसे मुझे एक प्रकार की ईर्ष्या होती है··वे वीर की तरह जीए और वीर की तरह मरे इत्यादि शब्दों से व्यक्त होने वाली अदृश्य अकांक्षा के प्रति स्वरूप ही कौन जाने कालक्रम से ही ये शब्द उन पर भी घाटत हो गये।

जिस प्रकार भ्रांत व्यक्ति की गोलियों का निशाना बन कर 'बड़े भाई' ने शहादत पाई उसी प्रकार छोटे भाई ने भी भ्रांत व्यक्ति की गोलियों का निशाना बनकर बड़े भाई का पदानुगमन किया। दिल्ली महानगरी और यमुना की धारा दोनों भाईयों की समान शहादत की साक्षी है।···

प्रेरक, ज्ञानवर्धक, अनुपम नवीन वैदिक साहित्य

१. **वेदाञ्जलि** !

वैदिक विनय तीनों भागों के मन्त्रों का नया सुसम्पादित संस्करण सजिल्द : मूल्य १५ रु०

२. **गीता भाष्य**

योग और अध्यात्म के गूढ़ अर्थों का नवीनतम दिव्य सन्देश भगवान् कृष्ण की वाणी का सच्चा स्वरूप। स्व० पं० आर्यमुनि जी की दिव्य लेखनी का प्रसाद। सजिल्द : १५ रु०

३ **सामवेद**

आध्यात्मिक भाष्य पं० विश्वनाथ विद्यामार्तण्ड की सूझ-बूझ का आलौकिक प्रसाद सजिल्द : मूल्य २५ रु०

४. **अपने प्रभु से**

स्वामी दयानन्द सरस्वती की आर्याभिविनय के प्रथम खण्ड का भाष्य ज्ञानी पिंडीदास जी द्वारा। सजिल्द : मूल्य १० रु०

५. **उपनिषद् संग्रह**

ईष-केन-कठादि ५ उपनिषदों का भाष्य महात्मा नारायण स्वामी द्वारा। सजिल्द : मूल्य १० रु०

आदेश के साथ १/४ धन अग्रिम भेजे।

मंगाईं : बांटिये : प्रचार कीजिए

जन-ज्ञान-प्रकाशन

वेद मन्दिर, नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ब्रह्मचर्य

[ले०—श्री स्व० स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज]

आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः ।
प्रजापतिर्विराजति विराडिन्द्रोऽभवद्वशी ।।

मन्त्रसारः—आचार्य पद के योग्य ब्रह्मचारी होता है। ऋषि दयानन्द इसी आशय को लेकर संस्कार विधि में लिखते हैं। "आचार्य उसको कहते हैं कि जो सांगोपाँग (अंगों, शिक्षा कल्पनादि और उपांगों-न्याय वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा वेदांत सहित) वेदों के शब्द अर्थ सम्बन्ध और क्रिया का जानने हारा, छल कपट रहित, अति प्रेम से सब की विद्या का दाता परोपकारी, तन, मन, और धन से सबको सुख बढ़ाने में तत्पर, जो पक्षपात किसी का न करे, सत्योपदेष्टा सबका हितैषी धर्मात्मा जितेन्द्रिय होवे। आचार्य के पास शिष्य किस उद्देश्य से जाता है? इसका वर्णन यजुर्वेद २९ अध्याय के मन्त्र ४९ में किया है।

ऋजीते परि वृङ्ग्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः ।
सोमो अधिब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ।।

हे आचार्य! अपने तेज से हमारे शारीरिक तथा मानसिक) रोगों को सब ओर से दूर कीजिए, हमारा शरीर चट्टान की न्याई दृढ़ हो, अमृत और मृत्यु का हमें उपदेश कीजिए और हमारे लिए सुख का विधान कीजिए (अर्थात् मौत से छुड़ाकर अमृत पान कराइये) जिसमें ऊपर कहे गुण निवास करते हों तो सहज में ही उपरोक्त गुणों को धारण करने वाला हो, वही आचार्य होने के योग्य है। जिसका अपना शरीर वस्त्र के तुल्य नहीं वह दूसरों का शरीर दृढ़ कैसे कर सकेगा? जिसको स्वयं जिन्दगी और मौत का ज्ञान नहीं वह दूसरों को अमृत कैसे पिला सकेगा?

इसलिए यहां अन्तिम बल इस बात पर दिया गया है कि अब्रह्मचारी पुरुष व स्त्री कभी भी आचार्य के पवित्र आसन पर न बिठाये जायें। मक्कारी से जनता

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

को धोखा देकर यदि कोई अब्रह्मचारी आचार्य बन भी जाय तब भी उसके प्रयत्न का परिणाम उसके वास्तविक रूप को प्रकाशित कर देता है। वृक्ष अपने फल से पहचाना जाता है। जिस गुरु के चेले तप के जीवन में न ठहर सकें और स्वार्थ तथा भोग से न बच सकें उसको ब्रह्मचारी न समझना चाहिये।

जहां आचार्य पूर्ण ब्रह्मचारी हो वहां प्रजा का रक्षक राजा भी अवश्य ब्रह्मचारी ही होगा। एक सत्तात्मक राज्य वा प्रजातन्त्र राज्य दोनों में शासक ब्रह्मचारी ही होने चाहियें राजा वा प्रधान पुरुष से लेकर चपरासी और चौकीदार तक सब प्रजा की रक्षा के लिए नियुक्त होते हैं। यदि प्रजा की 'जान व माल की हिफाजत' वे नहीं करते तो उन्हें प्रजापति नहीं कह सकते परन्तु क्योंकि ब्रह्मचारी ही प्रजापति बनने के योग्य हैं? इसलिये वे कि उसे राष्ट्र से ऊंचा उठाना पड़ता है। रक्षक वही होता है जो अपने रक्षित प्रजा से ऊंचा उठा हुआ है निर्बलों की सहायता वही कर सकता है जो स्वयं सबल हो, अन्यथा अंधे को अंधा गढ़े में ही गिरा देगा।

जब शासक प्रजा से ऊपर उठा हो तभी वह सारे ऐश्वर्य का मालिक होता है। जो कामनाओं का दास है, सम्पत्ति का मालिक वह नहीं बन सकता जो सम्पत्ति के पीछे स्वार्थ के मद से अन्धा होकर दौड़ता है उस से सम्पत्ति कोसों दूर भागती है, परन्तु जो सम्पत्ति को लात मार कर ऊपर उठता है उसके पीछे सम्पत्ति भागी फिरती है। मुनिवर पंतजलि के शब्दों में "अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्व रतीवस्थानम्" जो दूसरों के पदार्थ पर दृष्टि नहीं रखता उसके सामने सारी दौलत हाथ बांधे खड़ी रहती है। गुसाईं तुलसीदास ने ठीक कहाहै —

जिमि सरिता सागर पहँ जाहीं, यद्यपि ताहि कामना नाहीं।
तिमि सुख सम्पति विनहि बुलाये, धर्मशील पहि जाहिं सुभाये॥

अपने अन्दर के पशुभाव पर विजय प्राप्त करके ही स्वर्ग प्राप्ति होती है। मर कर स्वर्ग प्राप्ति की लोकोक्ति के यही अर्थ हैं।

शासक वही हो सकता है जो तप और सत्य के प्रभाव से साधारण प्रजा से ऊपर उठ जाये। तभी उसके वश में सारी प्रजा हो सकती है। इसी वेदाज्ञा का प्रभाव था कि भारतवर्ष में राजा के बेटे को राजगद्दी देने से पहचे आचार्य कुल में रक्खा जाता था। एक दृष्टांत से इस वेद मन्त्र का भाव उत्तम रीति से स्पष्ट होगा। एक युवराज का गुरुकुल निवास का समय समाप्ति पर आया तो उसका पिता (राजा) उसे घर पर लाने के लिए आचार्य कुल में राजा से कहा कि अन्तिम एक शिक्षा बाकी है। उसके पूरा होते ही राजकुमार को उनके हवाले कर दिया जायगा। यह कहकर

'हाँ उनसे साक्षात्कार तो कभी नहीं हुआ। पर मैं उनके नाम से परिचत हू.। वह तो एक महान् कर्मठ व्यक्ति थे उनके बारे में क्या?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज की आर्यजगत् से अपील

दयानन्द संस्थान को पूरा सहयोग दें

प्रचार का सबसे उत्तम एवं स्थायी साधन साहित्य है। यह प्रसन्नता की बात है कि दयानन्द संस्थान इस सम्बन्ध में बहुत उपयोगी कार्य कर रहा है।

मेरी हार्दिक इच्छा है कि दयानन्द संस्थान इसी प्रकार प्रगति करता रहे। आर्यजगत् का भी कर्त्तव्य है कि वह इस संस्थान को अपना सहयोग दे।

—आनन्द स्वामी सरस्वती

आचार्य कोड़ा हाथ में लेकर घोड़े पर चढ़ गया और राजकुमार को साथ भागने की आज्ञा दी। आज्ञा पालक शिष्य साथ चल दिया। गुरु ने घोड़े को बहुत तेज कर दिया और जब राजकुमार पीछे रहने लगा तो उसके कोड़े जमाता गया। राजा की आंखें क्रोध से लाल हो गई। आचार्य ने राजकुमार को राजा के चरण छूने की आज्ञा दी और राजा को सम्बोधन करके कहा—'राजन्! शायद कल ही इस मेरे शिष्य को राजगद्दी मिल जाय और वह लाखों के जान और माल का रक्षक बने। तब अन्याय और अत्याचार से बचने के लिये इसे आज की शिक्षा काम आयेगी क्योंकि इसने समझ लिया है कि पराधीनता और दास्ता में कितना कष्ट है।" राजा सन्तुष्ट होकर राजकुमार को घर ले गया। संसार इस समय नरक कुण्ड इसीलिए बना हुआ है कि प्रजा के रक्षक ब्रह्मचारी नहीं हैं।

शब्दार्थ—(आचार्यो ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी आचार्य होता है (ब्रह्मचारी प्रजापतिः) ब्रह्मचारी ही प्रजापालक राजा होता है (प्रजाँपतिविराजति) राजा प्रजापति होकर विविध प्रकार से राज करता है, राष्ट्र से ऊपर उठता है (विराट् इन्द्रो भवद्वशी) ऊंचा उठ कर प्रजा को वश में कर मालिक होता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जय बलिदानी श्रद्धानन्द!

जय भारत के वीर भक्त हे आर्य धर्म के बलिदानी।
जय मातृ भूमि के प्यारे जय स्वदेश के अभिमानी ।।
जीवन घन में चमक उठीं सौभाग्य तड़ित की प्रिय रेखा।
हुई प्रफुल्ति कर्म फलों की रस-धारा सी ध्रुव लेखा ।।
'मानिक' से आभाले आयी जगतीने कौतुक देखा।
दयानन्द की दिव्य दया से पावनता थी प्रकटानी ।।१।।
पट-परिवर्तन हुआ कि ऐसा तमसा का साम्राज्य हटा।
ज्ञान भानु की किरणों का फिर खुलकर अनुपम खेल डटा ।।
सागर के ही बल से मानो शुभ्र हिमालय था प्रकटा।
व्रत निष्ठा, तप त्याग याग थी महिमा सबने मन मानी ।२।
चमत्कार ही हुआ शकल लोहे के, पारस छू पाया।
चमक दमक परिपूर्ण कीमती कुन्दन ही बनकर आया ।।
आर्यधरा ने बड़े प्यार से वीर व्रती को अपनाया।
कीर्ति किन्करी मंगल गाती मन ही मन में मुसकानी ।।३।।
कार्य क्षेत्र में डटा आर्य वीरों का प्यारा नेता जो।
ज्ञानी, ध्यानी, ऋषि अनुगामी संस्कृति का नचिकेता जो ।।
जीवन के संघर्ष मञ्च का धीर जयी नेता अभिनेता जो।
पद-पद पर विघ्नों के भय से हार जिसने नहीं मानी ।।४।।
सदियों से विछुड़ों अपनों को फिर से तुमने अपनाया।
शुद्धि साम-संगीत सुधामय सरगम को तुमने गाया ।।
मधुर मिलन का पर्व पुरातन जगती में फिर मन भाया।
'विश्वमार्यम् कृण्वन्तो" भी गूँज गयी शुचि श्रुति वाणी ।।५।।
गुरुकुल गंगा धार धरा परा तुम उतार करले आये।
पुराचीन शिक्षा के दीपक मन मन्दिर में जलवाये ।।
शतशः स्नातक शुद्धपूत हो अवनी में जाकर छाये।
वैदिक संस्कृति की गुरुगरिमा पावन जिनसे विकसानी ।।६।।
मातृभूमि पारतन्त्र्य पाश में तुमने आग लगायी थी।
अमृतसर ने सुनी तुम्हारी राष्ट्रभाव शहनायी थी ।।
वीर जवाहर श्री गांधी ने गौरवगाथा गायी थी।
गोरी संगीनों में तुमने रंगीनी छाती तानी ।।७।।

(श्रद्धानंद बलिदान जयन्ती-विशेषांक के लिए प्रेषित)

—प्रणव शास्त्री

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

॥ ओ३म् ॥

मेरे पिता

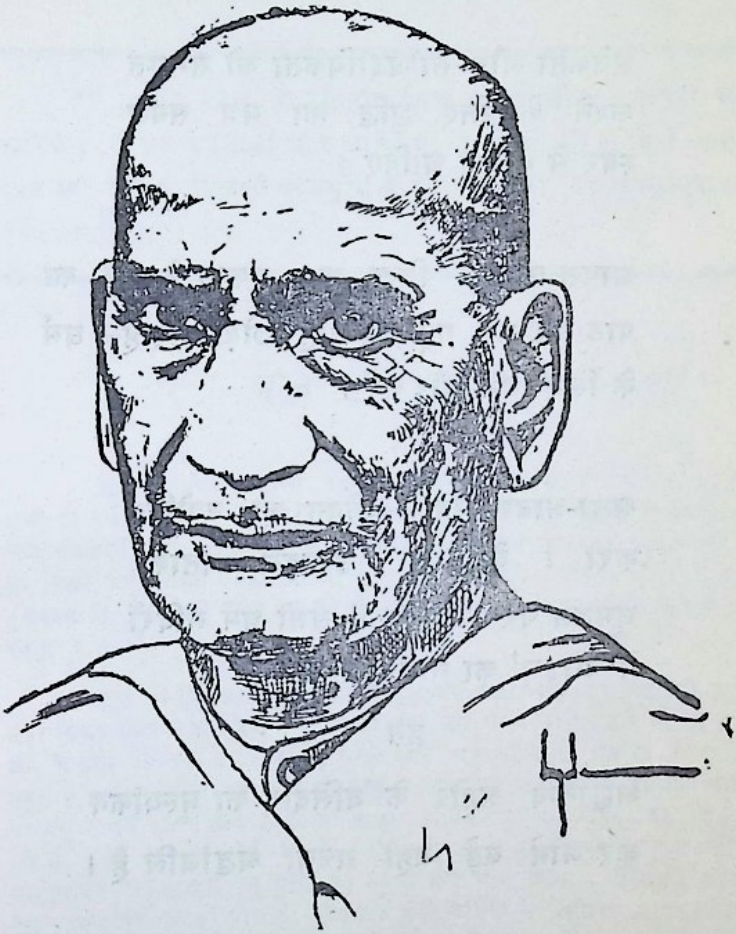

बलिदान अर्ध शताब्दी पर,
जन-ज्ञान मासिक की श्रद्धा सहित भेंट

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अंधकार को मिटाने के लिए गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को राष्ट्रीय स्तर पर आरम्भ किया जाए।

० ० ०

अनेकता और साम्प्रदायिकता को समाप्त करने के लिए शुद्धि का मंत्र सबल स्वर से गूंजना चाहिए।

आपस की फूट मिटा कर—एकता के मंत्र का पाठ सब करें, गद्दी-पद-मोह छोड़ कर हम धर्म के लिए जियें और मरें।

श्रद्धा-आदर-स्नेह से जीवन को ज्योतित करो! वेद की उज्ज्वल पताका भूमंडल पर फहराए। सभी धर्म मंदिरों में 'ओ३म्' का नाद गूंजे और

हम

श्रद्धानन्द शहीद के बलिदान का मूल्यांकन कर आगे बढ़ें—यही सच्ची श्रद्धांजलि है।

—भारतेन्द्रनाथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मेरे पिता

—स्व० पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति

'मैं यहां न औरों का इतिहास लिख रहा हूँ और न अपना जीवन-चरित्र। मैं उन घटनाओं और व्यक्तियों के चित्रों को अंकित करने का यत्न कर रहा हूँ, जिनकी पृष्ठभूमि में मेरे पिता जी का न्यूनाधिक सम्पर्क विद्यमान हो।'

—इन्द्र

१. जब मैंने होश सम्भाला

जब मैंने होश सम्भाला, तब मैं अपनी तायी जी की गोद में पल रहा था। मैं अभी दो वर्ष का ही था, कि मेरी प्रातः स्मरणीया माता का देहान्त हो गया। उनका नाम 'शिवदेवी' था। जब माता का देहान्त हुआ तब हम चारों भाई बहिन छोटे-छोटे थे। सबसे बड़ी बहिन वेदकुमारी जी आठ वर्ष की थीं। उनसे छोटी हेमकुमारी (पंजाबी में हेमकौर) छह वर्ष की थीं और हरिश्चन्द्र चार वर्ष के थे। मैं दो वर्ष का था और रोगी था।

माता जी हम सब को इस तरह छोड़ कर चली गईं, तो पिता जी के सामने बड़ा विकट प्रश्न खड़ा हो गया। उनकी आयु उस समय बत्तीस वर्ष की थी। पिता जी, के तीन बड़े भाई थे। उनमें से सबसे छोटे भाई की पत्नी हमारी माता जी से बहुत प्रेम करती थीं। माता जी की मृत्यु के समय वह जालन्धर में ही थीं। माता जी ने मृत्यु से पूर्व हमारे हाथ तायी जी के हाथ में देते हुए कह दिया था कि, 'बहिन जी मैं इन्हें आपके सुपुर्द करती हूँ।' तायी जी के अपनी कोई सन्तान नहीं थी। उन्होंने पूरे मातृभाव से हम लोगों को अपनी गोद में ले लिया। मैं सबसे छोटा था, इस कारण मुझे उनकी गोद की अन्य सब भाई बहिनों से अधिक आवश्यकता थी। वह गोद मुझे मिल गई। यही कारण है कि जब मैंने कुछ होश सम्भाला, तब अपने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आप को ताई जी की गोद में पाया। ताई जी का नाम 'जमुनादेवी' था। ताया जी का नाम आत्माराम था। माता जी की मृत्यु के पीछे वे दोनों जालन्धर में ही रहने लगे थे।

मैं बचपन में बहुत बीमार रहा। इससे ताई जी ने मेरे लिये बहुत कष्ट उठाए और इसीलिए उनका मेरे साथ वात्सल्य भी बहुत था। वस्तुतः वह वात्सल्य मोह की दशा तक पहुँच गया था।

मैंने जिस घर में होश सम्भाला, उसकी कुछ चर्चा करना भी आवश्यक है। हमारे पूर्वपुरुष जालन्धर से लगभग बीस-बाईस मील की दूरी पर तलवन ग्राम के निवासी थे। हमारे दादा जी ने यू० पी० में पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट की नौकरी से पेन्शन लेकर तलवन में मकान, मन्दिर आदि बनवाए थे। मुझसे बड़े भाई बहिनों का जन्म तलवन में ही हुआ था। जब पिता जी ने वकालत करना आरम्भ कर दिया, तब परिवार जालन्धर आ गया और कचहरी के पास एक किराये के मकान में रहने लगा। मेरा जन्म उस कचहरी वाले मकान में हुआ था।

जालन्धर से आने के कुछ समय पश्चात्, पिता जी ने होशियारपुर के अड्डे के पास, अपनी कोठी बनानी आरम्भ कर दी थी। कोठी का स्थान बहुत खुला था और मुख्य सड़क के किनारे होने से सुविधाजनक था। जब मैं होश में आया, तब हम होशियारपुर की सड़क वाली कोठी में पहुँच चुके थे। पिता जी को स्वभाव से ही विशाल योजना बनाने का शौक था, यह बात उस कोठी की रचना से सिद्ध होती थी।

कोठी का नक्शा किले के ढंग का बनाया गया था। सड़क की ओर जो दीवार थी, उसके दोनों ओर कोनों पर गोलाई लिए हुए बुर्ज थे। दीवार के मध्य में बड़ा फाटक था। फाटक के अन्दर दाईं ओर अस्तबल था। अस्तबल में दो गाड़ियाँ, एक गाड़ी का घोड़ा, एक सवारी का घोड़ा और प्रायः दो गौएँ रहती थीं। एक बन्द गाड़ी थी जो उस समय का फैशन था। उस समय की गाड़ियों का प्रचार अब बहुत कम हो गया है, क्योंकि पर्दे की प्रथा नष्ट होती जाती है। दूसरी गाड़ी गिग कहलाती थी, जिसे आज कल की बेबी कार का पूर्व-रूप समझना चाहिये। उसे प्रायः मालिक स्वयं चलाता था। उसके पास एक साथी के बैठने की जगह रहती थी। दायें हाथ पर एक शानदार चाबुक लगा रहता था। साईस के लिए पीछे की ओर खड़ा होने का एक पाएदान लगा रहता था। पिता जी कचहरी उसी में जाते थे। बन्द गाड़ी परिवार के काम आती थी। हमारे साईस का नाम नबीबक्श था। वह बहुत ही मिष्टभाषी और फरमाबरदार नौकर था।

फाटक के दूसरी ओर सद्धर्म-प्रचारक प्रेस और अखबार का कार्यालय था। उस समय साप्ताहिक सद्धर्म-प्रचारक उर्दू में निकलता था। वह पत्र पंजाब की आर्य समाजों का मुख्य मिशनरी पत्र समझा जाता था। उसके अग्रलेख, धर्मोपदेश आदि पिता जी स्वयं लिखा करते थे। प्रेस के मैनेजर का नाम बस्तीराम था जो पुराने ढंग की मुंशी श्रेणी का एक बढ़िया नमूना था। कान में कलम लगा कर और आधे नाक पर ऐनक जमाकर जब वह हिसाब लिखने या प्रूफ देखने का काम करता था, तब प्रतीत होता था कि वह भी प्रेस की मशीन का एक पुर्जा है। क्योंकि हाथ हिलाने के सिवा घन्टों तक और कोई चेष्टा उसके शरीर में नहीं दिखाई देती थी।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अस्तबल और प्रेस के बाद दूसरा बड़ा और सर्वथा बन्द होने वाला फाटक था, जिसमें एक खिड़की थी। दिन में प्रायः वह खिड़की खुली रहती थी, रात के समय वह भी बन्द हो जाती थी।

फाटक के अन्दर एक छोटी सी परन्तु बाँकी वाटिका थी। वाटिका का पिता जी को बहुत शौक था। वाटिका में एक कुआं था, जिसका पानी बहुत ठण्डा और स्वादु था। वाटिका में शौक की सभी चीजें थीं। घास का मैदान था, फलों के पेड़ थे और सब्जियों की क्यारियाँ थीं। घास के मैदान के चारों ओर बहुत सुन्दर फुलवारी थी। फुलवारी से लगता हुआ लम्बा चौड़ा पक्का चबूतरा था, जिसके पश्चात् तीन मुख्य कमरे थे, जिनमें से एक बैठक, दूसरा दफ्तर और तीसरा शयनागार था। ये कमरे अन्य सब कमरों से ऊंचे और विशाल थे। इनकी सजावट भी बहुत बढ़िया थी।

वाटिका से दूसरा रास्ता हवेली में जाता था, जिसकी दो ड्योढ़ियाँ थीं। अंदर की ड्योढ़ी दायें बायें दो ओर खुलती थीं, दायीं ओर की ड्योढ़ी रसोई घर में, और बाईं ओर की हवेली में ले जाती थी।

हवेली का नक्शा यह था कि बीच में चौकोर आँगन था जिसके तीन ओर बड़े-बड़े कमरों की पंक्तियाँ बनी हुई थीं। यदि मैं भूलता नही तो प्रत्येक पंक्ति में कमरों की संख्या पाँच से कम नहीं थी। कमरे काफी बड़े-बड़े थे, पूरी संख्या या पूरा नाप बताना कठिन है क्योंकि मुझे उस कोठी को छोड़े इस समय (१९५६ में) लगभग उनसठ वर्ष हो गए। आज से दस वर्ष पहले एक बार उसे देखने का शौक दिल में उठा था। आजकल वह एक बिरादरी का जञ्जघर है। गया तो था बड़े शौक से, परन्तु द्वार में घुसते ही हृदय पर ऐसा धक्का लगा कि आगे जाने की हिम्मत न हुई। वाटिका के स्थान पर छोटी-छोटी कोठरियाँ बनाई गई थीं—जिनसे पुराना सपना टूट सा गया और दुखी दिल लेकर वापिस आ गया। मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि पिता जी ने जिस भावना से, बड़े प्रेम से बनाई हुई वह कोठी गुरुकुल को दान दी थी, गुरुकुल की स्वामिनी सभा उस भावना से उसकी रक्षा न कर सकी। यदि सभा उस कोठी की यथार्थ रूप में रक्षा करती, तो भारत के विभाजन के पश्चात् उसे कार्यालय के लिए दर-दर का भिखारी न बनना पड़ता। उन्हें बना बनाया खूब शानदार कार्यालय मिल जाता। परन्तु सभा ने फूल को पत्तों के भाव बेच कर जहाँ भावना का तिरस्कार कर दिया, वहाँ अपनी भी हानि की। आवश्यकता होने पर उन्हें फूल तो क्या पत्ते भी न मिले।

२. तलवन की यात्रा

यह तो था पिता जी का शहर का डेरा, अब असली वतन का कुछ वृत्तान्त भी सुनिये।

हमारा वतन या मूल स्थान तलवन नाम के गाँव में था। जसे मैं पहले लिख चुका हूँ हमारे दादा लाला नानकचन्द जी उत्तर-प्रदेश में पुलिस के बड़े अफसर थे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वे बनारस, बरेली आदि कई बड़े शहरों में पुलिस कोतवाल के पद पर रह चुके थे। वे नौकरी से रिटायर्ड होकर अपने गाँव में आ कर रहने लगे थे। वहाँ उन्होंने हवेली, बैठक, मन्दिर आदि बनवा कर तलवन को अच्छा कस्बा बनाने में काफी हिस्सा लिया। उनके साथ ही हमारे तीनों ताया जी भी तलवन में ही रहने लगे थे। सबके रहने के अलग-अलग मकान थे और निर्वाह के लिए जमीनें थीं।

दादा जी की मृत्यु के पश्चात् भाइयों का बँटवारा हो गया। पिता जी सब में अधिक पढ़े-लिखे थे और घर-भर में धर्मात्मा समझे जाते थे, इस कारण बँटवारे का काम मुख्य रूप से उन्हीं के सुपुर्द किया गया। पिताजी की तबियत के व्यक्तियों की यह विशेषता होती है कि बँटवारे जैसे मामलों में स्वयं हानि उठाने को न्याय का कार्य समझते हैं। इस बँटवारे में भी ऐसा ही हुआ। चारों भाइयों में मकान, जमीन और नकद का जो बँटवारा हुआ, उसमें पिताजी ने सबसे घटिया हिस्सा लिया। अन्य भाइयों को अलग-अलग मकान मिले, पर हमें बड़ी हवेली का एक हिस्सा मिला था। पिताजी कहा करते थे कि मैंने तो जालन्धर में मकान बना लिया है, मुझे तलवन में बड़े मकान की आवश्यकता भी क्या है ?

तलवन में तीन तरह की आबादी थी। जिस भाग में हमारे मकान थे, उसे कस्बे का समृद्ध भाग कहा जा सकता है। पक्के मकान थे, और उनमें से गुजरने वाली गली भी पक्की थी। दो कुएँ थे और एक मन्दिर था। कस्बे के दूसरे भाग में बाजार था। बाजार में कामलायक सभी चीजें मिल जाती थीं। तीसरे भाग में काश्तकार या मुजायरे रहते थे, जो उस समय प्रायः सभी अराईं मुसलमान थे। कस्बे की जमीनों के स्वामी अधिकतर ब्राह्मण और खत्री थे और मुजायरे मुसलमान, जो बस्ती के बाहरी भाग में रहते थे।

यह है संक्षेप में उस समय के तलवन का परिचय। वर्ष में कम से कम एक बार और आवश्यकता पड़ने पर अधिक बार भी सारा परिवार वहाँ जाया करता था। उसी को मैं तलवन यात्रा कहता हूँ। क्योंकि हम बच्चों के लिये वह तीर्थ-यात्रा से कम महत्व नहीं रखती थी। यात्रा तो बीस-बाईस मील की ही थी, परन्तु उसकी तैयारी ऐसी धूमधाम से होती थी, जैसे हरिद्वार या बनारस जाने का विचार हो।

लीजिए, उस साल की तलवन यात्रा का यथासम्भव पूरा विवरण सुनिए। यथासम्भव इसलिए कहता हूँ कि सम्भव है, लगभग ६० वर्ष पुरानी घटना की कुछ बातें याद से रह जाएँ।

ताई जी ने यात्रा के दिन से कई दिन पहले आयोजन प्रारम्भ कर दिया था। हवेली के बाएं कोने में एक गोदाम का कमरा था, जिसमें दो हाथ की चक्कियाँ लगी हुई थीं। ताई जी प्रतिदिन प्रातःकाल ४ बजे उठकर दिन भर के लिए आटा दाल आदि पीस लेती थीं। मुझे याद है कि छोटी उम्र में शायद ही कोई प्रभात ऐसा होता हो, जिसमें हमने आँखें खुलते ही चक्की की आवाज न सुनी हो। प्रायः हमारी बड़ी बहन वेदकुमारी जी भी पिसाई के काम में ताई जी का साथ दिया करती थीं। जब तलवन जाने का समय पास आता था तब कुछ फालतू पिसाई की जाती थी। चक्की का तारस्वर देर तक सुनकर हम समझ जाते थे कि तलवन की तैयारियाँ हो रही हैं।

यात्रा से पहली रात खाना बनाने में व्यतीत होती थी। ताई जी यात्रा के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लिए दूध के परांवठे बनाया करती थीं वह मानो यात्रा का विशेष अनुपान था। हम लोगों को उनका बेहद शौक था। साथ के लिए आलू की सब्जी, दही आदि की योजना होती थी।

यात्रा के दिन सब लोग ब्रह्म-मुहूर्त से भी पहले उठते थे, क्योंकि सूर्योदय से पहले ही चल देने का नियम था। झट उठे और नहा धोकर और कपड़े पहन कर सन्नद्ध हो गए। तब तक दोनों घोड़ा-गाड़ियां तैयार होकर सड़क पर निकल आती थीं। गाड़ियों में बैठने की यह व्यवस्था थी कि बन्द गाड़ी में शेष सब बच्चों को ले कर ताई जी बैठ जाती थीं, और मेरे बड़े भाई हरिश्चन्द्र या तो पिताजी के पास गिग में बैठते थे अथवा पौनी (छोटे घोड़े) पर बैठकर साथ-साथ चलते थे। मैं तो ताई जी के पास ही रहता था। हम लोगों के साथ, दो बड़ी बहिनों के अतिरिक्त एक और भी लड़की थी, जो पिता जी के एक मित्र की पुत्री थी। वह कन्या महाविद्यालय में पढ़ने के लिए जालन्धर में हम लोगों के साथ रहती थी।

इस तरह पूरी तरह तैयार होकर काफ़ला सूर्योदय से पहले ही चल देता था। दोपहर से पहले हम लोग नूरमहल के पास पहुँच कर एक बगीचे में ठहर जाते थे। बगीचे में कुआं था, जहां घनी छाया वाला एक पेड़ था। दरी, चाँदनी बिछा कर वहाँ भोजन और आराम की व्यवस्था होती थी, एक नौकर था जो शायद पाँच या छह साल की आयु से हमारे यहाँ आया था। उसका नाम रणुआ था। वह बुढ़ापे तक पिता जी के साथ ही गुरुकुल काँगड़ी में जाकर भोजन भंडार में काम करता रहा। गुरुकुल की सेवा में ही उसकी मृत्यु हुई। उन दिनों में वह लड़का ही था। वह परोसता था और हम खाना खाते थे। खाना खाकर घण्टे दो घण्टे आराम करते और फिर कच्चे रास्ते पर पड़ जाते थे।

कच्चे रेतीले रास्ते का मालिक बैल है, घोड़ा नहीं। कच्चे और पथरीले रास्ते पर घोड़ा रो देता है। हम लोग उस रास्ते को बहुत आहिस्ता-आहिस्ता पार करते थे। प्रायः गाड़ियों से उतर कर पैदल चलने लगते थे। इस कारण गाँव तक पहुँचने में हमें बहुत समय लग जाता था। कभी-कभी तो रात पड़ जाती थी।

जिस यात्रा का यह वृत्तान्त है, उसकी एक घटना बहुत स्मरणीय है, जिसे विस्तार से सुनाने का प्रलोभन संवरण करना कठिन है। वह घटना भूतों से सम्बन्ध रखती है। नूरमहल और तलवन के लगभग मध्य में बैलगाड़ी के रास्ते से कोई फर्लांग भर हट कर एक टूटी हुई सराय थी। वह न जाने कब से खण्डहर की शक्ल में पड़ी थी। मशहूर था कि उस खण्डहर में भूतों और चुड़ैलों का डेरा है। साँझ पड़ने के पश्चात् कोई अकेला आदमी उसके पास से नहीं गुजरता था। जब हम लोग उस टूटी सराय के पास पहुँचने लगे, तो पिता जी ने हम दोनों भाइयों को गाड़ी से नीचे उतार लिया। हमारे हाथों में अपनी दोनों ओर की अँगुलियाँ पकड़ा दीं और खण्डहर की ओर ले चले। पिताजी कट्टर आर्य समाजी बन चुके थे। वे भूतों को बिल्कुल नहीं मानते थे। हमें वे यह कह कर ले चले कि 'चलो तुम्हें दिखाएँ, वहाँ कोई भूत-प्रेत नहीं रहता—भूत प्रेत की बात सब झूठ है।' पूर्णिमा की रात थी, चाँदनी खूब छिटक रही थी, जिससे वह खंडहर रास्त से दिखाई दे रहा था। ताई जी ने बहुत रोका कि बच्चों को वहाँ मत ले जाओ, पर हम लोगों का शौक सीमा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

को पार कर रहा था और पिताजी तो हमारा डर हटाना ही चाहते थे, वे हमें लेकर सराय की ओर चल दिए।

कुछ दूर जाकर हमने देखा कि एक आदमी कन्धे पर बँहगी उठाए सराय की ओर हमारे बीच की पगडण्डी पर से जल्दी-जल्दी पग उठाता हुआ गाँव की ओर जा रहा है। पिताजी ने उसे पहचान लिया। वह हमारे गाँव का कहार था। पिताजी ने सहज स्वभाव से ऊँचे स्वर से उसका नाम पुकारा। बस, पिताजी का पुकारना था कि वह बेचारा चक्कर खाकर धड़ाम से जहाँ था, वहीं गिर गया और उसकी बँहगी की चीजें रेत में चारों ओर बिखर गईं।

उसे गिरा देख कर पिता जी बहुत तेजी से उसके पास पहुँचे तो क्या देखते हैं, कि वह बिल्कुल बेहोश पड़ा है। हाथ लगा कर देखा तो उसका शरीर तमतमा रहा था। उसे बहुत जोर का ज्वर चढ़ गया था। पिताजी ने अपने कोचवान को आवाज देकर वहाँ बुलाया और बेचारे कहार को किसी तरह उठाकर गाड़ी में डाल लिया। हम सब पदल ही गाँव की ओर चल दिए।

रास्ते में पिताजी हम लोगों को भूत प्रेतों की कहानियाँ सुनाते गए। उस बेचारे की दशा पर वे बहुत ही दुखित थे।

आधी रात के समय पैदल काफला गाँव में पहुँचा। कहार की बेहोशी की हालत में ही उसके घर पहुँचा दिया गया।

घर पहुँचने पर कहार का बुखार बहुत बढ़ गया और साथ ही डिलीरियम शुरू हो गया। वह बेहोशी में आँखें फाड़ कर देखता और चिल्लाता था। उस के चिल्लाने से यह भान होता था कि वह किसी भयानक मूर्ति को देख रहा है। वह चिल्लाता था कि डायन की आँखों से आग निकल रही है, लाल-लाल जीभ मुँह से बाहर दिखाई दे रही है और उसके पाँव पीछे की ओर हैं। जब वह ऐसी बेहोशी की बातें करता तब पिताजी उसके सिर पर हाथ रख कर समझाते कि यह सब झूठ है, वहाँ हम भी थे वहाँ तो कोई चुड़ैल नहीं आई, तो वह जवाब देता था कि 'थी कैसे नहीं। मुझे उसने नाम लेकर बुलाया।'

दूसरे दिन उसका बुखार कम होने लगा और कुछ होश भी आया तो पिताजी ने उसे बहुत समझाया कि 'तुझे किसी चुड़ैल ने नहीं पुकारा था, आवाज देने वाला तो मैं था।' तो भी उसे यह विश्वास नहीं हुआ कि वह चुड़ैल नहीं थी। वह अन्त तक यही कहता रहा कि मैं अपनी बँहगी लिये जल्दी-जल्दी चला आ रहा था कि मुझे अपना नाम सुनाई दिया। ज्यों ही मैंनें उधर देखा तो सामने से आती हुई एक भयानक चुड़ैल दिखाई दी, जो मुझे खाना चाहती थी। बस उसी को देखकर मैं बेहोश हो गया।

तलवन उस समय पुराने विचारों का जबंदस्त गढ़ था और अब तक भी वहाँ नवीन प्रकाश ने पूरी तरह प्रवेश नहीं किया। कुछ थोड़े से लोगों को छोड़ कर शेष सब ने यही मानना उचित समझा कि कहार ने वस्तुतः चुड़ैल को ही देखा था। पिता जी की बात पर उन्हें पूरा विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने समझा कि यह तो सनातन-धर्म के विरोधी बन गए हैं, इस कारण चुड़ैल का खण्डन करने के लिए बात घड़ रहे हैं।

———

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

३. पिता जी की घर-गिरस्ती

जब मैंने होश सम्भाला तब से लगभग पाँच-छह साल तक पिताजी की घर-गिरस्ती कैसी रही, इस का थोड़ा-सा चित्र इससे पूर्व के परिच्छेद में दिया जा चुका है। इन दिनों पिताजी का गृहस्थ राजा जनक के राज्य जैसा था। पिता जी गृहस्थ में रहते हुए भी गृहस्थ से बाहर रहते थे। उनका शयनगृह हम लोगों से बिल्कुल अलग था। सब बच्चे तायी जी के पास सोया करते थे। पिताजी का शयनगृह हमारे लिये एक बन्द मन्दिर के समान था। जब कभी उस में आँख बचा कर घुस जाते थे, तब आश्चर्य से सब चीजों को देखा करते। थोड़ी मात्रा में किसी चीज का रखना तो पिताजी की तबियत में था ही नहीं। कपड़ों की एक बड़ी अलमारी थी। ऐसा याद आता है कि उस में बड़ी-बड़ी चालीस-पचास दराजें होंगी। एक में कौलर थे—कोई चालीस या पचास। दूसरे में नकटाइयाँ ही नकटाइयाँ थीं। वह भी लगभग चालीस-पचास। तीसरे में इसी संख्या में रुमाल थे। पाठक चालीस-पचास की संख्या की पुनरावृत्ति देखकर शायद हँसेंगे, परन्तु उन्हें याद रखना चाहिए कि यह बहुत छोटे बचपन की स्मृतियाँ हैं। न तो हमने उस समय गिनती की थी और न नोट ही किया था। ध्यान में बैठा हुआ है कि उस कमरे में कुछ भी कम नहीं था। सब चीजों की संख्या चालीस-पचास के लगभग होगी। एक सुन्दर-सी सन्दूकची थी, जिसमें तरह-तरह के तेल और सुगन्धित पदार्थों की शीशियाँ रखी हुई थीं। बहुत दिनों तक उस सन्दूकची को खोलने की हिम्मत नहीं हुई। हम चारों भाई बहिनों में हरिश्चन्द्र जी साहसिक थे। हम लोगों का विचार था कि पिताजी के लाड़ले होने के कारण वे डरते भी नहीं थे। एक दिन बहुत-सी मानसिक तैयारी के बाद हरिश्चन्द्र जी ने उस सन्दूकची को खोल ही डाला। हम लोग बड़ी उत्सुकता से देखने लगे कि अन्दर क्या है? देखा कि उसमें भी छोटे-छोटे लगभग चालीस-पचास खाने हैं। हर एक खाने में छोटी-छोटी और सुन्दर रूप वाली रंग-बिरंगी शीशियाँ रखी हुई हैं, जिनमें से प्रत्येक में से जुदा-जुदा खुशबू आ रही है। इसी तरह की आकर्षक सामग्री से वह कमरा सजा हुआ था। परन्तु जहाँ तक मुझे याद है, उन दिनों में भी हम लोगों ने कभी पिताजी को सुगन्धित तेल लगाकर बाहर जाते नहीं देखा। मैं समझता हूँ कि वह सब सामग्री पिताजी के पूर्व जीवन का अवशेष थी, जिसे उन्होंने हमारी माता जी के स्मृति रूप में ही सुरक्षित रख छोड़ा था।

पिताजी हम लोगों के उठने से बहुत पहले उठकर बाहर चले जाते थे। जाने की सूचना हम लोगों को उनकी खड़ाऊँ की आवाज से मिलती थी। खड़ाऊँ की आवाज में एक अद्भुत विशेषता थी, जिसका अनुभव केवल हम ही लोगों को नहीं हुआ, गुरुकुल कांगड़ी के उन सब ब्रह्मचारियों को भी हुआ, जिन्होंने पिता जी के आचार्यत्व काल में गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त की थी। उन लोगों के लिए खड़ाऊँ की वह आवाज एक विशेष सन्देश लाती थी। वह निराश को आशा देती थी, उपद्रवी पर आतंक बिठा देती थी, और कुलवासियों को यह सूचना दे देती थी कि इस घर का कोई

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मालिक है। बचपन में हमारे लिए वह आवाज एक सन्देश देने वाली होती थी। उस आवाज को सुनकर हम बच्चों को यह अनुभव होता रहता था कि हमारे पिता घर में ही हैं और हमारी देख-भाल कर रहे हैं। अन्यथा दिनों पर दिन निकलते जाते थे और हम लोगों को पिताजी का साक्षात्कार करने का अवसर नहीं मिलता था। उन की दिनचर्या निम्नलिखित थी—

बहुत सुबह सम्भवत: पाँच बजे उठ कर बाहर चले जाते थे। नित्य कर्म से वहीं निवृत्त होते थे। दफ्तर का काम भी करते थे। केवल भोजन के समय अन्दर आते थे। रसोई के आँगन में एक बड़ी चौकी बिछती थी, उस पर एक सुन्दर आसन बिछाया जाता था। थाली के लिए आसन के सामने एक बांकी सी तिपाई रखी जाती थी। यह सब तैयारी हो जाने पर नौकर बाबूजी को सूचना देने जाता था कि भोजन तैयार है। उसके पश्चात् घर में खड़ाऊँ की आवाज की प्रतीक्षा होने लगती थी। भारी और लम्बा शरीर होने के कारण और साथ ही चरित्र की दृढ़ता के कारण पिताजी के कदमों की यह खासियत थी कि वह भारी और सर्वथा नियमित रूप से पड़ते थे, ध्वनि दूर तक जाती थी और निश्चित क्षणों के पीछे सुनाई देती थी। इस ध्वनि से घर भर को सूचना मिल जाती थी कि बाबू जी आ रहे हैं। भोजन के समय रसोई में प्राय: बच्चे नहीं रहते थे। पिताजी के लिए फुलका सदा तायी जी अपने हाथ से बनाती थीं। प्रसंग तो टूटता है परन्तु जब बात आ गई तो तायी जी के फुलकों की चर्चा भी कर देता हूँ। तायी जी के फुलके मशहूर थे। हमारे दादा जी संयुक्त प्रांत में पुलिस के अफसर थे। वे बाँदा, बनारस और बरेली में शहर कोतवाल रहे थे। वे जहाँ कहीं भी नौकरी पर जाते, तायी जी को साथ ले जाना पड़ता था। क्योंकि उन्हें तायी जी का बनाया हुआ भोजन पसन्द था। भोजन में भी उनके फुलके छोटे और बिल्कुल नरम होते थे। हमारे ताया जी मस्त आदमी थे। नौकरी चाकरी उनकी तबियत में नहीं थी। हुक्का और अफीम में उनका वक्त कट जाता था, जो एक बड़े अफ़सर के पुत्र होने से उन्हें माफ़ था। वे भी या तो दादी जी के पास रहते थे, या अपने गाँव तलवन में विश्राम करते थे। तायी जी को भोजन बनाने का बड़ा शौक था। वे इस कार्य में अपने कमाल को जानती थीं और उसे करने में सन्तोष का अनुभव करती थीं। पिताजी को भी वे उसी शौक से भोजन करातीं थीं जिस शौक से उन्होंने दादा जी को कराया था। मैं इस प्रसंग को यह बताए बिना समाप्त नहीं करना चाहता कि जब मैं स्नातक बनकर गृहस्थी हुआ और मुझे तायी जी की सेवा करने का अवसर मिला तो तायी जी ने मुझे और घर के अन्य व्यक्तियों को भी उसी शौक से अपने हाथ के फुलके खिलाए। सत्तर साल से ऊपर उम्र हो जाने पर भी उनका शौक कम नहीं हुआ। चलने फिरने में कष्ट होने लगा था, दृष्टि लगभग जाती रही थी और प्राय: बीमार रहने लगी थीं तो भी उनका आग्रह था कि उन्हें रसोई बनाने से न रोका जाय। सब चीजें एकत्र करके उनके पास रख दी जाती और चूल्हे में आग जला दी जाती। वे अपने नित्य नियम के अनुसार टटोल-टटोल कर रसोई तैयार कर देतीं, तब खाना खातीं। यदि कभी उन्हें बीमारी या कमजोरी का कारण बतला कर चौके में जाने से रोकने की चेष्टा की जाती तो वे कहतीं 'अच्छी बात है, मैं चौके में नहीं जाती, पर मैं खाना भी नहीं खाऊँगी। मैं हाथ से बनाए बिना खाना नहीं खा सकती। मुझे किसी का बनाया

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

खाना स्वाद नहीं लगता। मैं यह भी जानती हूँ कि मैं जब खाना बनाना छोड़ दूंगी तब अधिक दिन तक नहीं जीऊँगी' हुआ भी ऐसा ही। एक बार सख्त पेचिश हो जाने के कारण वे हिलने-जुलने में असमर्थ हो गयीं, और रसोई में नहीं जा सकीं। उस दिन उन्होंने उदास होकर कहा 'आज रसोई में जाने की हिम्मत नहीं अब मैं ज्यादा दिन नहीं जिऊँगी।' इस भविष्यवाणी के बीसवें दिन तायी जी ने अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी।

मैं लिख रहा था कि पिता जी को सदा तायी जी अपने हाथों से खाना बना कर खिलाती थीं। खाना खा कर और कुल्ला करके पिता जी फिर बाहर चले जाते थे। उनकी खड़ाऊँ की आवाज से बच्चे समझ जाते थे कि अब हमें रसोई में पहुँचना चाहिए। वहाँ जाकर हम दोनों भाइयों में यह प्रतिस्पर्धा रहती कि बाबूजी की थाली में खाना कौन खाए ? इस प्रतिस्पर्धा में प्रायः जीत मेरी ही हुआ करती थी, क्योंकि एक तो मैं छोटा था और तायी जी मेरे पक्ष में रहती थीं। बाबू जी की थाली में प्रायः मैं ही खाना खाता था। मेरा यह शौक यहाँ तक बढ़ा कि यदि किसी कारण वे देर में खाना खाते तो मैं सब भाई-बहिनों के साथ खाना न खा कर तब तक प्रतीक्षा करता कि जब बाबू जी खाना खाकर चले जाएँ तो मैं उनकी थाली का उपयोग कर सकूँ।

भोजन के बाद थोड़ी देर तक हुक्का पीने के अनन्तर पिताजी कपड़े पहन कर कचहरी चले जाते थे। प्रायः सभी सन्तानों को बचपन में अपने पिता दुनियाँ में सब से अधिक सुन्दर, प्रेम करने वाले और बलवान् मालूम हुआ करते हैं। कहना कठिन हैं कि यह अनुभूति कहाँ तक उचित है परन्तु इसके स्वाभाविक होने में तो कोई संदेह नहीं। हम लोगों को पिता जी का कचहरी जाने के समय का रूप असाधारण से भी अधिक भव्य मालूम देता था। लम्बा कद, हृष्ट-पुष्ट शरीर, लम्बी दाढ़ी और साफ-सुथरा निर्दोष पहरावा, ये सब चीजें मिल कर उनकी मूर्ति को काफ़ी शानदार बना देती थीं। उन दिनों पिताजी कोट, पैंट, कौलर, नकटाई सभी कुछ पहनते थे। परन्तु उन्होंने हैट कभी नहीं पहना। या तो साफा बांधते थे या ऊंची फैल्ट कैप लेते थे। उनकी खुली घोड़ागाड़ी (गिग) का वर्णन मैं पहले कर चुका हूँ। पिताजी अदालत उसी में जाते थे और गाड़ी को स्वयं ही चलाते थे। उन दिनों वे सिगार भी पीते थे। घोड़े की बाग हाथ में लेते हुए वे प्रायः सिगार मुँह में लगा लेते थे।

कचहरी से लौटते-लौटते शाम हो जाती थी। वे लौटते हुए आर्यसमाज मन्दिर में भी एक घंटा ठहरते थे। प्रारम्भ से वे जालन्धर आर्यसमाज के प्रमुख अधिकारी रहे, जब से मुझे होश आई, तब से उन्हें उस समाज का प्रधान ही पाया।

घर लौट कर उन्हें शायद कपड़े बदलने भर का समय ही मिलता होगा। शाम होने से पहले ही दफ्तर के सामने वाले चबूतरे पर पूरे दरबार की तैयारी हो जाती थी। कम से कम पच्चीस-तीस कुर्सियाँ रखी जाती थीं और शायद इतने ही मेहमानों के लिए सर्दियों में चाय और गर्मियों में बरफ सोड़ा आदि की व्यवस्था की जाती थी। हमारे कुएं का पानी बहुत ठंडा और स्वादु था। अभ्यागत लोग गर्मियों मे उसे भी बहुत शौक से पीते थे। शाम होते ही लोगों का आना आरम्भ हो जाता था।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जो सज्जन पधारते उनका मौसम के अनुसार चाय पानी आदि से सत्कार किया जाता। हम बच्चे दूर से ही इस दरबार को देखा करते थे और आने वालों का यथाशक्ति परिचय अन्दर तायी जी को दिया करते थे। उनमें से जो लोग प्रतिदिन के आने वाले थे, उनके बारे में तायी जी प्रायः यह टिप्पणी किया करती थीं, इनके घर के पास सोडा नहीं बिकता कि पीने के लिए रोज आ जाते हैं।' पाठक लोग इस टिप्पणी से यह न समझें कि मेरी तायी जी साधारण से कुछ अधिक अनुदार विचारों की थीं। दीवार के पीछे से सुना जाय तो शायद घर-घर में ऐसी टिप्पणियों का अस्तित्व मिलेगा।

यह दरबार अन्धेरा होने तक जारी रहता था। उसमें राजनीति, धर्म आदि सभी विषयों पर चर्चा होती होगी। यह अनुमान मैं ऐसे लगाता हूँ कि रानाडे, तिलक, पं० गुरुदत्त डी० ए० वी० कालेज आदि के नाम प्रायः लिए जाते थे। इस प्रसंग में यह बता देना भी अनुचित नहीं होगा कि पिताजी ने अपनी बैठक में जो बड़े-बड़े चित्र लगा रखे थे, उनमें से तीन विशेष महत्व रखते थे क्योंकि वे तीनों आकार तथा सजावट की दृष्टि से अन्यों से बढ़कर थे—ऋषि दयानन्द, महादेव गोविन्द रानाडे और लोकमान्य तिलक के। अन्धेरा होने पर पिता जी बातचीत का सिलसिला बन्द कर उठ खड़े होते थे जिस पर अभ्यागत लोग विदा लेने लगते थे। कुछ समय पश्चात् पिताजी की खड़ाऊँ का शब्द फिर आने लगता था, जिससे हम लोग जान जाते थे कि वह सन्ध्या समाप्त करके भोजन के लिए आ रहे हैं। उस समय तक बच्चे भोजन कर चुके होते थे। भोजन के पश्चात् थोड़ी देर तक टहल कर पिताजी अपने सोने के कमरे में चले जाते थे। गर्मियों में जब सब लोग सहन में सोते थे तो कभी-कभी ऐसा अवश्य होता था कि सब बच्चे मिलकर पिताजी के पीछे पड़ जाते और उन्हें कहानी सुनाने के लिए मजबूर करते। कहानियाँ तो तायी जी और बूढ़ी बुआ जी भी सुनाया करती थीं, परन्तु पिता जी की सुनाई हुई कहानियों में हमें विशेष आनन्द मिलता था। वे प्रायः टहलते हुए कहानी सुनाया करते थे। उन कहानियों में से दो अब तक याद हैं। एक तो सर वाल्टर स्काट की कहानी थी और दूसरी चार्ल्स डिकन्स की। उसके पश्चात् सब लोग सो जाते थे।

'जल्दी सोना' और 'जल्दी उठना' इस नियम के पिताजी कट्टर अनुयायी रहे। अन्त समय तक सोने और जागने के इस नियम का उन्होंने पालन किया। वे अपने जीवन में कार्य की इतनी अधिक मात्रा पूरी कर सके, इसका यही रहस्य है।

इस सारी दिनचर्या से पाठकों को मालूम हो जायेगा कि ऐसे सौभाग्यशाली दिनों को छोड़ कर जब कि पिता जी के साथ हम लोग घूमने जाते या रात को कहानी सुनाते, हमें उन का सम्पर्क नहीं मिलता था। घर के धन्धों की चिन्ता करने या घर की समस्याओं को हल करने के लिए बातचीत करते, हम बच्चों ने कभी उन्हें न देखा था। घर का सब खर्च तायी जी के हाथों से होता था और प्रेस का सब हिसाब-किताब प्रेस मैनेजर लाला वस्तीराम करते थे। पिताजी डायरी अवश्य रखते थे, परन्तु जहाँ तब हमें याद है उसमें आमदनी ही आमदनी नोट करते थे, खर्च नहीं। हम लोग अधिकतर उनकी सत्ता को अनुभव करते थे, देखने या पास आने का अवसर कम पाते थे। जसे राजा जनक राज्य करते हुए भी अनासक्त थे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

और जैसे कमलपत्र पानी में रहते हुए भी गीला नहीं होता, उन दिनों पिता जी की दशा ठीक वैसी ही थी। वे गृहस्थी होते हुए भी घर से बहुत कुछ दूर थे। इसका यह अभिप्राय नहीं कि हम लोगों पर उनकी दृष्टि नहीं थी। वे देखते और सुनते सब कुछ थे, परन्तु दखल बहुत कम-नहीं के बराबर-देते थे। घर पर वृष्टि रखने का दृष्टान्त निम्नलिखित है। मैं बता चुका हूँ कि हम चारों में से सबसे बड़ी बहिन वेदकुमारी जी थीं, उनसे छोटी हेमकुमारी जी थीं, जिसका नाम बाद में बदल कर अमृतकला रखा गया था। दोनों बहनों के स्वभाव एक दूसरे से बहुत भिन्न थे। बड़ी बहन के स्वभाव में ठहराव था और छोटी बहन के स्वभाव में तेजी। तायी जी के स्वभाव में भी उस समय काफी उग्रता थी। जब तायी जी तेज होती थीं, तब बहन वेद-कुमारी जी चुप हो जातीं, परन्तु बहन हेमकुमारी जी जवाब दिए बिना नहीं छोड़ती थीं। इस पर तायी जी का क्रोध भड़क उठता था, जिसका परिणाम यह होता था कि कभी-कभी छोटी बहन की पिटाई भी हो जाती थी। पिता जी के दफ्तर के रोशनदान हवेली के सहन में खुलते थे। अन्दर की आवाज बाहर पहुंच जाती थी। रोने की भनक कान में पड़ते ही पिता जी कुर्सी से उठ कर अन्दर की ओर चल देते थे। उनकी खड़ाऊँ की आवाज एक गम्भीर चेतावनी की तरह कानों में पड़ने लगती थी। चेतावनी नपे-तुले कदमों से चलती हुई ड्योढ़ी तक आती और वहाँ रुक जाती थी। तायी जी का हाथ रोकने के लिए यह पर्याप्त था। तायी जी का आदर रखने के लिए ऐसे अवसर पर पिता जी कभी ड्योढ़ी से आगे नहीं बढ़ते थे। चेतावनी की आवाज सुनकर ही तायी जी अपना हाथ रोक लेती थीं। इस तरह संयम और समझ दारी से कमलपत्र की तरह जल के अन्दर रहते हुए भी उससे अलग रहकर पिता जी उस समय गृहस्थ का पालन करते थे। हम लोग यह तो अनुभव करते थे कि उन की आँखें हम पर हैं, परन्तु उनका हाथ हमसे दूर ही रहता था।

उस गृहस्थ जीवन की एक आवश्यक घटना, जिसे मैं उस गृहस्थ जीवन की अपने ढंग की अन्तिम घटना समझा हूँ, बहन वेदकुमारी जी का विवाह था। वह विवाह हम छोटे बच्चों के लिए एक भारी उत्सव था। बचपन के स्मृति-पटल पर उस विवाह के कई धुंधले चित्र अंकित हैं। उन चित्रों में पिता जी एक सांसारिक गृहस्थ की तरह विवाह के कृत्यों का सम्पादन करते हुए दिखाई देते थे। हवेली के आँगन में यज्ञ मण्डप बना था। बूढ़े पण्डित श्रीपति जी और बहन जी के अध्यापक पण्डित व्रजभूषण जी ने मण्डप के पास बैठ कर सगाई की चिट्ठी लिखी थी। चिट्ठी पर लाल धागा बाँधा गया था और हम लोगों ने भी खूब मिठाई खाई थी। इस समारोह में पिता जी अपने पूरे वेश में मण्डप के पास बैठे हुए आवश्यक रस्में अदा कर रहे थे।

विवाह खत्रियों में हुआ। धूम-धाम से बारात आई। सब लोग बारात को लेने गए। जो सामान बारात के सत्कार के लिए भेजा गया, उसमें सिगारों के डिब्बे और पान के बीड़े भी थे। जब घर पर बारात खाने के लिए आई, तो आँगन में सफेद चादरों के फर्श पर पुराने ढंग पर 'मीठाभात' परोसा गया, और खूब बाजे बजे। इस सारी प्रक्रिया में भी पिता जी पूरी तरह भाग लेते रहे।

सामान्य रूप से शायद पाठक इस वर्णन के महत्व को न समझ सकेंगे। पिता जी ने इन रस्मों में भाग लिया, इस बात का महत्व तभी समझ में आएगा जब उनके

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ध्यान में यह बात आ जायगी कि इसके पश्चात् पिता जी ने शायद कोई भी पारिवारिक कार्य रस्म के अनुसार नहीं किया। पारिवारिक ही नहीं, अन्य सब प्रकार के कार्यों में भी इस के पश्चात् उनका यही दृष्टिकोण बनता गया था कि यथा-सम्भव रस्मों को तोड़ा जाय। कट्टर सुधार की भावना उन की अन्तरात्मा में जागृत हो गई थी। कभी-कभी यह ख्याल होता है कि शायद यह विवाह भी उस भावना के उग्ररूप में जागृत होने का एक कारण हुआ हो।

——

४. रोपड़ की प्रचार-यात्रा

यह तब की बात है जब मेरी आयु छः सात साल की होगी। पिता जी उस समय आर्य-समाज के काम में पूरी तरह गोता लगा चुके थे। उन दिनों उनका मुख्य काम आर्य-समाज का प्रचार था और गौण काम वकालत।

सद्धर्म-प्रचारक ने उसी साल जन्म लिया जिस साल मैंने। इस प्रकार समाचार-पत्र का और मेरा एक वर्ष में ही जन्म हुआ। यही कारण मालूम होता है कि मेरे और पत्रकार-कला के ग्रह बराबर एक से चल रहे हैं। मैं पत्रकार के काम को छोड़ना भी चाहूं तो वह नहीं छूट सकता। अस्तु, यह तो अवान्तर बात हुई। प्रसंग की बात यह है कि सद्धर्म-प्रचारक के सम्पादन का सारा कार्य करने के अतिरिक्त, पंजाब भर की आर्य-समाजों में घूम कर प्रचार करना और आर्य समाज के संगठन को मजबूत बनाना पिता जी के उन दिनों के कार्यक्रम का सब से प्रधान अंग था। प्रचार के दौरों में वे प्रायः अकेले ही जाया करते थे। वे पंजाब की आर्य-प्रतिनिधि-सभा के प्रधान थे। अतः महीने में दो तीन बार उन्हें लाहौर तो जाना ही पड़ता था, पंजाब के अन्य शहरों के दौरे भी कुछ कम नहीं होते थे।

मैंने ऊपर कहा कि समाज के प्रचार के लिए वे अकेले ही जाते थे, इस नियम में एक अपवाद भी था। अम्बाले के जिले में रोपड़ नाम का एक शहर है। कई वर्ष तक वहाँ के आर्यसमाज के जल्से में पिता जी प्रायः हम सब को ले जाते रहे। वह यात्रा बहुत ही मनोरंजक होती थी। वह उस समय के आर्य-सामाजिक जीवन का एक नमूना थी।

जिस यात्रा का मैं वर्णन करने लगा हूँ वह लगभग १८९६ की है। जालन्धर से कई परिवार एक ही गाड़ी से रोपड़ के लिए रवाना हुए। जहाँ तक याद है, केवल हमारे ताया जी अपने सदा के साथी हुक्के के साथ कोठी पर रह गए थे। हम चारों बच्चे तायी जी और रनुआ पिता जी के साथ गए। गाड़ी में और भी बहुत से आर्य-समाजी परिवार थे।

शाम के समय रेलगाड़ी दोराहा स्टेशन पर पहुँची। रोपड़ जाने के लिए वहाँ उतरना पड़ता था। स्टेशन पर स्वागत के लिए दोराहा के बहुत से आर्य-समाजी पहुँचे हुए थे। रेल से उतार कर वे लोग जालन्धर के सब आर्य-बन्धुओं को एक बाग

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में ले गए जहाँ संध्या, हवन और सब के भोजन का इन्तजाम था। आर्य-समाज के उस समय के सुन्दर सामाजिक जीवन का वह एक अच्छा नमूना था।

अन्धेरा होने से पहले ही यात्रियों का दल नहर के किनारे पर जा पहुँचा। यह सतलज की नहर है, जो रोपड़ से चल कर दोराहे के पास से गुजरती है। नहर के किनारे जाकर देखा कि तीन चार बड़ी-बड़ी छती हुई किश्तियाँ, जिन्हें प्रचलित भाषा में बजरा कह सकते हैं, खड़ी थीं। उन्हें देख कर प्रायः सभी के हृदय में उत्साह पैदा हो रहा था, बच्चों का तो कहना ही क्या ? हमारे लिए तो मानों वह समुद्र-यात्रा थी। यात्री दल उछलता कूदता उन किश्तियों में जा बैठा। सब किश्तिएँ अच्छी थीं, साफ-सुथरी बनी हुई थीं, बिस्तर बिछा कर सोने की खुली जगह थी। सब लोग धार्मिक जोश से भरे हुए थे। किश्तियों में बैठते ही वेद-मन्त्रों और भजनों का सिलसिला जारी हो गया। किश्तियों को माँझियों ने रस्सियों से बहाव के ऊपर खींचना शुरू कर दिया तो ठण्डी-ठण्डी हवा के झोंके आने लगे, जिस से बच्चों को नींद आ गई, लेकिन सोते-सोते भी हमने अनुभव किया कि आय नर-नारी वैदिक-धर्म के गीत गा रहे हैं।

आधी रात के समय सब की नींद उचट गई। आकाश में मानो प्रलय मच रहा था। ऊपर काले-काले घने बादल छाये हुए थे, जो रात के अन्धकार को और भी घना बना रहे थे। तूफानी हवा चल रही थी और बड़ी-बड़ी बूंदों से पानी बरस रहा था। नौका की छत हवा के झकोरों के सामने सर्वथा व्यर्थ सिद्ध हो रही थी। पानी सपाटे से आता था और इस पार से उस पार निकल जाता था। हम लोग अपनी तायी जी के चारों ओर दुबक कर बैठ गए थे। कपड़े भीग गये थे और ऊपर से पानी बराबर बरस रहा था। पिता जी उस काफिले के नेता थे, वे किश्ती के अग्रभाग में खड़े हो कर अपने गरजते हुए स्वर में सब यात्रियों की हिम्मत बँधा रहे थे और ईश्वर स्मरण करने की प्रेरणा कर रहे थे।

इसके आगे विस्तार से याद नहीं कि उस रात क्या हुआ ? यह स्मरण है कि जब प्रातःकाल हुआ, तब हमारी किश्तियाँ आगे चल सकीं। रात भर उन्हें खूंटे से बंधे रहना पड़ा। उसका परिणाम यह हुआ कि हमारी जो जल यात्रा दोपहर से पहले समाप्त होनी चाहिए थी, वह सन्ध्या समय में समाप्त हुई। घाट पर लाला सोमनाथ और बहुत से आर्य नर-नारी स्वागत के लिए विद्यमान थे। लाला सोमनाथ उन वीर आर्य समाजियों में से थे, जिन्हें अपने विश्वास के कारण सारी बिरादरी और परिवार का विरोध सहना पड़ा था। आजकल के आर्य-समाजी पूरी तरह समझ भी नहीं सकते कि उस समय के आर्य-समाजियों को कैसी शिलाओं से टकराना पड़ता था। आज तो आर्य समाज का मार्ग शाही मार्ग है, जिस पर चल कर बहुत से भाग्यशाली राज महलों तक पहुँच जाते हैं। परन्तु उस समय आर्य समाज का मार्ग बहुत वीहड़ जंगल का मार्ग था, जिसमें जगह-जगह गड्ढे और कँटीली झाड़ियाँ थीं। उनमें से कोई विरला भाग्यशाली ही आहत हुए बिना निकल सकता था। लाला सोमनाथ उन वीर आर्य समाजियों में से थे, जिन्होंने बहुत सी चोटें खाकर भी धर्म-यात्रा को पूरा करने में सफलता प्राप्त की थी।

स्मृति-पट पर उस समय का जो चित्र अंकित है, उसमें एक मूर्ति और भी खड़ी दिखाई देती है। याद आता है कि लाला सोमनाथ के पास एक सज्जन और

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

खड़े थे, जो देखने में पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त के मुसलमान दिखाई देते थे। मजबूत शरीर, दरम्याना कद, छोटी-छोटी दाढ़ी, बड़ी-बड़ी मूछें, सिर पर लम्बे शलमे वाली बड़ी सी पगड़ी, कोट के बटन खुले हुए और हाथ में एक किताब थी। वे ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त धर्मवीर पण्डित लेखराम थे। संभवतः यह मेरे लिये पण्डित जी के पहले दर्शन थे।

हम लोगों के किश्तियों से उतरने पर पिता जी से पण्डित लेखराम जी की जो बातचीत हुई, उसका कुछ प्रारम्भिक हिस्सा मुझे याद है। पण्डित जी ने आगे बढ़ते हुए कहा— 'प्रधान जी नमस्ते, देख लीजिये, मैं आपसे पहले यहाँ पहुंच गया!'

पिताजी ने उत्तर दिया—"आप को तो पहले पहुंचना ही चाहिए था, क्योंकि आप तो आर्य मुसाफिर हैं, मुसाफिर आगे ही रहा करते हैं।"

पं० लेखराम जी आर्य मुसाफिर या आर्य पथिक कहलाते थे और पिता जी ने अपने आप को कल्याण मार्ग का पथिक लिखा है। आर्यसमाज के इन दोनों कल्याण मार्ग के पथिकों का यह वार्तालाप भविष्य-वाणी से कैसा भरा हुआ था यह किसी को उस समय मालूम नहीं था। दोनों एक ही राह के राही थे तथा एक ही द्वार से होकर इस संसार से विदा हुए। भेद केवल वही रहा जो रोपड़ की उस बात-चीत में झलक रहा था। पं० लेखराम जी की गति बहुत तेज थी। इस कारण वह रास्ते को जल्दी तय कर गए और कुर्बानी के द्वार से होकर विश्राम स्थान में पहुंच गए। पिताजी की तबियत में अपेक्षया अधिक ठहराव था, इस कारण वे रास्ते पर देर तक चलते रहे। परन्तु पहुँचे उसी कुर्बानी के द्वार से और उसी विश्रान्ति स्थान पर।

यह मैंने पं० लेखराम जी के प्रथम दर्शन का वृत्तान्त सुनाया है। इससे आगे की स्मृतियों का समावेश अगले परिच्छेद में करूंगा।

———

५. कल्याण-मार्ग के दो पथिक

मेरी आयु उस समय शायद छह वर्ष की होगी। मैं उस मकान का कुछ वर्णन अपने पूर्व लेख में कर चुका हूँ, जिसमें हम लोग रहते थे। पिता जी के मस्तक पर एक शान की रेखा थी। वह जो काम करते थे और जिस ढंग में करते थे, उसमें एक खास तरह की शान रहती थी। वह मकान भी एक किले की सी शान रखता था।

उस मकान के सदर दरवाजे के लगभग सामने आर्य-समाज-मन्दिर था, बीच में केवल सड़क पड़ती थी। व्यवहार में हम उस सड़क को घर का ही एक रास्ता मान लें तो अनुचित न होगा, क्योंकि उस समय पिता जी का निजू जीवन आर्यसमाज-मय था। आर्यसमाज-मन्दिर और कोठी में सीमा की रेखा बाँधना कठिन था। दोनों एक-दूसरे के परिशिष्ट थे। पिताजी का आधा समय समाज-मन्दिर में व्यतीत होता था और कोठी का अतिथि-गृह आर्यसमाज के उपदेशकों और अभ्यागतों से शायद ही कभी खाली रहता हो।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उस अतिथि-गृह में अनेक अतिथि आते रहते थे, उन सब की सूरतें याद नहीं, पर एक सूरत मानों पत्थर की लकीर होकर स्मृति पर बैठी हुई है। वह थी आर्य-पथिक पं० लेखराम जी की मूर्ति।

जो घटना याद है, उसमें आर्य-पथिक का वह पेटेण्ट रूप नहीं था। उस समय उन्होंने केवल एक कपड़ा पहिना हुआ था और वह था पायजामा। बरसात के दिन थे। शाम का समय था। शरीर से पानी बह रहा था। इस कारण पायजामे के भक्त पं० लेखराम जी केवल पायजामा पहिने कोठी से निकल कर आर्यसमाज के कुएँ की ओर जा रहे थे।

कुए के पास एक पेड़ था—शायद जामुन का—जिसके नीचे चारपाई डालकर पण्डित जी लिखा करते थे। आप वहाँ जाकर खड़े हुए। उस स्थान पर वदिक पाठ-शाला के दो-तीन विद्यार्थी थे। उनके नाम याद नहीं। मैं भी पास ही खड़ा था। एक विद्यार्थी ने बातचीत के प्रसंग में पूछा—

'पण्डित जी, मन का क्या लक्षण है ?' मैं उसका कुछ अभिप्राय न समझा क्योंकि इतना छोटा बच्चा मन और उसके लक्षण की बात क्या जाने ? मुझे भी यह बात याद न रहती. यदि पण्डित जी का जवाब इतना विलक्षण न होता। उस जवाब के कारण ही यह घटना मेरी स्मृति पर अंकित हो गई है। आप ने उत्तर दिया—'उल्लू का पट्ठा'।

जिज्ञासु पण्डित जी का मुँह देखने लगा। शायद उसने समझा हो कि पण्डित जी ने उसे ही गाली दे डाली। पण्डित जी भाँप गए और बोले, 'भाई ! मैं कहता हूँ कि मन उल्लू का पट्ठा है क्योंकि अगर इसे काबू में न रखो तो यह अनर्थ कर देता है।'

यह व्याख्या सुनकर विद्यार्थी हँस पड़े। इस उत्तर में पं० लेखराम जी के चरित्र की कई विशेषताएँ भरी हुई हैं। आप हाजिर जवाब थे, तुर्तफुर्त जवाब देते थे। आप की भाषा में एक सीधापन था, जो अक्खड़पन की सीमा तक पहुंचता था। आप सूक्ष्म से सूक्ष्म बात को जनता के समझने योग्य स्पष्ट भाषा में प्रकट करने की शक्ति रखते थे।

मैंने ऊपर आर्य-पथिक को पायजामे के भक्त लिखा है। पायजामा और प्याज ये दो आप के विशेष प्रेम की वस्तुएँ थीं। पायजामा के भक्त होने के कारण आप धोती के सख्त विरोधी थे। एक घटना याद आती है। पिताजी घर पर धोती पहिनते थे। केवल अदालत या सफर में जाते समय पायजामा या पतलून पहिना करते थे। एक दिन वे धोती कुर्ता पहिने बैठक के बाहर चबूतरे पर घूम रहे थे कि बाहर से पाय-जामा-धारी पण्डित जी आए और जहाँ तक मुझे स्मरण है, निम्नलिखित वाक्य कहा—

'ईश्वर जानता है, लाला मुन्शीराम जी ! इस धोती ने ही हमारे देश का नाश किया है। आप धोती न पहिना करें।'

पिताजी हँस पड़े। जैसे महाराष्ट्र साम्राज्य के संस्थापक छत्रपति शिवाजी के चित्र को देखकर यह पहचानना कठिन है कि वह कोई मुगल बादशाह है या मराठा सरदार, उसी प्रकार पं० लेखराम जी को पूरे वेश में देखकर यह भेद करना दुष्कर था कि वे पेशावरी मुसलमान हैं या सरहदी हिन्दू ?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पं० लेखराम जी का पिताजी से सगेभाई का-सा प्रेम था। हमारे घर पर उनका आना-जाना और रहना निःसंकोच था। हम बच्चे उन्हें 'पण्डित जी' नाम से पुकारा करते थे। घर में प्राय. उनकी चर्चा हुआ करती है। पिताजी उनके निडरपन के कारनामे बड़ी प्रशंसा के साथ सुनाया करते थे। ताई जी उनसे काफी असन्तुष्ट रहती थीं। वह गृहस्वामिनी ठहरीं, हमेशा का मेहमान उन्हें कैसे रुच सकता था। एक और भी बात थी। वह स्त्रीसुलभ नैसर्गिक बुद्धि से यह अनुभव किया करती थीं कि इस अनथक उपदेशक के साथ जरूर कोई न कोई मुसीबत बँधी हुई है, जो हमारे घर पर भी आ सकती है। जब बाहर से खबर आती थी कि पं० लेखराम जी आ रहे हैं, तब तायी जी प्राय: कहा करती थीं—'आ गई आफत।'

पं० लेखराम जी की विस्तृत जीवनी पिताजी ने लिखी है। वह पिता जी के व्यक्तिगत संस्मरणों से भरी पड़ी है। बच्चे की याददाश्त के छोटे से खजाने में जो दो-चार टुकड़े मिले हैं, यहाँ उन्हीं को लिखना चाहता हूँ।

यह स्मरण है कि एक दिन पं० लेखराम जी अपनी धर्म-पत्नी सहित कोठी में आये। उनकी धर्मपत्नी का नाम लक्ष्मी था। यह भी स्मरण है कि वह बहुत ही लज्जाशील थीं। उस के पश्चात् पण्डित जी का हमारे यहाँ रहना बन्द हो गया, क्योंकि उन्होंने कोट राधाकृष्ण में घर ले लिया था।

पण्डित जी उर्दू के बड़े जबरदस्त लेखक थे। जिस घड़ल्ले का व्याख्यान देते थे, उसी घड़ल्ले की उर्दू लिखते थे। उनके अधिकाँश लेख तथा ग्रन्थ या तो दार्शनिक विषयों के सम्बन्ध में हैं अथवा मुसलमानों और विशेषत: कादयानी मुसलमानों के विषय में लिखे गए। यह सबको बहुत खरे और अप्रिय सत्य कह डालने वाले समालोचक थे। उनके ग्रन्थ प्राय: हमारे ही सद्धर्मप्रचारक मंत्रालय में छपा करते थे। जहाँ तक मुझे याद है उनका कातिब एक मुसलमान था, जो हमारे प्रेस का कातिब था। उसका नाम निजामुद्दीन था।

प्रेस के प्रसंग में एक और बात भी याद आ गई। सद्धर्म-प्रचारक प्रेस का मैनेजर अपने समय के पुराने मुन्शियों का नमूना था। उसका नाम—बस्तीराम—था। लम्बी दाढ़ी, जो उस युग में शिष्टता का चिन्ह मानी जाती थी, बस्तीराम के चेहरे पर भी विराजमान थी। वह बहुत ही मेहनती और कंजूस आदमी था। पिताजी शाहखर्च और उदार मशहूर थे। उनकी आशुतोष और विश्वासी तबियत से जो लोग लाभ उठाना चाहते थे—वे बस्तीराम से बहुत जलते थे। दृष्टान्त के लिए हम बच्चों को लीजिये। उस समय हम चार लड़के घर पर रहते थे। हरिश्चन्द्र जी, मैं, चेतराम और जेठराम। यह चेतराम और जेठराम कौन थे, और हम दोनों के साथ भाइयों की तरह कैसे पले? यह किस्सा किसी दूसरे स्थान पर सुनाऊँगा। इस समय तो केवल इतना ही बतलाना अभीष्ट है कि हम चारों भी सद्धर्मप्रचारक प्रेस के मैनेजर लाला बस्तीराम से बहुत नाराज रहते थे, क्योंकि वे हमें प्रेस से कागज, कलम आदि आकर्षक सामग्री नहीं उड़ाने देते थे। यदि किसी को प्रेस में पा लेते तो सीधे दफ्तर पहुंचकर बाबू जी (पिताजी) के सामने पेश कर देते थे। उदार स्वामियों को ऐसे सेवकों की आवश्यकता होती है। इसी कारण जब तक सद्धर्मप्रचारक उर्दू में रहा तब तक उस के मैनेजर लाला बस्तीराम जी रहे। प्रेस में उनका शासन काल सम्भवत: चौदह या पन्द्रह वर्ष तक रहा होगा।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इसी प्रसंग में पिताजी के मुन्शी उदयसिंह भी याद आ गए। वे वकील साहब के मुन्शी थे। उसी ठाठ से रहते थे। कान में सदा होल्डर लगा रहता था। यद्यपि कलमदान में कई कलमें रहती थीं तो भी उनका भरोसा कान में लगी कलम पर ही रहता था। तलवार तभी सिर उड़ाती है जब म्यान से बाहर हो। मुन्शी जी अपनी कम-से-कम एक तलवार सदा म्यान से बाहर रखते थे।

उदयसिंह जी की एक और बात याद है। यदि मेरे बड़े भाई गवाही दे सकते तो वे भी मेरा समर्थन करते। हरिश्चन्द्र जो बड़े भी थे और समर्थ भी। मैं बचपन से ही बीमार रहा हूँ। दो वर्ष की आयु में निमोनिया का पहला आक्रमण हुआ। और चार वर्ष की आयु में दूसरा। इसके बाद से मुझे सदा खाँसी बनी रही। बचपन में मैंने न जाने लाल शर्बत की कितनी बोतलें पी डाली थीं। मेरे शरीर का उठान पिता जी और भाई जी तक नहीं पहुंचा, उसका कारण मेरी बचपन की बीमारी ही थी। उस बीमारी के कारण मैं शरारतें भी कम कर सकता था। हरिश्चन्द्र जी का शरीर उस समय खूब हृष्ट-पुष्ट था। वे बाल-सुलभ नटखटियों में हम लोगों के अगुआ रहते थे। जब कभी पकड़े जाते और बाबू जी के दरबार में हाजिरी होती, तब उन्हें यह सजा दी जाती थी कि घंटा दो घंटा तक मुन्शी उदयसिंह की देख-रेख में रहें। मुन्शी उदयसिंह उन्हें अपने दफ्तर के कमरे में पाँव दूर-दूर रख कर खड़ा कर देते थे और कभी-कभी दो-दो घंटा खड़ा रखते थे। उस आपत्ति के समय में यथा शक्ति तरह-तरह की मदद पहुंचाना हम बच्चों का काम था।

एक दिन समाज-मंदिर में और हमारी कोठी पर बड़ी भारी भीड़ लग गई। हम लोगों ने सुना कि लाहौर में किसी मुसलमान ने पं० लेखराम जी को छुरे से मार दिया है। जिस समय इस आशय का तार आर्यसमाज में पहुँचा उस समय पिताजी लाहौर गए हुए थे। मैं लिख चुका हूँ कि पिताजी और पण्डित जी अभिन्न सखा थे। पण्डित जी के समालोचनात्मक ग्रन्थ सद्धर्मप्रचारक प्रेस में छपते थे। इस कारण जालन्धर में यह अफवाह फैल गई होगी कि पिताजी भी छुरे के शिकार हो गए। सैकड़ों लोग हमारी कोठी में उनका समाचार पूछने के लिए आए। मुझे याद है कि हम सब लोग बहुत विचलित हो गए। शायद ताई जी और बहनें कुछ रायीं भी थीं। तुरन्त ही एक आदमी लाहौर भेजा गया जो दूसरे दिन: प्रात:काल तक सब समाचार ले आया। उस समय तक लाहौर के दैनिक पत्र ट्रिब्यून में भी पं० लेखराम जी के बलिदान की पूरी कहानी आ चुकी होगी, तब कहीं हम लोगों की चिन्ता दूर हुई, परन्तु कभी-कभी अफवाह भी भविष्यवाणी का रूप धारण कर लेती हैं। किंवदन्ती उड़ाने वालों को यह मालूम नहीं था कि वे एक ऐसी भविष्यवाणी कर रहे हैं, जो लगभग ३० वर्ष पश्चात् पूरी होगी। आर्यपथिक पं० लेखराम जी का बलिदान ६ मार्च १८९७ के दिन हुआ और कल्याण-मार्ग के पथिक स्वामी श्रद्धानन्द जी २३ दिसम्बर १९२६ के दिन वीरगति को पधारे। एक आततायी के छुरे का शिकार हुआ तो दूसरा आततायी की गोली का निशाना बना। सवारी अलग-अलग थी, परन्तु जिस मंजिल पर दोनों सखा पहुंचे वह एक ही थी और वह थी आत्म-बलिदान की मंजिल जो मनुष्यजाति के लिए सबसे श्रेष्ठ मंजिल है और केवल पुण्यों के विशाल संग्रह से प्राप्त होती है।

———

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

६. भगवत्कृपा का भरोसा

इससे पूर्व मैंने एक ऐसी घटना सुनाने का वायदा किया था, जिसने पिताजी के हृदय में ईश्वर-विश्वास और श्रद्धा की जड़ों को अधिक मजबूत बना दिया था। वह घटना पिताजी प्राय: सुनाया करते थे।

घटना इस प्रकार थी—सद्धर्म प्रचारक में सनातन धर्म सभा पंजाब के उपदेशक पं० गोपीनाथ जी के सम्बन्ध में एक छोटा-सा सम्पादकीय नोट प्रकाशित हुआ। उस नोट में पं० गोपीनाथ जी के चरित्र पर आक्षेप किया गया था। जिस समय सद्धर्म प्रचारक में वह नोट प्रकाशित हुआ, उस समय पिताजी जालन्धर में नहीं थे। सहायक सम्पादक लाला वजीरचन्द जी ने वह नोट लिखा था। पं० गोपीनाथ जी को इससे पूर्व लाहौर के अंग्रेजी के एक अखबार के विरुद्ध मान हानि के दावे में सफलता प्राप्त हो चुकी थी। सफलता द्वारा बड़े उत्साह से प्रभावित होकर पं० गोपीनाथ जी ने सद्धर्म प्रचारक के सम्पादक और प्रकाशक पर मानहानि का दावा कर दिया।

जिस समय पिताजी को लाहौर की अदालत का समन मिला, वे दौरे पर थे और बीमार थे। जुकाम और बुखार से पीड़ित होते हुए भी प्रचार के जोश में वे कई मास से निरन्तर घूम रहे थे। समन पाकर वे लाहौर पहुंचे।

इस मुकदमे ने प्रारम्भ से ही एक सार्वजनिक रूप धारण कर लिया था। पंजाब में आर्यसमाज में और सनातन धर्म सभा में जो विचारसंघर्ष वर्षों से चल रहा था, यह उसकी पराकाष्ठा थी। दोनों ओर बड़ा जोश था।

मुकदमे के अनुसार ही वकील किये गए थे। पं० गोपीनाथ जी की ओर से एक अंग्रेज वकील थे, जो उस समय लाहौर में वकीलों के सरदार समझे जाते थे। पिताजी की सफाई के लिए हमारे मामा रायजादा भगतराम जी जालन्धर से गए थे।

यहाँ कुछ शब्द मामा भगतराम जी के विषय में लिख देना अनुचित न होगा। हमारे मामाओं में से व्यक्तिगत सम्बन्ध में रायजादा भगतराम जी पिताजी के सबसे अधिक समीप थे। कट्टर आर्यसमाजी, शाकभोजी और सार्वजनिक कार्यकर्त्ता होने के नाते से लाला देवराज जी का पिताजी के अधिक समीप होना स्वाभाविक था, परन्तु बहुत पूर्व से ही रायजादा भगतराम जी से पिताजी का गहरा प्रेम था। परिवार के सम्बन्ध कड़वे हो गए, पिताजी ने जालन्धर छोड़ दिया, महात्मा बने और फिर संन्यास ले लिया, परन्तु दोनों का निजी प्रेम शिथिल नहीं हुआ। जब पिताजी की आयु लगभग ७० वर्ष की हो गई थी, तब मामा जी एक मुकदमे की पैरवी में दिल्ली आकर शायद अन्तिम बार उनसे मिले थे। उस समय भी मैंने सुना कि पिताजी उन्हें—भगतराम—और मामा जी पुराने संस्कारों के अनुसार उन्हें मुन्शीराम जी—इस नाम से पुकार रहे थे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आश्चर्य की बात यह थी कि मामा भगतराम जी विचार पद्धति में पिताजी से सर्वथा भिन्न थे। विलायत से बैरिस्टरी के साथ ही वे बहुत विलायती रंग-ढंग ले आए थे। अंग्रेजी ढंग का रहन-सहन पसन्द करते थे, गोश्त खाते थे और धर्म को बहुत गम्भीर वस्तु नहीं समझते थे। हमारी मामी जी को मांस से बहुत घृणा थी। उनके चौके में आमिष नहीं पक सकता था। मामी जी का खानसामा अलग था और डाइनिंग रूम भी अलग था, जहाँ वे मेहमानों और बाल-बच्चों के साथ खाना खाया करते थे। पिताजी या स्नातक बनने के पश्चात् हम लोग जब कभी मामा जी की कोठी पर जाते थे, तब मामी जी की रसोई के सदस्य ही बनाए जाते थे।

पिताजी कट्टर निरामिषभोजी और मामा जी भोजनादि में सर्वथा आजाद परन्तु दोनों का व्यक्तिगत सान्निध्य अपूर्व था।

इसका मुख्य कारण यह था कि पिताजी और मामा जी दोनों में एक समानता थी। दोनों के हृदय विशाल थे। उनमें इतनी खुली जगह थी कि वे केवल विचारभेद से दूरी करने की आवश्यकता नहीं समझते थे। मामा जी के लिए यदि कोई अंग्रेजी शब्द बिल्कुल ठीक जंचता तो वह 'परफैक्ट जेन्टिलमैन' यह शब्द था। दो उदारहृदय बन्धुओं में लड़ाई नहीं हुआ करती। लड़ाई वहीं होती है, जहाँ हृदय के द्वार तंग हों।

अस्तु, तो मामा जी जालन्धर से पिताजी का मुकदमा लड़ने के लिए लाहौर गए। पहली पेशी में पं० गोपीनाथ जी की गवाही होने वाली थी। मामा जी ने पिताजी से पूछा—'मुन्शीराम जी, कोई मसाला भी है या नहीं? जिरह में क्या पूछा जायेगा।' मसाला कुछ था ही नहीं, दोनों चिन्तित थे कि मुकदमा कैसे लड़ा जाएगा? पिताजी ने उत्तर दिया—'भाई, मसाला तो कुछ भी नहीं, एक ईश्वर का भरोसा है। चलो, कोई न कोई रास्ता निकल आएगा।'

दोनों बन्धु खाली हाथ अदालत में जा पहुँचे। पं० गोपीनाथ जी को अपनी जीत का दृढ़ निश्चय था। वे शेर की तरह छाती ताने हुए आये और अपना बयान स्पष्ट शब्दों में दिया। इतने में लंच का समय हो गया। अदालत उठने की तैयारी करने लगी और रायजादा भगतराम जी इस्तगासे के बयान पर दृष्टि गड़ा कर देखने लगे कि लंच के बाद क्या जिरह की जायेगी?

आगे जो हुआ, वह यथासम्भव पिता जी से सुने हुए शब्दों में ही सुनाता हूँ—

मैं पीठ पीछे हाथ रखे खड़ा था, कि इतने में मेरे हाथ को किसी ने छुआ और कोई चीज पकड़ाई। मैंने उस चीज को पकड़ने के लिए हाथ फैलाया तो किसी ने कागजों का एक पुलिन्दा मेरे हाथ में दे दिया। मैंने यह समझ कर कि किसी अखबार की फाइल होगी उसे ले लिया। इतने में अदालत लंच के लिए उठ गई। मैं उस पुलन्दे को हाथ में लेकर यह सोचता हुआ बाहर निकला कि मामले के बिना मुकदमा कैसे लड़ा जाएगा? बाहर निकल कर भगतराम जी के साथ एक कमरे में जा बैठा। तब ख्याल आया कि मेरे हाथ में कुछ कागज हैं, उन्हें देखना चाहिए। देखा तो दंग रह गया। पं० गोपीनाथ जी की वदचलनियों के सबूतों का ढेर मेरे सामने पड़ा था। बंडल में वेश्याओं के नाम गोपीनाथ जी के लिखे हुए पत्र थे। उन पत्रों में वे रहस्य भरे पड़े थे' जिनका किसी को वहम भी नहीं हो सकता था।

जब उस बंडल को मैंने भगतराम जी के सामने रखा तो वे उछल पड़े। उस बंडल को पिता जी के हाथ में कौन रख गया यह कभी पता न लग सका। यदि पिता

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जी आर्यसमाजी न होते तो उसे अवश्य ही 'सांवलशाह' का चमत्कार मान लेते। उस बंडल ने न केवल पिता जी को निर्दोष साबित कर दिया, पं० गोपीनाथ जी का असली रूप भी संसार के सामने रख दिया।

पिता जी कहा करते थे कि उस बंडल की घटना ने मेरे इस विश्वास को बहुत दृढ़ कर दिया कि साँच को आँच नहीं? क्योंकि सत्य के रक्षक परमात्मा का हाथ मनुष्य के हाथ से बहुत लम्बा है।

हम दोनों भाई उन दिनों वैदिक पाठशाला में पढ़ते थे जो गुजरांवाले में खोली गई थी। इस मुकदमे का समाचार हमने वहीं सुना।

——

७. बन्धन से मोक्ष की ओर

जैसे पर्वत की किसी ऊँची चोटी से पानी की धारा निकल कर किसी गहरे स्थान में इकट्ठी होती रहती है, जिस से झील भर जाती है और जब झील लबालब भर जाती है, तब पानी व रास्ता तलाश करके एक निश्चित दिशा में नदी का रूप धारण करके बहने लगता है, उसी प्रकार पिता जी का जीवन बड़ी बहिन वेदकुमारी जी के विवाह के पश्चात् निश्चित मार्ग बनाकर धर्म सेवा की नदी के रूप में सर्वमेध यज्ञ की ओर को बहने लगा था। पिछले लेख में मैंने उस जीवन के लबालब भरने की कथा सुनाई थी। इस लेख में मैं उन की नई जीवनधारा के पहले पड़ाव के कुछ संस्मरण लिखूंगा।

एक दिन प्रातः काल हवेली के अन्दर खबर पहुँची कि बाहर बाबू जी से मिलने वालों की भीड़ लग रही है। क्या मामला है, यह जानने के लिए हम दोनों भाई भाग कर बाहर आए। दफ्तर के बरामदे में कुर्सियों पर बहुत से आदमी बैठे थे और पिता जी एक अंग्रेजी का अखबार सुना रहे थे। प्रायः सभी उपस्थित लोगों के हाथ में अखबार दिखाई देता था। हम दोनों अंग्रेजी नहीं समझ सकते थे। इस कारण पूरी बात तो समझ में नहीं आई परन्तु लेख पढ़े जाने के पश्चात् जो आपस की बात-चीत हुई और जिस प्रकार लोग ताली दे-दे कर हँस रहे थे, उससे हमने यह अवश्य जान लिया कि मामला कोई मजाक का है, और अखबार के किसी लेख से लोग धोखे में आ गए हैं। उसी समय हमने यह भी देखा कि तार वाला कई तार लेकर आया है, वे भी पढ़ गए और उन पर भी कहकहा लगा।

उस समय तो हम लोग अच्छी तरह नहीं समझ सके कि क्या बात थी। परतु पीछे से सब भेद समझ में आ गया। बात यह थी कि कुछ समय पहले पिता जी ने समाज मन्दिर में रहतियों को शुद्ध किया था। रहतियों की गिनती उस समय अछूत हिन्दुओं में की जाती थी। आर्यसमाज सिद्धांत रूप में प्रारम्भ से ही छुआछूत को नहीं मानता था, परन्तु तब तक उसकी ओर से अछूतता को दूर करने का कोई संगठित उपाय नहीं किया गया था। पिता जी के जीवन की सबसे बड़ी विशेषता यही

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

थी कि वे जिस बात पर विश्वास करते थे, उसे कार्य में ला डाले बिना चैन नहीं लेते थे। वे उस समय जालन्धर आर्यसमाज के प्रधान थे। एक शुभ अवसर निकाल कर आर्यसमाज मन्दिर में बहुत से आर्य सभासदों और दो-तीन सौ दर्शकों की उपस्थिति में कई रहतिए भाई शुद्ध करके आर्यसमाज में शामिल कर लिए गए। उपस्थित सभासदों ने उन के हाथ से हलुपा खाया और जल पिया। हिन्दू जाति के लिए यह एक नई चीज थी। सनातन धर्म सभा ने इस मामले को लेकर जनता को खूब भड़-काया जिसके फलस्वरूप बहुत से आर्यसमाजी बिरादरी से खारिज किए गए। इस प्रकार समाज सुधार के युद्ध में एक नया पर्व शुरू हुआ।

यह तो थी घटना। लाहौर के ट्रिब्यून के सम्पादक को इस पर एक मजाक सूझा। पहली अप्रैल के पर्चे में उसने एक सनसनी पूर्ण समाचार बनाकर प्रकाशित किया। समाचार का सारांश यह था,—जालन्धर से समाचार मिला है कि वहां की हिन्दू जनता रहतियों की शुद्धि से विक्षुब्ध हो कर आर्यसमाज के प्रधान लाला मुन्शी-राम के मकान पर चढ़ गयी। उन को पकड़ लिया और समाज मन्दिर में घसीट ले गई। वहाँ जाकर लोगों ने उन्हें रस्सियों से बाँध दिया और समाज मन्दिर में जो पीपल का पेड़ है, उस से लटका दिया गया। इतनी कहानी लिखकर सम्पादक ने यह टिप्पणी दी कि लोग इतने भोले हैं कि यदि अप्रैल की पहली तारीख को उपर्युक्त समाचार प्रकाशित किया जाय तो उसे भी सत्य मान लेंगे। जब एक अप्रैल के प्रातः-काल ट्रिब्यून का पर्चा लोगों के हाथ में पहुँचा तो वे बड़ी दिलचस्पी से उस समाचार को पढ़ गए। हितैषी घबरा उठे और विरोधी बगलें बजाने लगे परन्तु अन्तिम पंक्तिएँ पढ़ने का शायद दो चार ने ही कष्ट उठाया हो। सारे लेख के अन्त में ए० एफ० (अप्रैल फूल) लिखा हुआ था। पाठक समझ सकते हैं इस सम्पादकीय हथकण्डे ने कितनी व्यापक हलचल पैदा की होगी। कई दिनों तक तार और पत्र आते रहे जिन सब के उत्तर पिता जी ने अपनी आदत के अनुसार अवश्य दिए होंगे। वे किसी पत्र को उत्तर दिए बिना नहीं छोड़ते थे।

समाज सुधार के इस आक्रमणात्मक कार्य को ट्रिब्यून के मजाक से प्रसिद्धि मिली और अखबार पढ़ने वाले लोगों की जिह्वा पर पिताजी का नाम चढ़ने लगा।

मैंने अपने पूर्व संस्मरण में लिखा था कि पिताजी के दफ्तर के रोशनदान हवेली के आँगन में खुलते थे। जब कभी दफ्तर या दफ्तर के बरामदे में जोर की बातचीत होती थी तो उस की भनक आँगन में पहुँच जाती थी। एक दिन की बात है कि आँगन में जोर-जोर से बोलने की आवाज सुनाई देने लगी; जिस से हम लोगों को दो से अधिक स्वर मिले हुए प्रतीत होते थे। दो स्वर तो पहचाने हुए थे। एक पिता जी का था, दूसरा हमारे मामा लाला देवराज जी का। बीच-बीच में एक तीसरा स्वर भी सुनाई देता था। तीनों के स्वर काफी ऊँचे और तेज थे, जिनसे हम लोगों ने अनुमान लगाया कि कोई झगड़ा हो रहा है। पिताजी से कोई झगड़े, यह हम बच्चों के लिए नई बात थी। यूं तो सभी बच्चे छोटी उम्र में अपने पिताओं को संसार में सब से अधिक शक्तिशाली और समझदार मानते हैं (यद्यपि बड़ी उम्र में ज्ञानलवदु-विदग्ध हो कर उन की सम्मति बदल जाती है) परन्तु हमारे लिए तो पिताजी का किसी से झगड़ना बहुत ही असाधारण चीज थी। वे घर में कभी किसी को गुस्से तक नहीं होते थे। यह जान कर कि कोई उन से झगड़ रहा है, हम दोनों भाई देखने और

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

खबर लाने के लिए भाग कर बाहर गए और बैठक में छुपकर सुनने लगे। हम ने जो कुछ सुना उस से उस समय इतना ही समझ में आया कि झगड़ा कन्या महाविद्यालय के सम्बन्ध में है और पिता जी और मामा जी के अतिरिक्त तीसरे सज्जन द्वावा हाई स्कूल के हैडमास्टर, मास्टर लक्ष्मणदास जी हैं। पिता जी मास्टर लक्ष्मणदास जी का समर्थन कर रहे थे। मामा जी बहुत विक्षुब्ध थे और अन्त में मास्टर जी से यह कहते हुए चले गए कि खैर, तुमने मुझे यहाँ सब कुछ कह लिया, अब मैं तुम्हें कोट किशनचन्द में देख लूंगा!

शायद पाठकों को सब बातें समझने में आसानी हो यदि मैं कुछ थोड़ा सा वृत्तान्त अपने नानके (ननसाल) का सुना दूं। नाना जी जालन्धर के बहुत बड़े शायद अपने समय में जालन्धर के सबसे बड़े रईस थे। रईसों के पास जो कुछ होता है, वह सब कुछ उनके पास था। शहर के बाहर उनकी हवेली थी, जिस के साथ लगता हुआ 'कोट किशनचन्द' नाम का मुहल्ला था, उस के अधिकांश के मालिक वही थे। मैंने जब होश संभाला, तब हमारे तीन मामा विद्यमान थे। बड़े मामा देवराज जी को सारा देश कन्या महाविद्यालय जालन्धर के संस्थापक और जीवन पर्यन्त संचालक के रूप में जानता है। दूसरे मामा रायजादा भगतराम जी थे, जो अपने समय में पंजाब के मूर्धन्य फौजी वकील समझे जाते थे। उनके बारे में यह जनश्रुति मशहूर थी कि जब कोई जाट गाँव की लड़ाई लड़ने के लिए घर से निकलता था और कोई हितैषी उसे यह कहकर रोकता था कि भाई लड़ो मत, किसी को मार दोगे तो फांसी चढ़ जाओगे, तो वह यह उत्तर देकर लड़ने चला जाता था कि कोई डर नहीं, जालन्धर जाकर भगतराम को वकील कर लेना, वह छुड़ा लेगा। मामा भगतराम जी बैरिस्टर थे।

तीसरे मामा हंसराज जी, पंजाब के प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता हैं और बहुत वर्षों से केन्द्रीय संसद के कांग्रेसी सदस्य हैं। सब से बड़े मामा मेरे होश से पहले स्वर्गवासी हो गए थे। इन चार भाईयों की एक ही बहिन थी और वह हम चार भाई बहिनों की माँ थी। मेरी स्मृति पर उनका कोई चिन्ह नहीं है। यह उस समय का दोष समझें या आकस्मिक दुर्घटना मानी जाय कि माता जी का कोई चित्र भी विद्यमान नहीं है। दादा जी के और नाना जी के चित्र तो हैं, इसलिए समय को अधिक दोष क्या दें अतः इसे आकस्मिक दुर्घटना समझ कर ही संतोष कर लेना उचित प्रतीत होता है।

इतना विषयान्तर कर के अब मैं उस घटना पर आता हूँ, जहाँ से मैंने बात शुरू की थी। पिता जी का और मामा जी का झगड़ा बहुत ही आश्चर्य में डालने वाला था, क्योंकि दोनों लगभग इकट्ठे ही आर्यसमाजी बने, इकट्ठे ही समाज की सेवा में संलग्न हुए और कन्या महाविद्यालय का प्रारम्भ भी दोनों के सम्मिलित प्रयत्न से ही हुआ। ऐसे साथियों में किन कारणों से मनमुटाव पैदा हुआ, इस प्रश्न का उत्तर देने का यह स्थान नहीं है। यहाँ तो केवल इतना ही बतलाना प्रसंगागत है कि पिता जी और मामा जी के परस्पर झगड़े से हम बच्चे बहुत ही खिन्न हुए थे क्यों कि उस के कारण हमारा कोट में भाभो जी (नानी जी) के पास जाना रुक सा गया था। सब परिवार वाले नानी जी को भाभो जी कहते थे। वे सब से बहुत प्यार करती थीं और सारा परिवार भी उन से बहुत प्यार करता था। हम लोगों के लिए कोट में सब से बड़ा आकर्षण उन्हीं का था।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मामा जी का पिता जी से उस समय जो मतभेद आरम्भ हुआ, वह समय के साथ अधिक विस्तृत और गहरा ही होता गया। यहाँ तक कि उन दिनों प्रारम्भिक साथियों के दृष्टिकोण प्रायः सभी व्यवहारिक विषयों में अलग-अलग हो गए। पिता जी के आगामी सामाजिक जीवन में बन्धुओं के इस मतभेद का काफी प्रभाव दिखाई देता रहा।

इस परिच्छेद को मैं एक छोटी सी घटना के संस्मरण के साथ समाप्त करता हूँ। पारिवारिक बन्धनों को तोड़ कर समाज सेवा के खुले क्षेत्र में स्वतन्त्र घूमने के लिए जिस मानसिक तैयारी की आवश्यकता थी, वह उस घटना से पूरी हो गई थी। हमारे घर पर एक विधवा विवाह हुआ। डाक्टर गुरुदत्त जी (स्वामी आत्मानन्द मुमुक्षु) एक दृढ़ आर्य युवक थे और श्रीमती सुमित्रा ईसाइयों से आई हुई एक सुशिक्षित देवी थीं, जिन का दोष हिन्दू समाज की दृष्टि में इतना ही था कि वे विधवा थीं। उस समय विधवा विवाह हिन्दुओं के लिए ही नहीं आर्यसमाजियों के लिए भी एक नयी और साहसिक चीज थी। नयी और साहसिक चीज को कर डालना पिता जी का स्वभाव था। उन्होंने लड़की के पिता बनकर कोठी पर वैदिक रीति से डाक्टर गुरुदत्त जी का सुमित्रादेवी जी से विवाह करा दिया। इस विवाह का हमारे परिवार में घोर विरोध हुआ। सब से अधिक तीव्र विरोध हमारी ताई जी ने किया, जिनकी धार्मिक भावनाओं को इस से भारी ठेस पहुँची। हमारे नानके (ननसाल) की ओर से भी इस विवाह का विरोध हुआ। इन दोनों विरोधों की परवाह न कर के पिता जी ने अपने घर पर विधवा विवाह तो रचा दिया परन्तु ताई जी और अन्य सम्बंधियों के व्यवहार से पिता जी के हृदय पर बहुत गहरी चोट लगी। उस चोट का क्या परिणाम हुआ—यह पाठक अगले संस्मरण में पढ़ेंगे।

———

८. सर्वमेधयज्ञ की प्रस्तावना

मेरे बचपन की स्मृतियों की शृंखला जहाँ तक पहुँच चुकी है उसके आगे की कुछ समय की स्मृतियाँ बहुत बिखरी हुई हैं परन्तु फिर भी एक नई शृंखला में बंधी हुई हैं। घर में रहते हुए जो जीवन बिताया, वह पिताजी की स्मृतियों के कारण कुछ घटनापूर्ण सा प्रतीत होता हुआ भी वस्तुतः वैसा ही था जैसा निन्यानवे फीसदी बच्चों का होता है। घर में खेलना-कूदना, स्कूल में पढ़ने जाना, शरारत पर डांट खाना और त्योहारों पर इनाम पाना, यही बच्चों की रिवाजी दिनचर्या है, हमारी भी यही थी। पिताजी की दिनचर्या असाधारण अवश्य थी, परन्तु उस समय हम लोग उसका कोई महत्व नहीं समझते थे। ताया जी के बार-बार कहने से इतना ही समझते थे कि बाबू जी बाहर के कामों में अधिक लगे रहते हैं और घर की ओर कम ध्यान देते हैं।'

मेरी अवस्था उस समय लगभग आठ वर्ष की होगी, जब पिताजी के जीवन का हम लोगों के जीवन पर दृश्यमान असर पड़ने लगा। जैसे एक बड़े जहाज के पीछे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation Chennai
बंधी हुई छोटी नौकाएं हठात् समुद्र में इधर से उधर अठखेलियां करती हैं, उसी प्रकार आने वाले कुछ वर्षों में हम ('हम' से मेरा अभिप्राय हम दोनों भाइयों से है) भी पिताजी के जीवन में उठती हुई लहरों पर, इधर से उधर और उधर से इधर घटनाचक्र के साथ घूमते रहे। उस समय तक हम केवल इतना ही जानते थे कि पिता जी घर में अनुपस्थित रहते हैं और उन्हें आर्यसमाज का काम अधिक रहता है। अब हम यह भी अनुभव करने लगे कि पिताजी घर को छोड़ते जाते हैं और किसी ऐसी दिशा में जा रहे हैं—जिधर हमारे समवयस्क अन्य बालकों के पिता नहीं जा रहे।

पिताजी के जीवन में क्रान्ति के बीज बहुत काल से बोये जा चुके थे। बरेली में ऋषि दयानन्द के दर्शनों ने क्रांति का जो बीज बोया, वह धीरे-धीरे अंकुरित हो कर पल्लवित हो रहा था। उस घटनाचक्र ने, जिसकी अन्तिम सामाजिक घटना आर्य पथिक पं० लेखराम जी की मृत्यु के बाद आर्य समाज का महात्मा और कालिज पार्टियों में घोर संघर्ष का फिर से फूट पड़ना था और अन्तिम पारिवारिक घटना डा० गुरुदत्त जी का विवाह था, पिताजी के जीवन को एक दम नई धारा में डाल दिया। क्रान्ति का प्रवाह तीव्र हो गया, जिसकी टक्कर से घर गिरस्थी की रिवाजी दीवारें धड़ा-धड़ गिरने लगीं।

अब मैं संक्षेप में बाल्य स्मृति के उन टुकड़ों को पाठकों के सम्मुख रखता हूँ जो एक विशाल सर्वमेध यज्ञ की स्मृतियाँ होती हुई भी उस समय हमारे लिए केवल छोटी-छोटी घटनाएं थीं।

पिताजी प्रायः लाहौर जाते रहते थे। अधिकतर आर्यसमाज के काम से और कभी कभी मुकदमों के प्रसंग में लाहौर जाते थे तो दूसरे या तीसरे दिन वापिस आ जाते थे। वापिस आने की गाड़ी की सूचना जाते हुए दे जाते थे। ठीक समय पर घोड़ा-गाड़ी स्टेशन पर पहुँच जाती थी। पिताजी के घर आने की सूचना हम लोगों को अनायास ही मिल जाती थी, क्योंकि गाड़ी पर से उतार कर बिस्तर और यात्रा का अन्य सामान अन्दर लाया जाता था।

एक दिन हम लोग बहुत आश्चर्यित हो गए, क्योंकि पिता जी का सामान गाड़ी से उतार कर घर नहीं लाया गया। कोचवान ने अन्दर आकर कहा कि 'बाबू जी ने अपना सामान समाज-मन्दिर में ही उतरवा लिया है और कहा है कि घर पर जाकर खबर कर दो।' बाबू जी घर पर नहीं आये और समाज मन्दिर में उतर गये हैं, इस समाचार ने घर भर में तहलका सा मचा दिया। तायी जी पहले तो स्तब्ध सी रह गईं फिर पिता जी के इस कार्य के औचित्य पर काफी जोरदार टिप्पणी करने लगीं। हम चारों बच्चे घबरा कर तायी जी के चारों ओर इकट्ठे हो गए, नौकर जिसका नाम रणुआ था, एक ओर खड़ा आंखों से आँसू बहा रहा था। हमारे ताया जी, जो परिवार के मौनधारी सदस्य थे, कुछ समय पीछे हाथ में हुक्का लिए हुए ड्योढ़ी से घर के अन्दर आए और तायी जी को दिलासा देने लगे। जहाँ तक मुझे याद है उनके दिए हुये दिलासे का यह सारांश था कि 'मुन्शीराम हमेशा से ऐसा ही रहा है, जो दिल में आता है वही करता है। तुम चिन्ता न करो अपने आप घर आ जायेगा।' परन्तु तायी जी घर के मामले में ऐसे वैराग्य से सन्तुष्ट होने वाली नहीं थीं। उन्हें यह सन्देह हुआ कि पिताजी किसी बात से नाराज होकर घर में

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नहीं आ रहे हैं। कुछ समय के पश्चात् उन्होंने निश्चय किया कि समाज-मन्दिर में जाकर नाराजगी का कारण पूछा जाये। तायी जी का निश्चय हो जाने पर ताया जी के लिए कोई समस्या शेष न रही। उन्होंने अपना हुक्का ताजा कराया और चारपाई पर बैठ कर उस आनन्द का अनुभव करने लगे जिसे केवल अफ़ीम या हुक्के का भक्त ही कर सकता है।

तायी जी ने नौकर को आर्यसमाज-मन्दिर में यह पूछने के लिये भेजा कि हम लोग मिलने के लिए आना चाहते हैं कोई रुकावट तो नहीं है। मैं पहले बतला चुका हूँ कि हमारी कोठी और समाज-मन्दिर के बीच में केवल पक्की सड़क थी। रणुआ पांच सात मिनट में ही लौट आया। वह उत्तर लाया कि मिलने में कोई रुकावट नहीं है। हम लोग तब तक तैयार हो चुके थे। तायी जी भी उस समय के रिवाज के अनुसार रेशमी घाघरा पहन और ओढ़न ओढ़कर आगे-आगे चलीं—हम चारों भाई, बहिन पीछे-पीछे कुछ घबराते हुए से चले और अन्त में हमारा नौकर रणुआ चला।

पिता जी समाज-मन्दिर के द्वार पर प्रतीक्षा कर रहे थे। वह गम्भीर मुद्रा में थे। तायी जी की घबराहट देखकर शान्त करते हुए प्रारम्भ में ही उन्होंने कहा—

'भाभी, मैंने लाहौर में प्रतिज्ञा कर ली है कि जब तक गुरुकुल बनाने के लिए ३० हजार रुपया इकट्ठा न कर लूंगा, तब तक घर में पैर नहीं रखूँगा। इसी कारण समाज में ठहरा हूँ घबराने की कोई बात नहीं। भाय्या जी, (पिता जी ताया जी को भाय्या जी कहा करते थे) घर में हैं हीं। कोई चिन्ता मत करो।'

इस आश्वासन से तायी जी का मन थोड़ा बहुत शान्त हो गया और उन्हें शान्त देख कर हम लोग भी शान्त हो गये। यह सर्वमेध-यज्ञ का प्रथम चरण था।

पिता जी चन्दे के लिए देश भर में पर्यटन करने लगे। उन के पीछे सद्धर्म-प्रचारक का सम्पादन लाला वजीरचन्द और प्रेस का प्रबन्ध लाला बस्तीराम करते थे। वकालत के मुन्शी उदयसिंह छट्टी पर चले गये और घर की गाड़ी पुरानी लीक पर तायी जी के नेतृत्व में चलने लगी। घर वही था, परन्तु उस घर का मध्य भाग—बगीचा, दफ्तर, बैठक और अतिथि-गृह में सुनसान हो जाने से चारों ओर सन्नाटा प्रतीत होता था। बच्चों को बगीची में से गुजरते डर लगता था।

कुछ दिनों तक—शायद दो या तीन महीनों तक—ढर्रा यूँ ही चलता रहा उसके पश्चात् हम दोनों भाइयों के लिए पिताजी का आदेश आ गया कि 'हरीश और इन्द्र को गुजरां-वाले की वैदिक पाठशाला में भेज दिया जाय।' इस आदेश से हम दोनों भाइयों की जीवनधारा का मार्ग सर्वथा बदल गया। इस समय हरिश्चन्द्र जी डाबा स्कूल की ७ वीं श्रेणी में पढ़ रहे थे और मैं छठी में पढ़ रहा था। हम दोनों स्कूल से उठा लिए गये, और एक सज्जन के साथ, जिनका नाम मैं इस समय भूल गया हूं, गुजरांवाला भेज दिए गए।

गुजरांवाला की पाठशाला कुछ वर्ष पूर्व जालन्धर के आर्यसमाज मन्दिर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में खोली गयी थी। वहाँ से आर्यप्रतिनिधि सभा की आज्ञा से वह गुजरांवाला ले जाई गई।

मेरे मन में उस पाठशाला की प्रारम्भिक स्मृतियाँ बहुत हरी हैं। गुजरांवाला के पहले दिन की अधिकतर बातें ऐसी याद हैं, जैसी कल हुई हों। पाठशाला एक मन्दिर के साथ वाले बाग में थी। सारी पाठशाला में छोटे बच्चे हम ही थे। पाठशाला के प्रधान अध्यापक तथा आचार्य गुरुवर पं० गंगादत्त जी महाराज थे, जिन्होंने हम दोनों का यज्ञोपवीत संस्कार जालन्धर में कराया था। बड़े छात्रों में से कुछ उल्लेखयोग्य नाम निम्नलिखित हैं, पं० विष्णुमित्र जी, पं० नरदेव जी शास्त्री पं० भगतराम जी, डिगा निवासी, पं० दीनानाथ जी नाम तो और भी याद हैं, परन्तु उनकी स्मृति वहीं तक परिमित हैं। दृश्य परिवर्तन के साथ वे तिरोहित हो जाते हैं, इस कारण उनका उल्लेख सार्थक नहीं होगा। गुरुवर पं० गंगादत्त जी, पं० विष्णु मित्र जी और पं० नरदेव जी की चर्चा भावी जीवन में आयेगी। पं० भगतराम जी आर्य समाज के उपदेशक बने और गुरुकुल में अध्यापक रूप में भी कुछ समय तक रहे। पं० दीनानाथ जी हमारे गाँव (तलवन) के पुरोहित या पंजाबी भाषा में—पाधे—थे (वे आज भी जीवित हैं)। विशेष रूप से उनका स्मरण रहने का कारण यह है कि वैदिक पाठशाला में पहुँचने पर संस्कृत का पहला पाठ उन्हीं से प्राप्त हुआ था। हम दोनों भाई चटाई उठाकर उनके पीछे-पीछे आश्रम के बाहर तालाब के किनारे पर गए, और वहाँ एक बुर्जी के नीचे चटाई बिछाकर बैठ गये। पं० दीनानाथ जी ने जो तब विद्यार्थी थे, हमें निम्नलिखित श्लोक याद कराया—

आत्मानं यदि निन्दति, स्वात्मानं स्वयमेवहि
शरीरं यदि निन्दन्ति, सहायास्ते तदा मम॥

इस प्रकार मेरे जीवन के नए परिच्छेद की प्रथम पंक्ति पं० दीनानाथ जी के अध्यापकत्व में उपर्युक्त सुन्दर श्लोक के साथ लिखी जानी प्रारम्भ हुई। —

———

६. पुरायभूमि में कैसे पहुंचे ?

शीत-ऋतु के अन्तिम दिन थे। सायंकाल के चार बजे के लगभग हम कोई एक दर्जन बच्चे पंजाब से आने वाली गाड़ी से हरिद्वार के स्टेशन पर उतरे। हम गुजरांनवाला से पिताजी के साथ आए थे। जालन्धर से हमारी मण्डली में भंडारी शालिग्राम जी दो-तीन बच्चों को साथ लेकर सम्मिलित हो गए थे। स्टेशन पर आचार्य पं० गंगादत्त जी कई सज्जनों के साथ स्वागत के लिए आए हुए थे।

जब हम लोग स्टेशन पर उतर कर सामान के पास बैठे तो कुछ ईसाई पादरी और पादरिनें हमारे वेश से आकृष्ट होकर वहाँ आ गये। सब बालकों ने धोती का एक छोर बांधा हुआ और एक छोर गले में डाला हुआथा। शरीर पर कुरता था और हाथ में एक-एक लाठी थी। वे हमें कुछ देर तक ध्यान से देखने और आपस में

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चर्चा करने के बाद पिताजी के पास जा कर पूछ ताछ करने लगे। हमें उन्होंने किसी मिश्नरी संस्था के बालक समझा और हम लोगों के स्वास्थ्य की प्रशंसा की।

स्टेशन से निकलकर एक जलूस बनाया गया। सब से आगे पिताजी और पं० गंगादत्त जी थे, उनके पीछे महर्षि दयानन्द का बड़ा चित्र लिए एक सज्जन थे; जिनका नाम तोता राम था। उनके पीछे दो- दो की पंक्ति में हम लोग थे। स्टेशन से निकलते ही हम लागों ने प्रार्थना के आठ मन्त्रों का उच्च स्वर से पाठ आरम्भ कर दिया, और निरन्तर करते रहे, जब तक जलूस कनखल से पार न हो गया। हम लोग स्टेशन से चल कर मायापुर के पुल से उतर कर कनखल के बाजार में पहुँचे और सारे बाजार का चक्कर काटते हुए दक्ष के मन्दिर पर जा पहुँचे। इस सारे रास्ते में सब लोग निरन्तर वेद-मन्त्रों का उच्च स्वर से पाठ करते रहे। हरिद्वार और कनखल तब मुख्य रूप से यात्रियों और पण्डों के शहर थे, वे सनातन धर्म के गढ़ समझे जाते थे। अब तो धीरे-धीरे उनमें कुछ नवीनता का संचार हो गया है, पर उस समय तो वह सनातनता के स्तम्भ थे। ओम् के झंडे और वेद-मन्त्रों के खुले पाठ को वह बहुत ही आश्चर्य भरी दृष्टि से देख रहे थे। वे हम लोगों को किसी दूसरी दुनियां के प्राणी समझ कर विनोद अनुभव कर रहे थे। दक्ष का मन्दिर पार करके हमने वेद-पाठियों का रूप छोड़ कर यात्रियों का रूप धारण कर लिया। हम गुजरान-वाला में ही सुन चुके थे कि हरिद्वार के समीप गंगा के उस पार कांगड़ी नामक ग्राम गुरुकुल के लिए दान में मिला है हम लोग वहीं ले जाये जा रहे थे। बच्चों के लिए सब कुछ नया था। दक्ष के मन्दिर से आगे चलते ही रास्ता गंगा की रेती में उतर गया, जहाँ गोल पत्थरों और बालू के दो मील चौड़े नदी के स्तर पर दो-तीन पुल बने हुए थे। सूर्य अस्ताचल पर पहुंच चुका था और अन्धकार के साथ सर्दी आकाश से उतर रही थी। हम बालक नई दुनियां देखने की उत्सुकता से प्रेरित हो कर नंगे पांव उस पत्थर और बालू के मार्ग पर तेज गति से चले जा रहे थे।

अन्धकार बहुत देर तक न रहा। या तो पूर्णिमा थी या प्रतिपदा; गंगा के स्तर से पार होते-होते आकाश में चांदनी छिटक गई, जिसके प्रकाश में हमें स्तर से आगे फैला हुआ घना जंगल और उसकी पृष्ठ-भूमि पर नीलगिरि के शिखर दिखाई दिए।

जंगल के कंटीले रास्तों से हम लोग आगे बढ़ते जा रहे थे कि इतने में पीछे से एक आवाज आई—

"प्रधान जी, हम तो रास्ता भूल गये। यह तो पगडंडी गुरुकुल की नहीं, यह तो कांगड़ी ग्राम की है।"

पिताजी गुरुकुल में प्रधान जी इस नाम से कहलाते थे, क्योंकि वे आर्य-प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान रह चुके थे, और गुरुकुल में भी प्रधान थे।

यह सुनकर पिता जी ने कहा—"तब तो हमें कांगड़ी के नाले से होकर जाना पड़ेगा, मग्घरसिंह से कहो कि एक लालटेन ले कर आगे आगे चले।' मग्घरसिंह नाम हम लोगों के कानों को अजीब सा मालूम हुआ हम सब बच्चे उस नाम पर मुस्कराए, थोड़ी देर में मग्घरसिंह मिस्त्री लालटेन हाथ में लटकाए आगे-आगे हुआ और तीर्थ-यात्रियों की लम्बी पंक्ति उसके पीछे खैरों के कांटों को रौंदती हुई चली।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जिस समय वह निशा-यात्रा समाप्त हुई, आकाश में चाँदनी के धवल प्रकाश में जो सुन्दर दृश्य दिखाई दिया, वह अब तक भी भूला नहीं है। घने जंगल के बीचोंबीच कोई दो बीघे का मैदान साफ किया गया था। उस में एक ओर फूंस के छप्परों की एक लम्बी पंक्ति थी, जो छात्रों के रहने का आश्रम स्थान था। उसके साथ समकोण बनाती हुई दूसरी छप्परों की पंक्ति में भोजन भण्डार था। उनके बीच के कोने में एक स्विस काटेज लगा हुआ था, जो प्रधान जी का दफ्तर भी था और रहने का स्थान भी। इन छप्परों से कुछ दूर दो छप्पर डालकर गोशाला बनाई गई थी। यह फूंस के छप्पर का डेरा उस खिली हुई चाँदनी में अद्भुत शोभा दिखा रहा था। हमें उस समय ऐसा अनुभव हुआ कि हम सचमुच स्वर्ग के किसी टुकड़े पर पहुंच गए हैं। वह गुरुकुल का प्रारम्भिक रूप था।

गुजरानवाला शहर से चलकर हम लोग काँगड़ी ग्राम की शोभन भूमि पर कैसे पहुँच गए, इसका किस्सा सुनाने के लिए मुझे थोड़ा सिंहावलोकन करना पड़ेगा।

मैं पहले ही बतला आया हूँ कि पिताजी यह प्रतिज्ञा करके देश के दौरे पर निकल पड़े थे कि जब तक तीस हजार रुपये की राशि इकट्ठी न हो जाय तब तक घर वापिस न जायेंगे। आज तीस हजार रुपये इकट्ठा करना बच्चों का खेल मालूम होता है, परन्तु तब गुरुकुल के लिए तीस हजार रुपये की राशि एकत्र करना असम्भव-सा प्रतीत होता था। जब हितैषियों ने पिताजी की प्रतिज्ञा सुनी तो यह समझा कि इस व्यक्ति का दिमाग फिर गया है। लोग यह भी नहीं जानते थे कि 'गुरुकुल' किस चिड़िया का नाम है। रुपया भी बहुत मंहगा था, परन्तु आर्य जनता को असाधारण हर्ष हुआ जब उन्हें सूचना मिली कि लगभग छः महीनों में दान की राशि तीस हजार से बढ़ गई है।

हम दोनों भाई तब गुजरानवाला के स्थायी गुरुकुल में पढ़ते थे। आर्य-प्रतिनिधि सभा ने गुजरानवाला की वैदिक पाठशाला को अस्थायी गुरुकुल के रूप में परिणित कर दिया था। वह संस्था शहर से लगे हुए एक मकान में थी। हम लोगों को चन्दे की राशि पूरी होने का समाचार गुजरानवाला गुरुकुल में ही मिला। इसी बीच में एक बार हमारे ताया जी गुजरानवाला आए और दोनों भाइयों को लाहौर ले गए। गुरुकुल के चन्दे का दौरा लगभग समाप्त करके पिताजी लाहौर के आर्य होस्टल में ठहरे हुए थे। हम दोनों भाई उस रात जीवन में पहली बार अपने पिताजी के दोनों ओर चारपाइयों पर सोए। उस रात सोने से पहले पिताजी हमारी चारपाइयों पर आए और प्रत्यक्ष में प्यार किया। वह अनुभव हमारे बाल्य जीवन में बिल्कुल अपूर्व था। अन्यथा सदा पिताजी हम से दूर-दूर रहकर वात्सल्यभाव रखते रहे। कभी उसे अनुभाव में नहीं आने दिया। उस रात उन्होंने प्रेम से हम दोनों के सिरों को चूमा। हम दोनों भाइयों ने उस समय मानों स्वर्गीय सुखका अनुभव किया।

अगले दिन हम लोग गुजरानवाला वापिस भेज दिये गए और पिताजी प्रतिज्ञा पूरी करके अपने घर वापिस आ गए। जालन्धर में उनका अभूतपूर्व स्वागत हुआ। उसके पश्चात् उन्होंने कोठी में प्रवेश किया परन्तु वह प्रवेश त्याग के लिए था भोग के लिए नहीं। त्याग की ओर उनकी प्रवृत्ति तो पहले ही बढ़ रही थी। सिगरेट, हुक्का और पान तक एक-एक कर के विदा हो चुके थे। कोट, पैन्ट और नेकटाई

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उन लोगों में बाँट दिये गए थे, जिन्हें उनकी आवश्यकता थी और बूट की जगह गामाशाही जूता आ गया था। यह कायापलट गुरुकुल काँगड़ी में जाने से पहले ही हो चुका था। हमारे नाना रायसाहिब सालिगराम जी पुराने ढंग के रईस थे। व्यवहार में बहुत उदार परन्तु विचारों में बिल्कुल कन्जर्वेटिव थे। कन्जर्वेटिव शब्द का प्रयोग मैंने जान-बूझ कर किया है। अनुदार, सनातनी, दकियानूसी शब्दों में से कोई भी उन पर ठीक नहीं लगता था। काया-पलट के पहले अध्याय के समाप्त होने पर पिताजी हाथ में लोटा लेकर और पैर में जूता पहिन कर, प्रातःकाल के समय घर से दूर जंगल में शौचार्थ जाने लगे थे। उनका रास्ता हमारी ननसाल के सामने से हो कर गुजरता था एक दिन पिताजी को नाना जी ने उस बाने में देख लिया। सुनते हैं उस दिन नाना जी की आँखों में आँसू वह निकले थे। उन्होंने दुःखी होकर कहा—'की करिए, मुण्डा साधु हो गया' (क्या करें, लड़का साधु हो गया।)

उन्हीं दिनों पिताजी को बिजनौर जिले से सन्देश प्राप्त हुआ कि वहाँ के एक जमींदार मुन्शी अमनसिंह जी गंगा पार का एक पूरा गाँव, जिसके साथ लगभग ७०० बीघे जमीन है, गुरुकुल बनाने के लिए देना चाहते हैं। प्यासे को मानो पानी का ठंडा स्रोत मिल गया। पिताजी तो ऐसी भूमि की तलाश में ही थे। वह तुरन्त बिजनौर गए और आर्य-प्रतिनिधि सभा के नाम काँगड़ी ग्राम रजिस्ट्री करवा लिया।

गाँव गंगा की धार से लगभग डेढ़ मील की दूरी पर शिवालक पहाड़ की तलहटी में था। गाँव के साथ लगी हुई भूमि पहाड़ की तलैटी से लेकर गंगा तट तक फैली हुई थी। पिताजी को गुरुकुल के लिए वह स्थान आदर्श प्रतीत हुआ। गाँव से दूर ठीक गंगा तट पर घने और कंटीले जंगल के मध्य में लगभग दो बीघा जमीन के टुकड़े को साफ करा कर उसमें आश्रम के लिए छप्पर डालना थोड़े ही दिनों का काम था, विशेषतः जबकि पिताजी जैसा धुन का पक्का और अनथक आदमी उस कार्य को शीघ्र पूरा करने पर तुल गया हो।

जब छप्पर तैयार हो गए, और पं० गंगादत्त जी आचार्य के रूप में बच्चों को संभालने के लिए गुरुकुल काँगड़ी पहुँच गए, तब आर्य प्रतिनिधि सभा की अनुमति से पिताजी गुजरानवाला आए और लगभग दर्जन भर बालकों को साथ लेकर लाहौर ठहरते हुए हरिद्वार की ओर रवाना हो गए।

यह था हमारे गुरुकुलीय जीवन का आरम्भ। पुण्यभूमि में पहुंचकर हमने क्या देखा, यह मैं पहले बतला ही चुका हूँ।

---

१०. गुरुकुल के वे स्वर्णिम दिन

प्रायः सभी राष्ट्र अपने भूतकाल को स्वर्णयुग के नाम से पुकारते हैं। सभी व्यक्ति पूर्व पुरुषाओं पर नाज करते हैं और सभी जातियाँ अपने गुजरे हुए इतिहास

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

से जीवन का पाठ पढ़ाती हैं। इस सचाई का मनोवैज्ञानिक कारण क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर किसी तत्वज्ञान के पण्डित को देना चाहिए। मैं तो इस सच्चाई को केवल इस कारण दुहरा रहा हूं कि मेरी गुरुकुल कांगड़ी सम्बन्धी प्रारम्भिक स्मृतियां इस सचाई की दृष्टान्त रूप हैं।

उस समय गुरुकुल कांगड़ी में केवल फूंस के छप्पर थे। गुरुकुल के उद्घाटन के पश्चात् एक वर्ष के अन्दर कच्ची दीवारों और टीन के छतों वाले शेड बनने आरम्भ हो गये थे। हमारे रहने का स्थान खैर और बेरी के घने जंगलों से घिरा हुआ था। कहीं-कहीं बिल्व के पेड़ थे। जिन लोगों ने पुरानी गुरुकुल भूमि को देखा है, उन्हें मालूम है कि इन तीनों प्रकार के पेड़ों की बहुतायत के कारण वह जंगल वस्तुतः "कण्टकाकीर्ण" शब्द का अधिकारी था। नीचे कांटे, ऊपर कांटे और चारों ओर कांटे—इस प्रकार वह जंगल कण्टकमय था, रहने के स्थान से दस कदम बाहर जाने के लिए कांटेदार पगडंडियों को पार करना पड़ता था। रात को जब अंधेरे का राज्य हो जाता था, तब कभी-कभी हमारे आश्रम के आंगन में और प्रधान जी (मुख्याधिष्ठाता जी) के तम्बू की छतरी के नीचे स्यारों का हुंकार सुनाई देता था। किसी-किसी दिन यह समाचार भी मिल जाता था कि कल रात को किसी कुत्ते या लवारे को गुलदार (छोटा शेर) उठा ले गया। स्नान के लिए सिर्फ गंगा की धारा थी और क्रीड़ा क्षेत्र का काम गंगातट की बालू से लिया जाता था। ऐसी दुनियाँ में हम रहते थे, परन्तु आज भी लगभग पचास वर्ष बीत जाने पर मैं उन दिनों का स्मरण करता हूँ तो वह बहुत ही सुन्दर और सुखमय प्रतीत होते हैं। गुरुकुल में बहुत से परिवर्तन आते रहे। छप्प इमारत के रूप मे परिणित हो गये, पगडण्डियों का स्थान सड़कों ने ले लिया, स्नान के लिए स्नानागार बन गए और गुरुकुल की इमारतें, बगीचों और हरे मैदानों से घिर गईं तो भी यह ध्यान में नहीं आता कि गुरुकुल में हमने आनन्द उतना अनुभव किया हो, जितना उस प्रारम्भिक काल में किया था।

पहले उन दिनों की दिनचर्या सुनिए—प्रातःकाल चार साढ़े चार बजे दिन की पहली घंटी बजती थी। उस पर सब ब्रह्मचारी या तो स्वयं ही उठ जाते थे, अथवा अधिष्ठाताओं द्वारा उठा दिए जाते थे, उठ कर बिस्तर लपेटते, उसे यथास्थान रखते और फिर बाहर जाकर मुँह हाथ धोते और प्रार्थना के लिए एकत्र हो जाते। प्रार्थना "विश्वानि देव" आदि आठ मन्त्रों से की जाती थी। उसके पश्चात् अधिष्ठाताओं के साथ शौच आदि से निवृत्त होने के लिए चले जाते थे। हमारे अधिष्ठाता आचार्य गंगादत्त जी थे, जिन्हें हम उन दिनों 'बड़े पण्डित जी' कहते थे। इन संस्मरणों में जहाँ कहीं बड़े पण्डित लिखा जाय, वहाँ आचार्य जी का ही ग्रहण करना चाहिए। पहली श्रेणी के अधिष्ठाता पं० विष्णुमित्र जी थे, जो 'छोटे पण्डित जी' कहलाते थे। प्रातःकाल जब बड़े पण्डित जी के साथ हम लोग जंगल को जाया करते थे तब हम में से हरेक के पास निम्नलिखित सामान होता था—दाएं हाथ में दण्ड, बाएं हाथ में पानी से भरा हुआ लोटा और बगल में लिपटा हुआ जांघिया और धोती। अधिष्ठाता के कपड़े प्रायः सबसे बड़े ब्रह्मचारी को ले जाने होते थे। यह कार्य प्रायः मेरे बड़े भाई हरिश्चन्द्र जी किया करते थे क्योंकि वे ही हम सब में बड़े थे।

नंगे पाँव पगडण्डियों से होकर जंगल में जाकर निवृत्त होते थे। प्रत्येक ब्रह्मचारी दण्ड की सहायता से अपने लिए दातुन तोड़ता था। फिर सब मिल कर गंगा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पर चले जाते थे। गंगा की वह धारा जो गुरुकुल भूमि के साथ बहती थी, नीलधारा कहलाती थी। उसका पानी बहुत शुद्ध माना जाता था क्योंकि वह हरिद्वार की बस्ती के प्रवाह से बचकर चण्डी की पहाड़ी के नीचे से निकलता हुआ, गुरुकुल के पास से गुजरता था। वह वस्तुतः गंगा की छोटी धारा थी। बड़ी धारा वहाँ से लगभग एक मील दूर थी, जहाँ हम लोग कभी-कभी स्नान के लिए जाया करते थे।

गंगा तट पर पहुंच कर हाथ मुँह धोते और लोटे साफ करते थे। उसके पश्चात् या तो रेत में कबड्डी खेलते, और डण्ड बैठक करते थे अथवा वर्षा ऋतु होने पर अखाड़े में कुश्ती लड़ते थे। व्यायाम हमारी दिनचर्या का मुख्य भाग था। दोनों समय व्यायाम होता था। दो-दो सौ दण्ड बैठक निकालना साधारण बात थी। व्यायाम का कार्य-क्रम लगभग एक घण्टे तक चलता था।

इस कार्य-क्रम में विशेष रुचि का यह भी कारण था कि अधिष्ठाता लोग स्वयं भी व्यायाम में पूरा हिस्सा लेते थे। आचार्य गंगादत्त जी तो व्यायाम के बहुत ही पक्षपाती थे। और किसी काम से छुट्टी मिल सकती थी परन्तु उनके प्रबन्ध में व्यायाम से छुटकारा पाना कठिन था। वह व्यायाम के सम्बन्ध में प्रायः निम्नलिखित श्लोक कहा करते थे।

व्यायामक्षुण्णगात्रस्य पद्भ्यामर्दितस्य च,
व्याधयो नोपसर्पन्ति, पन्नगारेरिवोरगाः।

जिस मनुष्य का शरीर व्यायाम से थकाया गया है और जिसे पैरों के नीचे मसला गया है, उसके पास रोग इस प्रकार नहीं आते जिस प्रकार गरुड़ के पास सर्प नहीं आते।

वह स्वयं अपने लिए इसी सिद्धान्त का पालन करते थे। बीमारी में भी, और वे उन दिनों बहुत कम बीमार होते थे, कुछ न कुछ व्यायाम किया करते थे। हम लोग भी बुखार या अपच जैसे साधारण रोगों में व्यायाम से मुक्त नहीं किए जाते थे। कुश्ती न सही तो दण्ड-बैठक ही सही, वह भी न हो सके तो कबड्डी ही सही, व्यायाम से पूरी छुट्टी मिलना असम्भव था।

व्यायाम के पश्चात् लगभग आध घंटा विश्राम होता था। इसी विश्राम में दातुन भी कर डालते थे। स्नान का समय विशेष आनन्द का होता था। अत्यन्त सर्दियों को छोड़ कर शेष सब मौसमों में हम लोग गंगा का पूरा आनन्द लेते थे। हमारे उस समय के सभी अभिभावक—प्रधान जी, बड़े पंडित जी और शेष सब कार्यकर्त्ता—तैरना जानते थे और सब बच्चों को तैरना सिखाना आवश्यक समझते थे। गुरुकुल काँगड़ी में तैराकी के जो प्रबल संस्कार अब तक भी चले आ रहे हैं, उन का प्रारम्भ वहीं से है। उसके पश्चात् यज्ञशाला में आकर सन्ध्या और हवन से निवृत्त होते थे। इस समय तक दिन अच्छी तरह चढ़ जाता था। हवन के पश्चात् प्रायः प्रतिदिन प्रधान जी यज्ञशाला में ही उपदेश देते थे। वह उपदेश इतने क्रियात्मक और सरल होते थे कि अब तक उन में से बहुतों की रूपरेखा हमें स्मरण है।

उपदेश के बाद दूध की घंटी बजती थी, प्रत्येक ब्रह्मचारी को लगभग आध सेर दूध दिया जाता था, साथ कुछ नाश्ता भी मिलता था। व्यायाम से शरीर थक चुकने के पश्चात् यह प्रातःराश कुछ अधिक प्रतीत नहीं होता था। प्रातःराश हो जाने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पर पढ़ाई के लिए बैठते थे। प्रातः काल का समय मूल अष्टाध्यायी याद करने और उसकी वृत्ति आदि पढ़ने में व्यतीत होता था। हम लोगों को बड़े पण्डित जी ही व्याकरण पढ़ाते थे। अष्टाध्यायी, काशिका और महाभाष्य के वे पूरे पंडित थे। प्रातः काल की पढ़ाई प्रायः खाने की घंटी के साथ समाप्त होती थी। भंडारी सालिगराम जी स्वयं हाथ में घंटी बजाने की लकड़ी ले कर भंडार से निकलते थे। घंटी बजाते थे और जोर की आवाज से यह घोषणा करते जाते थे, कि ब्रह्मचारियो, जल्दी खाना खाओ।' अपना-अपना लोटा ले कर ब्रह्मचारी पंक्ति में आसनों पर बैठ जाते थे। खाना परोसने का कार्य भंडारी और अधिष्ठाता लोग मिल कर करते थे। भोजन के आरम्भ में 'सहनाववतु' वाला मन्त्र बोला जाता था।

जिस दिन विशेष भोजन के तौर पर खीर बनती थी, उस दिन खीर को ठंडा होने का अवसर देने के लिए 'ओ३म् द्यौ शान्तिः' इत्यादि मन्त्र बोला जाता था। किसी-किसी दिन प्रधान जी स्वयं भोजन परोसने आ जाते थे, उस दिन यह मान लिया जाता था कि आज भंडारी का दिवाला निकालना चाहिए, जिसका अभिप्राय यह था कि गुंधा हुआ आटा समाप्त हो जाना चाहिए। ज्यों ही यह घोषणा होती थी भंडारी जी को दूसरी वार आटा गुंधवाना पड़ा है तो ब्रह्मचारी तालियां बजाते और हँसते थे। खूब खाओ और खूब व्यायाम, करो यह उस समय का मूल मन्त्र था। उन दिनों गुरुकुल में कोई डाक्टर नहीं था. न कोई वैद्य ही था। जुकाम, खांसी और बुखार जैसी बीमारियों को व्यायाम के जोर से और कब्ज जैसी शिकायतों को अधिक भोजन की सहायता से मिटाने का यत्न किया जाता था। उन दिनों और आजकल के सामान्य स्वास्थ्य को देखते हुए यह मानना कठिन है कि उस समय की अर्वाचीनता से शून्य चिकित्साप्रणाली सर्वथा बुरी थी, कम-से-कम परिणाम बुरा नहीं था।

भोजन के पश्चात् कुछ विश्राम ले कर ब्रह्मचारी पढ़ाई में लग जाते थे। उस समय संस्कृत साहित्य, इतिहास और वस्तु पाठ का शिक्षण होता था। अन्तिम दोनों विषयों का अध्यापन मास्टर सुन्दरसिंह जी करते थे। मास्टर जी अपने ढंग के अनोखे शिक्षक थे। बात-चीत और कहानियों में ही बहुत सी बातें सिखा देते थे। उनके विद्यार्थी उन्हें प्रायः 'मां', इस नाम से पुकारते थे और वे उन्हें बच्चों की तरह प्यार करते थे। जहाँ तक मुझे स्मरण है, छात्रों में स्पर्श थ्योरी के उद्भावक और उपरने ले कर कबड्डी खेलने के आविष्कारक मास्टर जी थे।

शाम को फिर प्रातः काल की तरह जंगल जाने, व्यायाम करने और मौसम अनुकूल होने पर स्नान करने का क्रम शुरू हो जाता था। सन्ध्या-हवन के पश्चात् भोजन होता था, फिर थोड़ा सा टहल कर ब्रह्मचारी दियों की रोशनी में अष्टाध्यायी का पाठ दोहराने के लिए बैठ जाते थे। कई वर्षों तक गुरुकुल में सरसों के तेल के दिए ही जलते रहे। उस जंगली गुरुकुल को वर्तमान शहरी गुरुकुल के रूप में परिणित करने के लिए जो अनेक क्रान्तियां हुईं, उनमें से एक यह भी थी कि सरसों के तेल का स्थान मिट्टी के तेल ने ले लिया। उन क्रांतियों की कहानी अगले संस्मरणों में सुनाऊँगा। यहां तो केवल इतना लिखकर ही दिनचर्या के प्रसंग को समाप्त करता हूँ कि रात के लगभग ९ बजे फिर प्रार्थना होती थी। दिए बढ़ा दिए जाते थे और सारा गुरुकुल स्तब्धता में लीन हो जाता था। केवल एक चौकीदार पहरा देता था और घंटे की टकोर स समय की सूचना देता रहता था।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

गुरुकुल कांगड़ी के स्थापना काल में : प्रधान जी

स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

११. उस जीवन के सुख-दुःख

यह थी गुरुकुल के उस युग की दिनचर्या। शिक्षा पद्धति के प्राचीन या अर्वाचीन सिद्धान्तों की कसौटी पर यहाँ मैं कोई सम्मति नहीं देना चाहता। इस समय तो मैं संस्मरणों का संग्रह कर रहा हूँ, इस कारण इतना ही कह सकता हूँ कि स्मृति को टटोलने से वह समय बहुत ही मधुर प्रतीत होता है।

उस समय घर या कुल की भावना बहुत प्रबल थी। थोड़े से ब्रह्मचारी थे। प्रधान जी और बड़े पंडित जी उन सभी को नाम से जानते थे, और दिन में कई बार मिलते थे। व्यायाम के समय, हवन और उपदेश के समय, भोजन के और सायंकाल को खेल के समय प्रायः सभी कुलवासी इकट्ठे हो जाते थे। एक दूसरे के सुख दुःखों की सभी को खबर रहती थी। सब इकट्ठे ही हँसते थे और इकट्ठे ही रोते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी शिक्षण-संस्था में कुल की भावना और छात्रों की परिमित संख्या का गहरा सम्बन्ध है। परन्तु यह स्मृति की चीज नहीं, विचार की चीज है। इस कारण इतना ही इशारा देकर आगे चलता हूँ।

उन दिनों हमारे छुट्टी के दिन कैसे बीतते थे, यह बता कर पाठकों को अपने आमोद का साझीदार बनाना भी आवश्यक मालूम होता है। सो किसी एक अनध्याय के दिन का पूरा विवरण सुन लीजिये। उस दिन सुबह की घंटी कुछ देर से बजती थी। प्रति दिन साढ़े चार बजे उठ कर नंगे पांव खैर के जंगल में निवृत्त हो जाने वाले बालकों को आधे या पूरे घंटे की फालतू नींद कितनी आनन्द देने वाली होती होगी, इसका प्रत्येक पाठक अनुमान लगा सकता है। छुट्टी के दिन व्यायाम के समय तेल की मालिश होती थी। स्नान आदि सब कार्यों में प्रतिदिन की अपेक्षा अधिक समय लगाने का अधिकार मिल जाता था। हवन के उपरांत का कार्यक्रम मौसम के अनुसार बनता था। गर्मियों के दिनों में सब ब्रह्मचारी अधिष्ठाताओं के साथ प्रातः 'प्याल' खाने के लिए जाते थे। उससे हम लोग कितना आनन्द अनुभव करते थे, इसकी कल्पना तभी हो सकती है, जब पाठक 'प्याल खाने जाना' इस परिभाषा का पूरा अर्थ समझ जाएँ। पुण्य भूमि (गुरुकुल कांगड़ी की पुरानी भूमि) को जिन लोगों ने देखा है, वह जानते हैं कि गुरुकुल से लगभग छः फर्लांग की दूरी पर शिवालक के पहाड़ों की शृंखला है जो एक ओर मंसूरी और दूसरी ओर नैनीताल के ऊँचे पर्वतों को मिलाती है। गुरुकुल के पास से शिवालक की जो माला गुजरती है वह न बहुत हरी है, न बहुत खुश्क। कोई हिस्सा हरियाली से लदा हुआ है तो कोई बिल्कुल नंगा। इन पहाड़ियों के खुश्क हिस्सों में एक फल होता है, जिसे प्याल कहते हैं। वह काश्मीरी गिलास के आकार का जामुनी रंग का, खटमिट्ठा फल होता है। प्याल के पेड़ बहुत बड़े नहीं होते। यह फल गर्मियों में लगता है। अनध्याय के दिन खब तड़के हम लोग पहाड़ की ओर रवाना हो जाते थे। उस समय हम

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लोगों में तेज चलने और फुर्ती से पहाड़ पर चढ़ने की प्रतिस्पर्धा सी हो जाती थी। अनुभव ने हमें बतला दिया था कि पहाड़ के किस भाग में और किस पेड़ पर मीठे और बड़े प्याल लगते हैं। ब्रह्मचारी कांटों और पत्थरों को नंगे पैरों से कुचलते हुए पर्वत की चोटी पर एक दूसरे से पहले पहुँचने का यत्न करते थे, दो तीन घटे तक सब लोग बाहुबल से प्राप्त किए हुए इस प्याल सहभोज का आनन्द लेते थे और दोपहर होते-होते गुरुकुल वापस आ जाते थे।

वर्षा ऋतु में प्याल समाप्त हो जाते थे और गंगा भर जाती थी, तब अनध्याय के दिन दो में से एक कार्यक्रम रहता था। यदि गंगा का जल अधिक मैला न हुआ तो भोजन से पहिले का समय तैरने में व्यतीत होता था। बड़े ब्रह्मचारी प्रायः गुरुकुल से दो ढाई मील ऊपर जा कर चंडी की पहाड़ी के नीचे से गंगा में कूदते थे और पानी ही पानी में गुरुकुल तक आते थे। उन दिनों गुरुकुल में जो ब्रह्मचारी पढ़ते थे, उनमें से शायद ही कोई ऐसा हो, जो बहुत अच्छा तैराक न हो। पानी, जंगल और पहाड़ के खतरों को खतरे न समझना उस समय के गुरुकुलीय जीवन का एक स्वभाव सिद्ध अंग था।

जिस अनध्याय के दिन गंगा का जल बहुत मैला हो उस दिन कबड्डी या क्रिकेट का खेल हुआ करता था। उस समय की बड़ी विशेषता यह थी कि प्रायः प्रत्येक खेल में पिता जी (प्रधान जी) बच्चों को प्रोत्साहित करने के लिए स्वयं विद्यमान रहते थे। लगभग सात वर्ष तक गुरुकुल कांगड़ी में क्रिकेट युग रहा। जब पिता जी कालेज में शिक्षा पाते थे, तब भारत के कालेजों में अंग्रेजों की राष्ट्रीय खेल क्रिकेट को ही सर्वोत्कृष्ट माना जाता था। पिता जी प्रायः हमें इस अंग्रेजी कहावत की व्याख्या करके सुनाया करते थे कि वाटरलू की लड़ाई क्रिकेट के क्रीड़ाक्षेत्र में ही जीती गई थी। लार्डविलिंगटन ने पूरे जोर से लड़ना और हार कर भी हार न मानना और हार में से जीत निकाल लेना क्रिकेट के खेल में से ही सीखा था। पिता जी छात्रों में यही भावना भरने के लिए क्रिकेट के खेल पर अधिक बल दिया करते थे।

सर्दियों में अनध्याय के दिन रस का प्रोग्राम रहता था। रस से मेरा अभिप्राय ईख के रस से है। आस-पास के गांवों के कई जगह कोल्हू चलते थे। प्रातःकाल अन्धेरे में तांगे (बैलगाड़ी) द्वारा बैठने के आसन या दरी, बलटोही में दूध, अदरक, गिलास आदि बर्तन तथा अन्य आवश्यक चीजें कोल्हू पर भेज दी जाती थीं। हवन के पश्चात् सब ब्रह्मचारी, प्रधान जी और बड़े पण्डित जी के साथ दो-दो की पंक्ति में गुरुकुल से चलते थे। यदि रास्ते में कोई गाँव आ गया तो उसमें से प्रायः मन्त्र बोलते हुए निकलते थे। कोल्हू में गन्नों के साथ-साथ अदरक भी लगाया जाता था। रस में दूध मिलाकर भर पेट पीते थे। पीने में प्रायः होड़ हो जाती थी, इसलिए रस आवश्यकता से अधिक ही पिया जाता था। उसे पचाने के लिए घंटा डेढ़ घंटा जोरदार कबड्डी होती थी। यहाँ उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि कांगड़ी में साल भर बाद ही कबड्डी में छूने के लिए उपनें का प्रयोग छूट गया था क्योंकि उस प्रयोग के आविष्कारक मास्टर सुन्दरसिंह जी पहले ही वर्ष कांगड़ी गुरुकुल छोड़ कर चले गए थे।

ऐसी थी हमारी निश्चित अनध्याय की ऋतुचर्या। उस युग में अनिश्चित या

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आकस्मिक अनध्यायों की संख्या भी पर्याप्त थी। कम-से-कम निश्चित तो थी ही नहीं। जिस दिन परोसने वालों और खाने वालों की हिम्मत से भण्डारी जी के आटे का दिवाला निकल जाता था, उस दिन खाना पचाने के लिए छुट्टी आवश्यक हो जाती थी। या तो कहीं दूर की यात्रा का प्रोग्राम बन जाता था अथवा दो घंटों तक डटकर कबड्डी होती थी। गर्मियों में बादल आ गए तो मनोहर दिन की छुट्टी, सर्दियों में वर्षा हो गई तो दुर्दिन की छुट्टी। सारांश यह कि जब प्रकृति ऋतु के विरुद्ध चोला पहनती थी तो हमारा अनध्याय होता था संस्कृत का यह न्याय हमें लोगों ने याद कर रखा था— अनध्यायप्रियाश्छात्राः—हमें विश्वास था कि न्याय के अनुसार विद्यार्थियों को छुट्टी से प्रेम होना चाहिए, अतः हम जितनी छुट्टी माँगें उचित ही है। यह लिखना मैं भूल गया कि उन दिनों हमारे निश्चित अनध्याय पूर्णिमा, अमावस्या और अष्टमी के दिन होते थे, इतवार के दिन नहीं।

अनध्यायों में शहर की ओर जाना उस समय गुरुकुल के नियन्त्रण के सर्वथा विरुद्ध था। यदि मैं कुछ भूल नहीं करता तो कह सकता हूँ कि काँगड़ी में पहुँचने के पश्चात् कम-से-कम पाँच वर्ष तक हम ब्रह्मचारियों ने गंगा का पुल पार करके कनखल में पाँव नहीं रखा था। एक बार कुम्भ का मेला आया था। हमारी बहुत उत्सुकता देखकर प्रधान जी हमें चंडी की पहाड़ियों के नीचे घुमाने के लिए ले गए थे। वहाँ से गंगा की कई धाराओं के पार कुम्भ का जमघट दिखाई देता था।

हमारे उन दिनों के गुरुकुलीय जीवन का चित्र अधूरा रहेगा यदि मैं अपनी वार्षिक उत्सव के दिनों की दिनचर्या का वर्णन न करूँ। उत्सव से दो-तीन दिन पूर्व हम लोगों को नई रंगी हुई पीली धोतियाँ बाँट दी जाती थीं। वह हमारा उत्सव के दिनों का निश्चित वेश था। आम तौर पर पढ़ाई के समय भी हम यही वेश पहनते थे। उत्सव के दिनों में तो सारा दिन यही वेश रखना पड़ता था। कोई ब्रह्मचारी अधिष्ठाता के बिना न अपने संरक्षकों से मिल सकता और न उत्सव की ओर जा सकता था। संरक्षक से मिलने के लिए भी आश्रम के पीछे तम्बू लगाए जाते थे। मिलने के समय अधिष्ठाता प्रायः साथ रहता था। दोपहर के समय दर्शकों को (केवल पुरुषों को) आश्रम देखने की आज्ञा मिलती थी। उस समय हमें अत्यन्त सावधान होकर अपने-अपने तख्त पर बैठना पड़ता था। कोई पुस्तक, अष्टायायी या महाभाष्य खोलकर सामने रख लेते थे और खिड़की के रास्ते बाहर की ओर देखने का यत्न करते थे। भक्ति से प्रेरित दर्शक लोग आश्रम के कमरे में आते थे और प्रायः निम्नलिखित रूप से बात किया करते—

'आहिस्ता-आहिस्ता चलो, ब्रह्मचारी जी पढ़ रहे हैं।'

'दूसरा कहता, 'नहीं ध्यान में हैं।'

तीसरा आगे बढ़ कर यह देखने का यत्न करता कि कौन सी पुस्तक पढ़ रहे हैं। और कहता, 'महाभाष्य है ?'

ब्रह्मचारी इस प्रकार की बातें सुनते जाते और घड़ियाँ गिन-गिन कर वह दो घंटे समाप्त करते थे।

एक दिन दोपहर बाद स्त्रियों के गुरुकुल देखने का समय रखा जाता था।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उस दिन हमें गुरुकुल से विदा होना पड़ता था, उस युग में सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में लिखित नियम की ऐसी ही व्याख्या की जाती थी। हम लोग भोजन से पूर्व ही बड़ी गंगा के किनारे किसी छायादार झाड़ी में जा कर डेरा जमा लेते थे। भंडार में तैयार होकर भोजन बैलगियों पर वहीं पहुँच जाता था। वहाँ श्लोकों और सूत्रों की अन्त्याक्षरी होती थी, व्याकरण और न्याय के शास्त्रार्थ होते थे और शाम को खेलें होती थीं। जब हम लोग आश्रम में वापस आते थे, तब तक महिलाएँ गुरुकुल देखकर जा चुकी होती थीं। उत्सव के समय मंडप में ब्रह्मचारियों को इस अंदाज से बिठाया जाता था कि उनकी पीठ स्त्रियों की ओर रहे।

उस युग में समय-समय पर बाहर से आने वाले महानुभावों में से, जिनकी स्मृति मेरे मन पर अंकित है, प्रमुख, लाला रामकृष्ण जी प्रधान, प्रतिनिधि सभा पंजाब, पं० शिवशंकर जी काव्यतीर्थ, पं० आर्यमुनि जी दर्शन भाष्यकार, रायसाहब केदारनाथ एम. ए. आदि थे। इन महानुभावों का अपने-अपने स्थान पर प्रसंग आयेगा, अधिक चर्चा वहीं की जायेगी।

यह मैंने उस समय के गुरुकुलीय जीवन का एक सरसरी-सा स्मृति-चित्र खींचा है। उस समय के जीवन में संभवतः कुछ अप्रिय बातें भी रही होंगी। कभी-कभी अत्यन्त कड़े नियन्त्रण में रहना हम लोगों को अखरता था परन्तु अभी नवीनता के वृक्ष का फल नहीं खाया था, इसलिये वह अपना अखरना भी कुछ कठोर नहीं था। किसी-किसी दिन कोई ब्रह्मचारी बहुत बुरी तरह पिट जाता था। बड़े पण्डित जी प्रायः खड़ाऊँ से ही दण्ड देते थे। वह बात भी बहुत नहीं अखरती थी, क्योंकि आचार्य जी प्रायः आचार सम्बन्धी दोष पर ही दण्ड दिया करते थे। उस समय वे ब्रह्मचारी जिन्हें दंड नहीं मिलता था, यह समझते थे, कि जिसे दण्ड मिला है वह इस योग्य ही था। इस प्रकार अप्रिय बातों का मार्जन हो जाता था। जब परिवर्तन युग आया और अदन के बाग में नवीनता ने प्रवेश किया, तब ऊपर बतलाई हुई प्रायः सभी बातें हमें खटकने लगीं। परन्तु आज लगभग ४०-४५ साल गुजर जाने पर भी जब मैं उस समय की स्मृति के पन्नों को पलटता हूँ तो मुझे वे जीवन की स्मृति के शेष सब पन्नों से अधिक सुहावने प्रतीत होते हैं। उस समय के गुरुकुलीय जीवन के मूल सिद्धांतों की पुष्टि में कोई युक्ति न होते हुए भी यह एक सचाई है कि उसमें मधुरता अधिक थी। बुद्धिमान् लोग कह सकते हैं कि वह अनुभव-हीनता के कारण थी। अथवा यह भी सम्भव है कि जैसे सभी को अपना बचपन प्यारा लगता है मुझे भी वैसा ही लगता हो। कारण कुछ भी हो, इसमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं कि वह मेरे बाल-जीवन का सबसे अधिक सन्तोषमय समय था।

———

१२. गुरुकुल में नवीनता का प्रवेश

मैंने गत दो परिच्छेदों में गुरुकुल के प्रारम्भिक जीवन का विस्तृत विवरण दिया है। समय व्यतीत होने के साथ-साथ वह जीवन भी बदलता गया। जो परिवर्तन हुए

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उन्हें हम यदि किसी एक परिभाषा के अन्तर्गत लाना चाहें तो, वह शब्द नवीनता है। बाहर की दुनियाँ तो इतना ही जानती है कि गुरुकुल के पहले प्रोस्पेक्टस में ही पूर्व और पश्चिम के मिश्रण की कल्पना जनता के सामने रखी गई थी। वह समझेगी कि उसी कल्पना के अनुसार धीरे-धीरे गुरुकुल में प्राचीन और नवीन, पूर्व और पश्चिम, आपस में मिलते गये, जिसका अन्तिम फल हम वर्तमान गुरुकुल में देख रहे हैं। परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। संसार के अन्य परिवर्तनों की तरह गुरुकुल का रूप-परिवर्तन भी लम्बे समुद्र-मंथन का ही परिणाम था। जिन परिवर्तनों पर समुद्र-मन्थन हुआ, वह पढ़ने में बहुत ही छोटे प्रतीत होंगे। सम्भव है कुछ पाठक उन पर हँसें भी। परन्तु परिवर्तन हो जाने के पश्चात् प्रायः यही अनुभव हुआ करता है कि बात छोटी-सी थी, उस का बतंगड़ क्यों बनाया गया? कभी-कभी तो ऐसा अनुभव होने लगता है कि जैसे यदि विवेक से काम न लिया जाय तो बहुत-सी अन्य बातें बतंगड़ बन जाती हैं, उसी प्रकार यदि ठीक कार्य कारण भाव पर विचार न किया जाय तो बहुत से बतंगड़ समय गुजर जाने पर केवल बात मात्र रह जाते हैं।

तो गुरुकुल में नवीनता के प्रवेश की कुछ घटनाओं की कहानी सुनिये—

मैंने पहले एक संस्मरण में बतलाया था कि जब ब्रह्मचारी फूँस के छप्परों में रहा करते थे, तब रात के समय सरसों के तेल के चिराग से रोशनी की जाती थी। रात को पढ़ने का रिवाज नहीं पड़ा, क्योंकि अधिकतर ग्रन्थ याद करने पड़ते थे। दिन में घोटा लगाया जाता था और रात को पुनरावृत्ति होती थी।

एक वर्ष के अन्दर-अन्दर कच्ची दीवारों के टिन-शैड खड़े हो गये। एक टिन-शैड में २५, ३० बालकों के रहने का स्थान था। यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि कमरे को रोशन करने के लिये बड़े लैम्प छत में टाँगे जाँय। ऐसे लैम्प मिट्टी के तेल से जलते हैं। निरीक्षण की सुलभता के लिये यह आवश्यक समझ कर कि प्रत्येक बैरक में एक-एक लैम्प लगा दिया जाय, पिताजी ने मुख्याधिष्ठाता की हैसियत से लैम्पों का आर्डर भिजवा दिया।

जब यह समाचार गुरुकुल में फैला तो एक विराट आन्दोलन शुरू हो गया। इस आन्दोलन के मुखिया उस समय के आचार्य पं० गंगादत्त जी थे। पीछे से तो उन के विचारों में काफी परिवर्तन आ गया था, परन्तु उस समय वह पूरे अपरिवर्तनवादी थे। उनके समय के विचारों का थोड़ा-सा आभास निम्नलिखित प्रश्नोत्तर से मिल सकता है। मुझे अच्छी प्रकार याद है कि एक दिन सायंकाल जंगल की ओर जाते हुए मैंने उनसे प्रश्न किया था कि 'पंचतन्त्र' में लिखा है कि पशु-पक्षी आपस में बातें किया करते थे, क्या यह झूठ नहीं है?

पण्डित जी ने मुझे जो उत्तर दिया उसका यह अभिप्राय था कि बात झूठ नहीं है, क्योंकि सतयुग में पशु-पक्षी और सब एक-दूसरे की भाषा समझते थे। इस उत्तर ने मुझे बिल्कुल सन्तुष्ट कर दिया और कई वर्ष तक हम लोग यह मानते रहे कि पंचतन्त्र में जो कहानियाँ लिखी हैं, वे सतयुग की हैं और सत्य हैं।

उस आन्दोलन में कड़वे तेल के पक्ष में और मिट्टी के तेल के विरोध में बहुत सी युक्तियाँ दी जाती थीं। कहा जाता है कि कड़वे तेल का धुआँ आँखों में सुरमे का काम देता है और मिट्टी के तेल का धुंआँ आँखों और फेफड़ों के लिये जहर का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

असर रखता है। हम लोगों की सहानुभूति प्रारम्भ में अपरिवर्तनवादियों के साथ थी। पं० गंगादत्त जी के मुख्य समर्थक भण्डारी सालिग्राम जी और अन्य कुछ संस्कृताध्यापक भी थे। उधर परिवर्तन दल का मुखिया उन दिनों पं० भक्तराम जी डिंगा-निवासी को समझा जाता था। आप भी गंगादत्त जी के शिष्यों में से थे, परन्तु कुछ अंग्रेजी पढ़े लिखे थे। मिट्टी के तेल तथा अन्य ऐसे ही प्रस्ताव उठाने का श्रेय अपरिवर्तनवादी दल की ओर से पं० भक्तराम जी को ही दिया जाता था। जो चर्चाएँ हम लोगों के सामने होती थीं उनमें मान लिया जाता था कि प्रधान जी (पिताजी) सर्वथा निर्दोष हैं, लोग उन्हें बहका देते हैं और वह सीधे होने के कारण उनकी बातों में आ जाते हैं। यह आन्दोलन कई महीनों तक जारी रहा। ब्रह्मचारियों में मिट्टी के तेल के प्रति विरोध की भावना बहुत उग्र रूप में पैदा की गई। यह तो अच्छा था कि अभी महात्मा गांधी ने भारत के सार्वजनिक जीवन में निष्क्रिय प्रतिरोध और कानून भंग की फसल नहीं बोई थी और ब्रह्मचारियों में प्रधान जी के प्रति बहुत श्रद्धा का भाव बना हुआ था। इसका परिणाम यह हुआ कि जब प्रधान जी की आज्ञा से मिस्त्री मन्धरसिंह कमरों में बड़ी लालटेन लटकाने के लिये आया तो कोई अप्रिय घटना नहीं हुई और चुपके से मिट्टी के तेल के रूप में पाश्चात्य सभ्यता ने पूर्वी सभ्यता के दुर्ग में प्रवेश कर दिया।

दूसरा परिवर्तन चिकित्सा पद्धति के सम्बन्ध में था। गुरुकुल के पुराने प्रेमी जानते हैं कि प्रारम्भ-काल में गुरुकुल में मलेरिया का प्रबल साम्राज्य था। बरसात के पश्चात् पनवाड़, भंग और जंगली बूटियों से सारा प्रदेश भर जाता था, गढ़ों में भरा हुआ पानी भी सड़ने लगता था। फल यह होता था कि वायु-मण्डल मलेरिया के मच्छरों से परिपूर्ण हो जाता था। मुझे याद है कि कभी-कभी तो सब के सब ब्रह्मचारी बुखार में पड़ जाते थे। पहले एक-दो साल तक तो मलेरिया का लोकेप्रसिद्ध इलाज घरू तरीके पर होता रहा। प्रधान जी कुनीन की गोलियाँ लेकर श्रेणियों में आ जाते थे, आयु के अनुसार मात्रा में ज्वर पीड़ित ब्रह्मचारियों को गोलियाँ खिला कर ऊपर से नींबू की शिकन्जवी पिला देते थे। शायद दो वर्ष तक कुनीन का प्रयोग चलता रहा। अन्दर-अन्दर उसके विरुद्ध प्रचार भी होता रहा। कुनीन खुश्क और गरम है। वह ब्रह्मचर्य के लिये हानिकारक है और वैद्यक सिद्धांतों के विरुद्ध है। उसके पीने से बुढ़ापे में सुनने की शक्ति जाती रहती है और बुखार भी बार-बार आता है। ये सब दलीलें थीं जिनके आधार पर कुनीन का विरोध किया जाता था। ब्रह्मचारियों के लिये कुनीन के विरुद्ध सबसे बड़ी यही युक्ति थी कि वह बहुत ही बेस्वाद है। शेष सब युक्तियों की भी सहायता लेकर ब्रह्मचारियों ने कुनीन के विरुद्ध सर्व-सम्मति कर ली। एक तो आचार्य और स्टाफ के कई अन्य कार्य-कर्त्ताओं का विरोध और दूसरे ब्रह्मचारियों की अनिच्छा, परिणाम यह हुआ कि कुछ समय पश्चात् गुरुकुल से कुनीन का प्रयोग उठ गया। उन दिनों नजीबाबाद के एक सज्जन, जिनका नाम डाक्टर लक्ष्मीनारायण था, गुरुकुल में रहा करते थे। वह कहलाते थे डाक्टर, परन्तु एलोपैथिक के विरोध में आन्दोलन करने में नम्बर एक थे। कुनीन का निर्वासन हो जाने पर ब्रह्मचारियों का इलाज सम्भवतः आयुर्वेदिक पद्धति से होता था। सम्भवतः शब्द का प्रयोग मैंने इसलिये किया कि हमारे आचार्य जी की एक टोकरी में से ही सब दवाएँ निकला करती थीं। उस समय तो पूछा नहीं कि कैसी दवाएँ हैं, अब अनुमान से समझता हूँ कि आयुर्वेदिक होंगी। दो-एक प्रयोग याद हैं। कब्ज होने पर जमालगोटे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

की गोली और किसी तरह का बुखार होने पर कुचले की गोली दी जाती थीं। हम सब पर समय-समय पर इन दवाओं का प्रयोग किया गया था।

यदि कोई कमीशन बैठता तो क्या परिणाम निकलता, यह मैं नहीं कह सकता। इतना याद है कि आठ महीने में व्यायाम और साधु भोजन से जो स्वास्थ्य बनता था, वह चौमासे में समाप्त हो जाता था। एक बार मेरे बड़े भाई हरिश्चन्द्र जी को चौमासे में ज्वर आना शुरू हुआ। बचपन से ही उनका शरीर बहुत भारी और शानदार था, वैसा ही भराव भी था। कभी-कभी हम दोनों भाई कुश्ती किया करते थे। मेरी यही चेष्टा रहती थी कि मैं नीचे न आऊँ। नीचे आने पर बोझ के मारे हार माननी पड़ती थी। एक साँस में वे दो-दो सौ दण्ड कर लेते थे। भाग्यवश उन्हें भी बारी का बुखार आने लगा। बुखार में कम्बल उढ़ा कर लिटा दिये जाते थे, बुखार उतर जाने पर व्यायाम तथा ओजस्वी भोजन द्वारा शक्ति देने का उपक्रम होता और बारी के दिन उस दवा की पिटारी में से दो एक गोलियाँ, उन्हें दी जाती थीं। उनका बुखार लगभग चार मास तक चला, जिसने उन्हें बीमारों और कृशों की पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया। इसी बीच में एक विशेष घटना हो गई। डाक्टर सुखदेव जी गुरुकुल में आ गये। आगे चलने से पूर्व कुछ शब्द उनके सम्बन्ध में कहने आवश्यक हैं, अन्यथा इतिवृत्त का सिलसिला पूरी तरह समझ में नहीं आयेगा।

मैं पहले बतला आया हूँ कि मेरी दो बहिनें थीं। जो हम दोनों भाइयों से बड़ी थीं। सबसे बड़ी बहिन वेदकुमारी जी की शादी का वृत्तांत मैं सुना चुका हूँ। दूसरी बहिन का पहला नाम हेमकुमारी था, उस नाम को शायद कम धार्मिक समझकर कर पिताजी ने विवाह से पूर्व बदल दिया और बहिन का नाम अमृतकला रख दिया। अमृतकला जी की शादी डा० सुखदेव जी से उन दिनों हुई थी, जब हम दोनों भाई गुजरानवाला गुरुकुल में पढ़ते थे। पिताजी के अन्य सब कार्यों की तरह अमृतकला जी का विवाह भी पंजाबी मुहावरे के अनुसार बड़े धूम-धड़ाके का कार्य था। सुखदेव जी मेडिकल कालेज में एस. ए. एस. की परीक्षा के लिये तैयार हो रहे थे। उनकी आर्थिक स्थिति बहुत साधारण थी, कड़े आलोचकों की दृष्टि में यह भी दोष की बात मानी गई है कि वे जाति के अरोड़े थे, जो खत्रियों से नीचे समझे जाते हैं।

उधर पिताजी के मन पर पहली शादी के कारण बहुत गहरी प्रतिक्रिया हो गई थी। वह इस बात पर तुल गये थे कि लड़की का वर तलाश करने में न धन को देखूँगा, न रूप को, न जाति की परवाह करूँगा, न डिग्रियों की, केवल चरित्र को देखूँगा। इस कसौटी पर कसकर पिताजी ने सुखदेव जी को सोलह आने खरा पाया और अमृतकला जी से सगाई करने के लिये जालंधर बुला लिया। इस समाचार के फैलने पर भारी कुहराम मच गया। हमारा ननसाल इस सम्बन्ध का कट्टर विरोधी था। नाना जी और भाबो जी (हमारी नानी) की ओर से सन्देश पर सन्देश आने लगे कि जाति से बाहर विवाह मत करो। उधर आर्यसमाज के क्षेत्र में भी एक अजीब-सा तूफान खड़ा हो गया। जो आर्य-समाजी नेता पिताजी की तेज प्रकृति से घबराते थे उन्होंने अमृतकला के विवाह के प्रश्न को एक सार्वजनिक रूप देकर लाहौर के आर्य-समाज के वार्षिकोत्सव पर एक कॉंफ्रेन्स रख दी। उस कॉंफ्रेन्स में कहने को तो अन्तर्जातीय विवाह के प्रश्न पर विचार रखा गया था, परन्तु वस्तुतः उसका उद्देश्य पिताजी के संकल्प को तोड़ना ही था। एक सदाशय पुरुष ने कॉंफ्रेंस में यहाँ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तक कह दिया कि लाला मुन्शीराम जी अपनी महत्वाकांक्षा पर लड़की को कुर्बान कर रहे हैं। सम्बन्धियों का विरोध और समाज के डरपोक नेताओं की कड़ी आलोचनाओं से विचलित न होकर पिताजी अपने संकल्प पर डटे रहे और वह अपने ढंग का पहला अन्तर्जातीय विवाह हमारे परिवार में सम्पन्न हो गया। उस विवाह के पश्चात् पिताजी ने जालन्धर की कोठी से विदाई ले ली और गंगा के तट पर गुरुकुल की योजना में लग गये।

बहिन अमृतकला विवाह के पश्चात् दो वर्ष के लगभग जीवित रहीं। उनका शरीर पहले से निर्बल था, प्रसव के कष्ट को न सह सका और वह केवल दो वर्ष के गृहस्थ के पश्चात् डाक्टर सुखदेव जी को अकेला छोड़कर परलोक चली गईं। डा० सुखदेव जी ने इस चोट को मनुष्यों की तरह बर्दाश्त किया। घर का सब सामान बेच कर गुरुकुल को छात्रवृत्ति के लिये दान दे दिया और स्वयं सेवा का व्रत धारण करके गुरुकुल में आ गये।

इस प्रकार डाक्टर सुखदेव जी गुरुकुल में आये।

---

१३. नवीनता की बाढ़

इस समय तक मैंने गुरुकुल में छोटे-मोटे परिवर्तनों का जो इतिहास सुनाया है, उससे पाठकों ने यही समझा होगा कि गुरुकुल में प्राचीनता के वातावरण में अर्वाचीनता बूंदें बन कर टपकी थी। अब मैं यात्रा के जिस पड़ाव पर आ गया हूं, उसमें पाठक अर्वाचीनता को बरसात में नदी की बाढ़ की तरह गुरुकुल में प्रवेश करता हुआ पायेंगे। १९०२ में गंगा के तट पर गुरुकुल का उद्घाटन हुआ था। अब तक जो कहानी सुनाई गई, वह प्रारम्भिक वर्षों की है। १९०६ में गुरुकुल का दूसरा दौर शुरू हुआ। हम दोनों भाई सबसे ऊपर की श्रेणी में थे, इस कारण प्रत्येक परिवर्तन का सबसे अधिक असर हम दोनों पर ही होता था।

इस युग का विचार आते ही तीन नाम याद आते हैं।

सबसे पहला नाम डा० चिरंजीव भारद्वाज का है। आर्यसमाज की वर्तमान संतति डाक्टर भारद्वाज के नाम से अधिक परिचित नहीं है। इसका मुख्य कारण यही है कि डाक्टर जी को इच्छानुसार समाज-सेवा करने का अधिक अवसर नहीं मिला। दुर्दैव ने उनके जीवन को अकाल में ही समाप्त कर दिया। डाक्टर भारद्वाज विलायत से डाक्टरी की बहुत ऊँची परीक्षा पास करके आये थे। वे ऋषि दयानन्द के परम श्रद्धालु थे। श्रद्धा और आवेग यह दो उनकी विशेषताएँ थीं। विलायत जाने से पहले ही ऐसे नौजवान आर्य-समाजियों का एक गिरोह उनके चारों ओर इकट्ठा हो गया जो सुधार की भावना को क्रियात्मक रूप से अपने जीवन का अंग बना देना चाहते थे। विलायत से वापिस आने पर पिताजी के त्यागमय जीवन से प्रभावित हो कर डा० भारद्वाज गुरुकुल की ओर आकृष्ट हुए और बड़ौदा रियासत की ऊँची

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नौकरी छोड़ कर गुरुकुल आ गए। आर्य समाचार-पत्रों ने यह समाचार इस रूप में छापा कि 'डाक्टर भारद्वाज ने गुरुकुल को जीवन-दान दे दिया।'

दूसरे महानुभाव, जिनका इस युग से विशेष सम्बन्ध है, वे प्रोफेसर रामदेव जी थे, जो उस समय मास्टर रामदेव जी कहलाते थे। प्रो० रामदेव जी आर्यसमाज की कालिज-पार्टी के नेता महात्मा हंसराजजी के भाई लगते थे। जब दोनों पार्टियों का संघर्ष बहुत जोरों से चल रहा था, तब प्रो० रामदेव जी का झुकाव महात्मा पार्टी की ओर हो गया। वे प्रकृति के अतिशयताप्रेमी थे। उनका कोई कार्य छोटे आकार में या धीमी प्रगति से नहीं हो सकता था। वे उन खिलाड़ियों में से थे, जो या तो जीत लेते हैं अथवा बाउण्डरी लगाते हैं। (यहाँ भ्रम निवारण के लिये लिख देना आवश्यक है कि ऊपर दिया गया दृष्टांत, दृष्टांत ही है, यों प्रो० रामदेव जी ने जीवन भर में क्रिकेट या अन्य कोई शारीरिक खेल नहीं खेले। गंगा के तट पर लगभग आधा जीवन बिताकर भी वे पानी में कभी नहीं तैरे)। डाक्टर चिरंजीव भारद्वाज के वे पट्टशिष्य थे। पिताजी से उन्हें तभी से प्रेम था, जब पंजाब की पार्टियों के झगड़े में प्रो० रामदेव जी बी. ए. पास करके जालन्धर छावनी के हाईस्कूल में हेड-मास्टर बनकर आये थे। वहाँ का कार्य छोड़कर वे भी डाक्टर भारद्वाज के साथ ही गुरुकुल आ गये थे। इसे आर्यसमाज के समाचार पत्रों में दूसरा जीवन-दान कहा गया।

तीसरे मास्टर गोवर्धन जी बी. ए. थे। मास्टर गोवर्धन जी का यदि संक्षेप में वर्णन करना हो तो हम कह सकते हैं कि वे 'शरीरधारी नियम' थे। नियम की तरह कठोर और नियम की तरह भावुकताहीन थे। गुरुकुल की पाठशाला को स्कूल के रूप में लाना उन्हीं का काम था। यद्यपि मास्टर गोवर्धन जी जीवन-दान दे कर गुरुकुल में नहीं आये थे, तो भी उनके जीवन का बहुत हिस्सा गुरुकुल में व्यतीत हुआ।

अब तक हम लोग अपने रहने के कमरों में ही पढ़ा करते थे। बहुत हुआ तो यज्ञशाला में पढ़ने के लिये बैठ गए। पढ़ाई के घंटे नहीं बजते थे। जब सुबह का प्रातःराश हो जाता तो पढ़ाई आरम्भ हो जाती और जब खाने की घंटी बज जाती तो पढ़ाई समाप्त हो जाती थी। इस प्रकार भण्डारी सालिग्राम जी की घंटी ही हमारी पढ़ाई का नियन्त्रण करती थी। मास्टर रामदेव जी के आने पर पहला परिवर्तन यह हुआ कि पढ़ाई की घंटी बजने लगी। इस अर्वाचीन रीति का काफी विरोध हुआ। ब्रह्मचारियों को यह बन्धन प्रतीत होता ही था, अध्यापक भी इससे प्रसन्न नहीं थे। भण्डारी जी ने घोषणा कर दी थी कि यह रीति व्यवहार-योग्य नहीं है। एक दिन प्रातःकाल पढ़ाई की घण्टी बजने के पश्चात् दूध की घंटी बजी क्योंकि दूध इससे पूर्व गर्म नहीं हो सका। दूसरे दिन भोजन की घंटी पढ़ाई के बीच में ही बज गई। भोजन तयार हो गया था।

अस्तु, यह व्यवस्था धीरे-धीरे ठीक हो ही रही थी कि एक नया प्रश्न खड़ा हो गया। डाक्टर चिरंजीव जी ने एतराज उठाया कि बच्चों को पढ़ने के लिये डैस्क क्यों नहीं दिये जाते? उनका कहना था कि पुस्तक ठीक दूरी पर न रहने से आँखें खराब हो जाती हैं। इस प्रस्ताव का विरोध हुआ। विरोधियों की यह युक्ति थी कि डैस्क आ जाने से तो वह बिलकुल स्कूल बन जायेगा। ऐसे सभी परिवर्तनों के पीछे प्रधान जी की स्वीकृति रहती थी, इस कारण अन्त में वह हो ही जाते थे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यह तो परिवर्तनों का आरम्भ था। एक बार गेंद लुढ़का तो लुढ़कता ही चला गया। पढ़ाई के कमरे अलग हो गए, घण्टे बजने लगे। पहले छोटे डैस्क और फिर कुर्सी वाले बड़े डैस्क आ गये। पढ़ाई के विषयों में भी क्रांति पैदा होने लगी। प्रो० रामदेव जी की अध्यक्षता में अंग्रेजी, इतिहास और अर्थशास्त्र की पढ़ाई जोर-शोर से होने लगी। मास्टर गोवर्धन जी साइन्स पढ़ाते थे। संस्कृत के विषयों का अध्यापन गुरु काशीनाथ जी के अतिरिक्त पं० भीमसेन जी शर्मा, पं० नरदेव जी शास्त्री, पं० पद्मसिंह शर्मा तथा पं० विष्णुमित्र जी आदि करते थे। जब स्कूल बना तो एक हेड-मास्टर भी चाहिये था। मास्टर रामदेव जी गुरुकुल के प्रथम हेड-मास्टर (मुख्याध्यापक) नियत हुए। जब ग्यारहवीं श्रेणी खुल गई और हम लोग (महाविद्यालय) में चले गये, तो मास्टर रामदेव जी प्रिंसिपल हो गए और मुख्याध्यापक का कार्य मास्टर गोवर्धन जी के सुपुर्द हुआ। गुरुकुल के सभी पुराने स्नातक जानते हैं कि गुरुकुल विश्वविद्यालय को नियम और नियन्त्रण में लाने का श्रेय अधिकतर मास्टर गोवर्धन जी को ही था।

अगले परिच्छेद में मैं बतलाऊँगा कि देहरादून यात्रा के पश्चात् ब्रह्मचारियों के हृदय में अर्वाचीन विद्याओं को सीखने की रुचि बढ़ गई थी। डा० चिरंजीव भारद्वाज और प्रो० रामदेव जी के व्यक्तित्व भी जोरदार थे। सबसे बढ़कर बात यह थी कि पिताजी उपदेशों तथा व्याख्यानों द्वारा बालकों को आवश्यक परिवर्तनों के लिये तैयार करते रहते थे। इन सब कारणों से हम लोगों का सामान्य झुकाव परिवर्तनों के पक्ष में हो गया था।

आचार्य गंगादत्त जी दिल से इन परिवर्तनों के विरोधी थे। यह तो नहीं कहा जा सकता कि वे सर्वथा अपरिवर्तनवादी या सनातनपन्थी थे। सामान्य रूप से वे किसी सनातन रूढ़ि में आस्था नहीं रखते थे। विचारों में आर्यसमाजी थे, परन्तु उनकी तबियत में लचकीलेपन का सर्वथा अभाव था। एक बार आर्यसमाजी बन गये तो बने रहे। नई परिस्थिति के अनुसार बदलना या किसी नई बात को लेकर नया अंग बना लेना उनके लिए सम्भव नहीं था। डाक्टर चिरञ्जीव भारद्वाज और प्रो० रामदेव जी से सम्भवतः प्रथम दर्शनों से ही उनकी प्रतिकूलता हो गई थी, जो समय के साथ बढ़ती ही गई। डा० चिरञ्जीव भारद्वाज तो कुछ समय पश्चात् रूठ कर गुरुकुल से चले गये और प्रो० रामदेव जी लगभग तीस-वर्ष तक गुरुकुल के साथ सम्बद्ध रहे। आचार्य गंगादत्त जी का और उनका संघर्ष लगभग तीन वर्षों तक चला। आचार्य गंगादत्त जी निरन्तर यह अनुभव करते रहे कि वह संघर्ष में परास्त हो रहे हैं। उन्हें एक-एक करके कई कदम पीछे हट जाना पड़ा। जिससे अन्त में उन्होंने और उनके कुछ शिष्यों ने गुरुकुल काँगड़ी छोड़ कर गंगा के दूसरे पार ज्वालापुर महाविद्यालय जाने का निश्चय कर लिया।

१९०६ से १९१० के मध्य में गुरुकुल के रूप में लगभग क्रान्ति हो गई। गुरुकुल विद्यालय तथा महाविद्यालय इन दो भागों में विभक्त हो गया। विद्यालय की पाठविधि १० वर्षों में बाँटी गई और महाविद्यालय की ४ वर्षों में। इस समय सोचने पर अनुभव होता है कि यूनिवर्सिटियों की कड़ी आलोचना करते हुए भी उस समय हमने सोलहों आने यूनिवर्सिटियों के बाह्यरूप को अपना लिया। शायद उस समय कोई दूसरा मार्ग भी नहीं था। पाठशाला की पुरानी पद्धति बदली, क्योंकि पुरानी शैली

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बदलती हुई नई परिस्थितियों के अनुरूप नहीं थी। उसे जारी रखने का अभिप्राय यह होता है कि गुरुकुल ताल का कूप ही बना रहता और ब्रह्मचारी कूप-मंडूक होते। दूसरी कोई पद्धति आविर्भूत नहीं हुई थी। जो महानुभाव गुरुकुल को विश्वविद्यालय का रूप देना चाहते थे, उनमें किसी को यह अवसर नहीं मिला कि वह पाठशाला और स्कूल के मध्य का कोई मार्ग निकाल सकते। परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजी मुहावरे के अनुसार नई बोतलों में पुरानी दवा भरने का यत्न प्रारम्भ हो गया।

यह संस्मरणों का संग्रह है, इसमें सम्मतियाँ देना अप्रासंगिक ही है, तो भी पथभ्रष्ट होकर सम्मति दे डाली है, इसके लिए पाठक क्षमा करें। मैं संस्मरण के इस भाग को समाप्त करते हुए इतना बतला देना आवश्यक समझता हूँ कि इस परिवर्तन युग की समाप्ति पर हम गुरुकुल-भूमि में फूंस के घरों के स्थान पर महा विद्यालय की पक्की इमारतें खड़ी पाते हैं। कलेवर बदल चुका था, बहुत कुछ मन भी बदल चुका था, केवल आत्मा के प्रतिनिधि मुख्याधिष्ठाता महात्मा मुन्शीराम जी गुरुकुल की निरन्तरता को कायम रख रहे थे।

———

१४. एक मनोवैज्ञानिक परीक्षण

मनुष्य के जीवन में ऐसे समय प्रायः आते रहते हैं जब वह अपने को एक चौराहे पर खड़ा पाता है। उस समय उसके लिये ठीक मार्ग का निर्णय करना कठिन हो जाता है, यदि ठीक समय और ठीक स्थान पर कोई अच्छा मार्ग-दर्शक मिल गया तो मनुष्य उलझन से निकल कर ठीक रास्ते पर पड़ जाता है, अन्यथा या तो उल्टे रास्ते पर चल पड़ता है अथवा दुविधा में फंस कर जीवन के अमूल्य अवसर को खो देता है। ठीक स्थान और ठीक समय पर सच्चा मार्ग दर्शक मिल जाय, यह अच्छे भाग्यों से होता है। इसी से बड़े से बड़े पुरुषार्थवादी भी अन्त में प्रारब्धवादी होते देखे गए हैं।

अब मैं अपने जीवन की जिस घटना का इतिहास सुनाने लगा हूँ वह ऐसी ही थी। हम दोनों भाई घटनाचक्र के वशीभूत होकर उन्नीस सौ छः ईस्वी के मध्य में जीवन के चौराहे पर पहुँच गए थे। वह मानसिक उलझन क्या थी और उससे हमारा कैसे उद्धार हुआ, यह पाठकों को निम्नलिखित घटना से ज्ञात होगा।

मैं इससे पूर्व गुरुकुल की प्रारम्भिक दिनचर्या के प्रसंग में बतला आया हूँ कि उन दिनों हम लोग संस्कृत ही पढ़ा करते थे। व्याकरण, साहित्य, दर्शन सभी विषयों में हमारी योग्यता अच्छी मानी जाने लगी थी। मुझे स्मरण है कि एक बार आर्य-समाज के प्रसिद्ध विद्वान् पं० आर्यमुनि जी गुरुकुल देखने के लिए आये। हम लोग उस समय गंगा पर नहाने की तैयारी कर रहे थे। पं० आर्यमुनि जी प्रधान जी के साथ हम लोगों के पास आये और संस्कृत में बातचीत करने लगे। यदि भूलता नहीं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तो पं० आर्यमुनि जी ने गगा की ओर देख कर निम्नलिखित वाक्य कहा था—"शुद्धं अम्बु गच्छति" इस वाक्य का सुनना था कि हम लोग बे-मतलब उनसे उलझ पड़े। व्याकरण का झगड़ा छेड़ कर हमने उन्हें बहुत तंग किया। पंडित जी दार्शनिक थे, व्याकरण उन्हें उपस्थित नहीं था। हमारे बचपन पर वह हंसते रहे और अन्त में साधु-साधु कहते हुए प्रधान जी के साथ चले गए। यह हमारी उस समय की मनोवृत्ति का एक अच्छा नमूना था कि हमने अपने आप को विजयी समझा और बहुत प्रसन्न हुए।

इसी बीच में काशी के प्रसिद्ध विद्वान् गुरुवर पं० काशीनाथ जी गुरुकुल में अध्यापक के तौर पर आ गए। गुरुवर पं० काशीनाथ जी पुराने ढंग के पाण्डित्य का एक बढ़िया नमूना थे। उनका वेश यह था—धोती और बन्डी के अतिरिक्त चादर ओढ़ते थे। सर्दियों में चादर के स्थान पर लिहाफ ओढ़ लेते थे। अधिक गर्मियाँ होने पर बन्डी उतार देते थे। उनके स्टाक में कोई चौथा कपड़ा नहीं रहता था। धोबी के यहां कोई कपड़ा धुलने नहीं देते थे। नहा कर गीली धोती निचोड़ देते थे, बस वस्त्र शुद्धि का उनका इतना ही कार्यक्रम था। इस कारण गुरु जी के कपड़े सदा मैले ही दिखाई दिया करते थे।

पुराने पंडितों को पान, तम्बाकू सूंघनी आदि में से किसी चीज की एक आदत हुआ करती थी। गुरु जी को सूंघनी की आदत थी। वसे तो जागरित अवस्था में भी थोड़ी-थोड़ी देर में सूंघते रहना उन के लिये आवश्यक था, परन्तु विशेष रूप से जब वह पढ़ाने के लिए बैठते थे, तब बहुत सी सूंघनी चुटकी में ले कर नाक के मार्ग से मस्तक तक चढ़ाना अनिवार्य सा हो जाता था। हम लोगों ने पुस्तक खोली और गुरु जी ने सूंघनी चुटकी में ली। यह जान कर आजकल के गुरुओं और विद्यार्थियों को आश्चर्य होगा कि गुरुजी को पढ़ाते समय कोई पुस्तक खोलने की आवश्यकता नहीं होती थी। व्याकरण, नवीन तथा प्राचीन दर्शन, अलंकार-शास्त्र ज्योतिष, निरुक्त, आदि किसी भी विषय के कठिन से कठिन ग्रन्थ को वह बिना पुस्तक देखे ही पढ़ा सकते थे। हम लोग पाठ पढ़ते जाते और वह अपनी पुरबिया भाषा में समझाते जाते। शास्त्र की कोई ऐसी गांठ नहीं थी, जिसे उन की प्रतिभा खोल नहीं सकती थी। शास्त्रों का कोई ऐसा भंवर नहीं था, जिसे उनकी विद्वत्ता पार नहीं कर सकती थी। कोई ग्रन्थ खोलिए, गुरु जी को वह उपस्थित मिलता था। उन धूमिल वस्त्रों में उस अगाध विद्वत्ता को देख कर सचमुच आश्चर्य होता था।

इसी प्रसंग में एक मनोरंजक घटना याद आ गई है, उसे भी लिखे देता हूँ। एक साल चौमासे में गंगा का जल बहुत बढ़ गया। गुरुकुल के पुराने यात्रियों को मालूम है कि बरसात में हरिद्वार से गुरुकुल तक की यात्रा कनस्तरों के बंधे हुए तमेड़ों पर हुआ करती थी। वह किश्ती कितनी मनोरंजक और कितनी भयानक थी, यह वे समझ सकते हैं जिन्होंने चौमासे में उमड़ती हुई गंगा की धारा को तमेड़ से पार किया हो। एक क्षण में यात्री अपने को गंगा की चोटी पर, और दूसरे क्षण में गंगा के पाताल में पाता था। साल में दो-चार दिन ऐसे भी आते थे, जब तमेड़ चलाने वाले गंगा का सामना करने से इंकार कर देते थे। उस साल ऐसे ही चार दिन आ गए, जिनमें गुरुकुल का हरिद्वार से पूरी तरह सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। इधर गुरु जी की डिबिया में सूंघनी समाप्त हो गयी। प्रातः काल के समय जब हम लोग गुरु जी के सामने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पढ़ने के लिए बैठे तो बहुत ही करुणा-जनक दृश्य था। वे कभी विद्यार्थियों की तरफ देखते थे और कभी गंगा के उस घाट की ओर, जहां परले पार से आकर तमेड़ लगती थी। सूंघनी के बिना विद्वत्ता के उस अथाह सागर के मस्तिष्क और वाणी सर्वथा मौन थे। तीन दिन इसी तरह से बीत गए। कोई पाठ न हुआ। चौथे दिन गुरु और शिष्य उसी प्रकार बैठ कर समय व्यतीत कर रहे थे कि इतने में गंगा में तमेड़ दिखाई दी। गुरु जी ने इशारा करके एक ब्रह्मचारी को भगाया जिसने तमेड़ के किनारे पर लगते ही हरिद्वार से आए हुए सामान में से सूंघनी की पुड़िया निकाल ली, और गुरु जी के हाथ में दे दी। उस समय गुरु जी के चेहरे की प्रसन्नता देखने योग्य थी, मानों समुद्र-मेखला पृथ्वी का साम्राज्य मिल गया हो। गुरु जी ने कई चुटकियाँ इकट्ठी नाक में चढ़ा लीं, जिससे एक बार तो आँख और नाक से खूब पानी बह निकला, परन्तु चार-पाँच मिनट में प्रतिभा के सब कपाट खुल गए और शास्त्र का अनवरत प्रवाह बह निकला।

गुरु जी की एक बात और सुना कर आगे चलता हूँ। लम्बी छुट्टियों में गुरुजी बलिया जाने के लिए तयार हुए। यात्रा के लिए एक खुरजी तैयार की गई, जिसमें एक ओर कुछ कपड़े, दूसरे ओर सत्तू, चने आदि बंधे हुए थे। सफर में गुरुजी न जल पीते थे न खाना खाते थे। गुरुकुल में भी केवल अपने हाथ का बना खाना ही खाते थे। खुरजी को कन्धे पर डाल कर गुरु जी जब तीसरे दर्जे के डिब्बे में प्रविष्ट हुए और सीट के नीचे की जगह में बैठने लगे तो हम लोगों ने, जो उन्हें स्टेशन पर छोड़ने गए थे, सीट पर जगह खाली करा कर गुरु जी से निवेदन किया—"महाराज" आप नीचे क्यों बैठते हैं, सीट पर बैठिए, जगह तो है। गुरु जी बहुत भोले ढंग पर उत्तर दिया—"अरे यहीं ठीक है, वहां कोई उठाय दई है।" उस समय तो हम लोगों ने यह विश्वास दिला कर, कि 'आपको रास्ते में कोई नहीं उठाएगा' गुरु जी को सीट पर बिठा दिया था, आगे कैसी बीती यह मालूम नहीं।

ऐसे प्रकाण्ड विद्वान् के उस सादा जीवन का हम लोगों पर बहुत गहरा असर हुआ मस्तक पर मध्यकालीन संस्कृत का अधिकार बढ़ने लगा। शेखर और मुक्तावली ने काशिका और प्रशस्तपाद को मैदान से भगा दिया। यह हमारी ओछी बुद्धि और अल्प विद्या का ही परिणाम था। गुरु जी के आने के दो-तीन वर्ष बाद हम लोगों में यह भाव पैदा हो गया, कि आर्यसमाज के पास और कुछ भी हो, पाण्डित्य का सर्वथा अभाव है। हम लोग ज्ञानलव-दुर्विदग्धता के अच्छे खासे नमूने बन गए।

एक दिन रात्रि के भोजन के पश्चात् हम दोनों भाइयों ने प्रधान जी (पिता जी) से प्रार्थना की कि हम अकेले में उन से कुछ बातें करना चाहते हैं। गुरुकुलीय जीवन में शायद यह पहला अवसर था, जब हमने पिता जी से अलग बातचीत करने का अवसर माँगा हो। अन्यथा वे हम दोनों को सदा अन्य ब्रह्मचारियों के समान भाव से ही देखते रहे। हमारी प्रार्थना से पिता जी को आश्चर्य हुआ, तो भी उन्होंने हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ली, और हम दोनों को साथ लेकर उसी समय गुरुकुल-वाटिका में चले गए। वहाँ टहलते-टहलते भाई जी ने पिता जी से अपने मन का भाव कहा—भाव यह था कि हम दोनों गुरुकुल की शिक्षा से सन्तुष्ट नहीं हैं। इस शिक्षा से हम पंडित नहीं बन सकेंगे। पंडित बनने के लिए काशी में शिक्षा पाना आवश्यक है। हमें पं० शिवकुमार शास्त्री, पं० जयदेव मिश्र और श्री भागवताचार्य जैसे पंडितों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

से शिक्षा पाने का अवसर मिलेगा। आप हमें गुरुकुल से उठा कर बनारस भेज दीजिए।

हमारे इस प्रस्ताव से पिता जी को जो मानसिक धक्का पहुँचा होगा, उसका अनुमान लगा कर अब भी मेरा दिल काँप उठता है। जिस व्यक्ति ने गुरुकुल-शिक्षा की स्थापना के लिए सर्वस्व लगा दिया हो, उसके लड़केही जब निष्फलता और निराशा का संदेश ले कर आएं तो उस व्यक्ति के हृदय पर आघात होना स्वाभाविक ही था। पिता जी हमारा प्रस्ताव सुन कर चुप हो गए, बहुत देर तक तीनों मौन मुद्रा में घूमते रहे। यह अनुभव कर के कि हमारे शब्दों ने पिता जी को बहुत दुखी किया है, हम दोनों स्तब्ध से हो गये। पिता जी के मन क्या विचार उठते रहे होंगे, इस का अनुमान ही लगाया जा सकता है।

कुछ देर तक चुपचाप टहलने के पश्चात् पिता जी ने बड़े शान्त भाव से कहा, मैं तुम्हारी बातों का उत्तर कल दूंगा।

दूसरे रोज हम बड़ी उत्सुकता से उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे। तरह-तरह के विकल्प मन में उठ रहे थे। कभी सोचते कि पिता जी बनारस भेज देंगे, न भेजना होता तो उसी समय इन्कार कर देते। फिर विचार उठता कि भेजना होता तो उसी समय मान भी तो सकते थे। अवश्य इंकार करेंगे। इसी तरह संकल्प, विकल्प करते सायं काल का समय आ गया। सायं-काल पढ़ाई से छुट्टी होने पर कमरे से बाहर निकले, तो प्रधान जी का चपरासी हाथ में एक कागज ले कर आता हुआ दिखाई दिया। उस कागज में इस आशय की आज्ञा लिखी हुई थी कि भोजन से निवृत्त हो कर दो बड़ी श्रेणियों के सब ब्रह्मचारी मुख्याधिष्ठाता जी के निवास-स्थान पर एकत्र हों। इस आज्ञा से हम दोनों भाइयों की द्विविधा और भी बढ़ गई। क्या हमारे प्रस्ताव का उत्तर सब के सामने दिया जाएगा?

भोजन के उपरान्त ऊपर की दो श्रेणियों के ब्रह्मचारी प्रधान जी के स्थान पर इकट्ठे हुए। मैं शायद इन संस्मरणों में यह बतलाना भूल गया हूँ कि हम दोनों भाई एक ही श्रेणी में थे, और वह श्रेणी गुरुकुल में सबसे बड़ी थी। हमारे साथ एक और साथी भी शिक्षा पाते थे, जिनका नाम जयचन्द था। वह स्नातक बनने से पूर्व ही गुरुकुल छोड़ कर चले गए थे। अस्तु, हम सब प्रधान जी के स्थान पर एकत्रित हुए। प्रधान जी ने बड़े प्रसन्न भाव से ब्रह्मचारियों को यह समाचार सुनाया कि दोनों बड़ी श्रेणियों को देहरादून-यात्रा कराने का निश्चय किया गया है। इतना समाचार मात्र हम पिंजरे के पंक्षियों को फड़का देने के लिए पर्याप्त था। हमने अभी हरिद्वार भी अच्छी तरह न देखा था। देहरादून की यात्रा होगी यह जानकर हम लोग बहुत ही प्रसन्न हुए। प्रधान जी ने अत्यन्त आकर्षक शब्दों में यात्रा का कार्य-क्रम हमारे सामने रखा। सायंकाल के समय चलेंगे। रात को मायापुर वाटिका में ठहरेंगे। सुबह स्टेशन पर पहुँच कर तुम लोगों को यह समझाऊँगा कि इन्जन से रेल कैसे चलती है? देहरादून पहुंच कर जंगलात का कालेज, ओन्जरवेटरी आदि संस्थाएँ देखने को मिलेंगी। फिर सहस्र-धारा चलेंगे, इत्यादि इतनी नई चीजें इकट्ठी देखने की आशा उत्पन्न करने के अन्तर प्रधान जी ने हमारे जिम्मे कई काम लगा दिए। कल कागज मंगवा दिए जाएँगे, तुम लोग यात्रा के नोट लेने के लिए स्वयं जिल्द वाली डायरियाँ तैयार कर लो। सब मैले कपड़ों को धो डालो। चार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हमारा परिवार

बैठे हुए (बांये से)—तायीजी, बालक हरिश्चन्द्र, बालक इन्द्र ।
खड़े हुए (")—बहन वेदकुमारी, बहन अमृतकला व सुमित्रा जी ।

बिन के लिए खैर की दातुनें इकट्ठी कर लो । यात्रा के लिए भंडारी सहायक भंडारी उसी समय नियत कर दिए गये । इस प्रकार यात्रा और यात्रा की तैयारी का पूरा कार्यक्रम हमारे दिल और दिमाग में भर कर प्रधान जी ने हमें सोने के लिए आश्रम में भेज दिया ।

मेरे अध्ययन और निजी अनुभवों में जितने मनोवैज्ञानिक परीक्षण आए हैं, उनमें शायद ही कोई परीक्षण इतना सफल हुआ हो, जितना पिताजी का यह परीक्षण । मैं इसे उनकी नेतृत्व शक्ति का सब से बड़ा प्रबल प्रमाण मानता हूँ । मनुष्यों का नेता वही हो सकता है, जो उनके मनों को अपनी इच्छानुसार सांचे में ढाल सके, और ढाल भी सके ऐसे ढंग पर कि अनुयायियों को यह मालूम न हो कि उन्हें कुछ का कुछ बना दिया गया है । देहरादून की यात्रा के प्रस्ताव ने हम दोनों के मन में से बनारस जाने की इच्छा के खंडहरों तक को निकालकर बाहर फेंक दिया । रात को जब हम सोने के लिए आश्रम में पहुंचे तो हमारे हृदयों में से निराशा विदा हो चुकी थी और उत्साह भरा हुआ था । हमारे कल रात के प्रस्ताव का पिताजी की ओर से यह क्रियात्मक उत्तर था ।

देहरादून की यात्रा हम दोनों भाइयों के जीवन में एक पड़ाव की हैसियत रखती है । उस यात्रा का ब्रह्मचारियों के मन और हृदय पर बहुत गहरा असर हुआ । बाहर की दुनियाँ से अलग रहने के कारण हमारे मन की स्लेट लगभग साफ़ थी । उस पर बाह्य संसार के जो पहले अक्षर लिखे गए, वह बहुत ही स्पष्ट और गहरे थे । हम लोग केवल संस्कृत ज्ञान के श्रद्धालु रूप में यात्रा के लिये चले थे । जब वापिस आए तो विज्ञान कला आदि की जिज्ञासा से पूर्ण थे । यह उस मनोवैज्ञानिक परीक्षण परिणाम का था, जो पिताजी ने ब्रह्मचारियों के मन पर किया था ।

———

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१५. गुरुकुल काँगड़ी के दर्शक

गुरुकुल के पुराने यात्रियों को यह याद दिलाने की आवश्यकता नहीं कि गंगा के उस पार होने वाले वार्षिकोत्सवों में दर्शक किस अद्‌भुत भक्तिभाव से सम्मिलित होते थे। यह भक्तिभाव उचित था या नहीं, इस प्रश्न पर मैं विचार नहीं करता कारण यह है कि मैं इन परिच्छेदों में संस्मरणों का संग्रह कर रहा हूँ, उनके औचित्य पर विचार नहीं कर रहा। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि भक्ति के क्षेत्र में तर्क का अधिक प्रयोग करने से विशेष लाभ नहीं होता। यह तो बताया जा सकता है कि भक्ति किन कारणों से पदा हुई, परन्तु आमतौर पर एक व्यक्ति के लिए पूरी तरह यह जानना अत्यन्त कठिन है कि दूसरे के हृदय में भक्तिभाव कितना है, क्यों है और कहाँ तक ठीक है? भक्ति का मौसम आ जाने पर तर्क की फसल स्वयं ही मर जाती है।

उस समय गुरुकुल के यात्रियों के हृदय में भक्ति का स्रोत बहता था। वे लोग गुरुकुल में तीर्थ की भावना रख कर आते थे। मैं इसके मुख्यतः चार कारण समझता हूँ। (१) व्याख्यानों और लेखों द्वारा पुराने गुरुकुलों का इतना आकर्षक चित्र आर्य जनता के सामने खींचा गया था, कि वह गुरुकुल में स्वर्ग के टुकड़े की कल्पना करके जाते थे। (२) गुरुकुल का हरिद्वार में होना तीर्थ की स्मृति को जगाने वाला था। यह निश्चित बात है, कि यदि गुरुकुल हरिद्वार में न बनकर किसी अन्य स्थान में बनता तो उसमें तीर्थ की इतनी अधिक भावना न रहती। (३) गुरुकुल के लिए जो स्थान चुना गया, वह वस्तुतः अद्‌भुत था। वहाँ मैंने बड़े-बड़े नास्तिकों को आस्तिकता की बातें करते सुना। (४) पिताजी का व्यक्तित्व गुरुकुल जाने से पूर्व ही आयसमाजियों में ऊँचा स्थान पा चुका था। आदर्शवाद और साहसिक सुधारों के कारण साधारण जनता में श्रद्धा का भाव उत्पन्न हो चुका था। उनका व्यक्तित्व भी गुरुकुल का एक विशेष आकर्षण था।

मैं इस परिच्छेद में जो अपने अनुभव की घटनाएँ लिखूंगा उनसे यह स्पष्ट हो जायगा कि ऊपर दिए हुए कारण किस प्रकार अपना कार्य करते थे। अपने अनुभव की जो घटनाएं मैंने यहाँ लिखी हैं, वह मेरे गुरुकुल वास के लगभग सत्रह सालों में भिन्न-भिन्न अवसर पर घटित हुई थीं। इन सत्रह वर्षों में से दस वर्ष (१९०२ से १९१२ तक) छात्रावास में व्यतीत हुए।

गंगा के उस पार के गुरुकुलोत्सवों के विकास पर दृष्टि डालें तो हमें उसमें बहुत सी मनोवैज्ञानिक सच्चाइयाँ दिखाई देंगी। उनसे जनता के मानसिक भावों को परखने में बड़ी सहायता मिल सकती है। पहले आप उपस्थिति पर दृष्टि डालिए। पहला वार्षिकोत्सव १९०२ में हुआ था। वह आश्रम के घेरे में ही समा गया था। अनुमान लगाया गया है कि उसमें अधिक से अधिक उपस्थिति तीन हजार की थी।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यह संख्या प्रति वर्ष बढ़ने लगी। क्रमशः बढ़ते-बढ़ते दस वर्ष में वह ७०-७५ हजार तक पहुँच गई। जिस वर्ष देशमान्य गोपालकृष्ण गोखले के प्रतिनिधि बन कर देवधर जी गुरुकुलोत्सव पर आए थे, उस वर्ष बाहर से आए हुए दर्शकों की संख्या ७५ हजार के लगभग आंकी गई थी।

इस संख्या का महत्व समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि गुरुकुल तक जाने की स्थिर और सामयिक कठिनाइयां कितनी थीं। हरिद्वार के स्टेशन से कनखल तक तो घोड़ा-गाड़ी में पहुँचा सकता था। वहाँ से लगभग तीन मील का रास्ता रेत, गोल पत्थर और काँटेदार घने जंगलों का था। साल में चार-पाँच महीनों तक गंगा की धाराओं पर किश्तियों या खटोलों के पुल बंधे रहते थे। उन दिनों में भी उस रास्ते की कठिनाई का अनुमान इससे लगाया जा सकता है, कि दिन में या रात में, सुबह या दोपहर के समय वह रास्ता पैदल ही तय करना पड़ता था। सामान के लिए बैल-तांगा मिल गया तो बहुत समझो। किसी-किसी वर्ष तो ठीक उत्सव के दिनों में अधिक वर्षा हो जाने के कारण गंगा में जल बढ़ जाता था, और पुल टूट जाते थे। पुल टूटने की खबर आते ही प्रधान जी कन्धे पर पीला दुपट्टा डालकर और लम्बी लाठी हाथ में लेकर ब्रह्मचारियों में आते थे, और कहते थे कि चलो पुल बनायेंगे। सब बड़े ब्रह्मचारी और उन के अधिष्ठाता प्रातः काल ही घाट पर पहुँच जाते थे और गाँव से बुलाए हुए मल्लाहों की सहायता से पुल बनाने का कार्य आरम्भ हो जाता था। ब्रह्मचारी जांघिया बाँध कर गंगा में कूद पड़ते थे, किश्तियों को स्थान-स्थान पर जोड़ना, खटोले जमाना और उनमें पत्थर भरना आदि सब प्रकार का काम ब्रह्मचारी, उनके अधिष्ठाता और कारीगर मिलकर करते थे। परिणाम यह होता था कि कुछ ही घन्टों में सेतुबन्ध पूरा होता दिखाई देने लगता था। मुझे अब तक वह दृश्य बड़ी स्पष्टता से याद है, जब हम लोग पुल बनाने के काम में लगे होते थे और सुबह की हरिद्वार पैसेन्जर से आई हुई सवारियाँ गंगा के कनखल की ओर के किनारे पर इकट्ठी होने लगती थीं। उन्हें देखकर हम लोग और जोर से काम करने लगते थे। एक बार उस पार दसों परिवार इकट्ठे हो गए। दोपहर के बारह बज गये, पर पुल पूरा नहीं हो सका। प्रधान जी ने उसी समय खाने का बहुत सा सामान गुरुकुल से मंगवा कर तमेड़ों पर परली पार भेज दिया और कहला भेजा कि आप लोग वापिस न जायं। हम सब पुल पूरा होने पर ही खाना खायेंगे। इस पर जो यात्री तैरना जानते थे, गंगा में कूद पड़े और पुल बनने में हमारी सहायता करने लगे। जहाँ तक याद है दिन के दो बजे तक पुल पूरा हो गया। और गुरुकुल वासी यात्रियों को साथ लेकर गुरुकुल की ओर रवाना हो गए।

यात्रियों के ठहरने के लिए उन दिनों फूंस के छप्पर बनाये जाते थे। मशहूर है कि होली पर आकाश से भी प्रायः गर्द और पानी बरसता है। उन दिनों उत्सव प्रायः होली के दिनों में हुआ करते थे यात्रियों को कभी-कभी खुले छप्परों में आँधी पानी का सामना करना पड़ता था। दो एक बार आग भी लगी थी। इन सब आपत्तियों को सहते और जानते हुए भी दर्शक लोग गुरुकुल भूमि में पहुँचते थे। इस का मुख्य कारण वह भक्तिभाव ही था जिसके कारणों की ओर मैंने ऊपर निर्देश किया है। उन दिनों यात्री गुरुकुल को तीर्थ और धर्म स्थान समझकर वहाँ जाते थे और जितने दिन वहाँ रहते, धार्मिक भावना से प्रेरित रहने का ही यत्न करते थे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१९०९-१० के लगभग दिल्ली के सैण्ट स्टीफन्स कालेज से गुरुकुल के सम्बन्ध ऐसे हो गये थे, जैसे दो बहिन-संस्थाओं के होते हैं। मि० ए० एफ० ए० एन्डरूज और प्रिन्सिपल रुद्र का पिताजी से स्नेह हो गया था, उसे अकारण स्नेह का नाम ही देना चाहिए, क्योंकि न तो उसमें किसी का कुछ स्वार्थ था और न ही धर्म अथवा संस्कृति की समानता थी। केवल प्रवृत्तियों की समानता के कारण ही वह स्नेह पैदा हुआ था। एक बार सर्दी के मौसम में सेण्ट स्टीफन्स कालिज के नौजवान प्रोफेसर पियर्सन गुरुकुल आये। मिस्टर पियर्सन की आयु २५-२६ वर्ष की होगी। वे स्काटलैंड निवासी थे। प्रातः काल की गाड़ी से उतरे। स्टेशन से गुरुकुल तक का मार्ग प्रदर्शन करने का काम मेरे जिम्मे लगाया गया था। मैंने उन्हें गुरुकुल की पक्की धर्मशाला में ठहरा दिया। वह धर्मशाला गुरुकुल की इमारतों से अलग एकान्त स्थान में बनी हुई थी और सुन्दर उद्यान से घिरी थी। उस उद्यान को गुरुकुल वाले मक्खन की वाटिका के नाम से पुकारते थे। मक्खन उस वाटिक के माली का नाम था। यदि गुरुकुल का कोई पुराना यात्री उसकी स्मृति से खिंचा हुआ गंगा को पार करके आज भी उस पुरानी भूमि में जाने का परिश्रम उठाए, तो वह घने जंगल में एक पक्की सफेद इमारत को देखेगा जिसे वह आसानी से नहीं पहचान सकेगा कि यह वही पक्की धर्मशाला है। पहचान लेने पर वह अवश्य ही आश्चर्य करेगा कि गंगा की तूफानी बाढ़, मनुष्य की घोर उपेक्षा और समय की निरन्तर चोटों को सहकर भी यह इमारत किस तरह साबित खड़ी है। उस समय यही वाक्य मुंह से निकलता है 'जिसको राखे साइयां मार सके न कोय।'

हाँ, तो मैंने मिस्टर पियर्सन को पक्की धर्मशाला में ठहरा दिया और उनके स्नान आदि का प्रबन्ध करके अन्यत्र चला गया। थोड़ी देर के बाद लौट कर देखता हूँ कि पियर्सन साहब नदारद हैं। मक्खन से पूछने पर मालूम हुआ कि मेरे जाने के थोड़ी देर बाद ही कोट, पेन्ट की जगह धोती, कुर्ता पहिन कर गंगा की ओर चले गए थे। अब मैं उनकी तलाश में गंगा की ओर चला। जाकर देखता हूँ तो वह गंगा के किनारे रेत में छोटे-छोटे पत्थरों को उठाते और पानी में फेंक कर आनन्द ले रहे हैं। मैं पास पहुँचा तो अत्यन्त प्रसन्न मुख होकर मुझ से कहने लगे, 'ओह, यह तो बहुत ही प्यारी जगह है, मैं तो यहाँ आकर अपने आपको भूल गया। मुझे तो इसने अपनी मातृभूमि स्काटलैंड के दृश्य याद करा दिये।

जिन दिनों की घटना सुनाने लगा हूँ, उन दिनों मैं दिल्ली में सद्धर्म प्रचारक का सम्पादन करता था। दक्षिण अफ्रीका से एक हिन्दुस्तानी ईसाई बैरिस्टर भारत भ्रमण के लिए आए थे। उनका नाम सम्भवतः मिस्टर गौडफ्रे था। मैं देहली से उनके साथ गया। हरिद्वार स्टेशन से कनखल तक घोड़ा गाड़ी में गए। कनखल पहुँच कर जब मिस्टर गौडफ्रे ने रेत और पत्थर के रास्ते पर दृष्टि डाली तो घबरा गए, उनकी आयु लगभग ५० वर्ष की होगी। वह कोट, पैण्ट और अंग्रेजी टोपी पहिने हुए थे। मैंने उनकी घबराहट देखकर घोड़ा गाड़ी वाले को गुरुकुल चलने के लिये पूछा, पर वह तैयार न हुआ। उस गहरी रेत और उन भारी-भारी गोल पत्थरों पर से सवारी को खींच ले जाना गऊ के जायों के बस की ही बात थी। घोड़ा ऐसी जगह जवाब दे जाता है। मि० गौडफ्रे ने भी जब यह लाचारी देखी तो हिम्मत बाँध कर पैदल जाने को तैयार हो गए और आलंकारिक भाषा में कह सकते हैं कि उस रेत और पत्थर के दरिया में अपनी पैदल किश्ती छोड़ दी। हम लोग चल दिए।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मिस्टर गौडफ्रे चल तो दिए, परन्तु उन पर परेशानी इस बुरी तरह सवार थी कि चुपचाप चले जा रहे थे। बार-बार पसीना आता था, जिसे रूमाल से पोंछते जाते थे। मैंने कई बार बात में लगाने की कोशिश की, किन्तु वह चुप थे। मैं समझ गया कि आज एक बुजुर्ग पर बहुत कठोरता हो गई। जब गुरुकुल पहुंचे तब काफी दिन चढ़ चुका था। स्नानादि की व्यवस्था करके मैं चला गया और फिर लगभग एक घंटे के पीछे वापिस आया तो देखा कि मिस्टर गौडफ्रे वाटिका में टहल रहे हैं। मेरे जाते ही उन्होंने कहा—पंडित जी, मैं रास्ते में आपसे बहुत नाराज था, परन्तु यहाँ आकर और इस जगह को देखकर मेरी सब थकान उतर गई और अब मैं आपका धन्यवाद करता हूँ कि आप मुझे ऐसे स्वर्गीय स्थान में ले आए।

——

१६. प्राचीन और नवीन का संघर्ष

इन संस्मरणों से मैंने यथाशक्ति अपने व्यक्तित्व को गौण रखने का यत्न किया है। इस घटना-चक्र में वस्तुतः वह था भी गौण ही। जिस घटना-चक्र की यह सच्ची कहानी है, उसके मुख्य पात्र पिता जी थे। सहायक पात्र अवस्थानुसार बदलते रहे। पिताजी का जीवन एक अत्यन्त प्रगतिशील जीवन था। शायद ही कोई पाँच साल ऐसे हों, जिन में उस जीवन की दृश्यावली में पूरा परिवर्तन न हो गया हो। दृश्य निरन्तर बदलते जाते थे और सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि वह परिवर्तन पिता जी की ही इच्छा-शक्ति और प्रयत्न से होते थे। पिता जी परिस्थितियों को पैदा करते थे, उनके बहाव में नहीं थे। हम दोनों भाई उनके चलाए हुए घटना प्रवाह में काठ की तरह तैर रहे थे।

अब मैं जिस घटना का विवरण देने लगा हूँ उसमें पाठक थोड़ा सा भेद पाएंगे। उस में मुझे कुछ आप-बीती सुनानी पड़ेगी। इस भेद का कारण यह है कि गुरुकुल की चिकित्सा-प्रणाली में जो परिवर्तन हुआ उसको मेरे जीवन की एक घटना से प्रबल प्रेरणा मिली है।

उस समय मेरी आयु १४ साल की होगी। इन संस्मरणों में इससे पूर्व मैं बतला चुका हूँ कि बचपन में मैं बहुत बीमार रहा। गुरुकुल में प्रवेश के समय मैं उन बच्चों में गिना जाता था जिनके शरीर निर्बल थे। गुरुकुल में व्यायाम और सात्विक भोजन से मेरा शरीर पुष्ट होने लगा। सब प्रकार के खेलों में मैं साधारण रूप से अच्छा समझा जाता था। कुश्तियों में ब्रह्मचारियों में शायद मेरा नम्बर पहला था। शायद शब्द मैंने इसलिए लगा दिया कि उस समय के मेरे साथियों में से यदि कोई मेरी स्थापना को गलत समझें तो मैं इसे एकदम वापस ले लूँगा। शरीर हल्का होने के कारण मुझे भारी शरीर वालों से कुश्ती लड़ने में बहुत सहूलियत रहती थी। बिजनौर जिले के एक वकील थे, जिनका नाम चौधरी नारायणसिंह था। वह बरसात के दिनों में हम लोगों को कुश्ती सिखाने आया करते थे। मैं उनका

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रधान शिष्य था। कुश्ती ने मेरे शरीर को मोटा होने से बचाया और मजबूत बना दिया।

मेरी ऐसी शारीरिक दशा थी, जब मलेरिया ने मुझे दबा लिया। हर दूसरे रोज जाड़े के साथ बुखार आने लगा। उस समय की प्रचलित पद्धति के अनुसार बुखार को व्यायाम से दबाने की चेष्टा की गई, उसके निष्फल होने पर कुछ दिनों तक दूध में घी डालकर दिया गया, तब भी बुखार न टूटा तो पिटारी की गोलियों का प्रयोग किया गया परन्तु मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की। उन दिनों डाक्टर सुखदेव जी गुरुकुल में आ चके थे, परन्तु जहाँ तक मुझे याद है अभी गुरुकुल के चिकित्सक नहीं बने थे। उन्हें मेरी दशा पर तरस आया तो उन्होंने प्रधान जी से कहा कि 'इन्द्र को मलेरिया बुखार आ रहा है, इसे जब तक कुनीन न दी जायेगी, बुखार का टूटना असम्भव है।' प्रधान जी ने इस बात से सहमत होकर आचार्य जी से सलाह की। आचार्य जी को मुझ से बहुत प्रेम था। उन्होंने पिता जी को जो उत्तर दिया वह मुझे अब तक याद है। उन्होंने कहा—"लड़के को कुनीन देने से तो यह अच्छा है कि उसे जहर दे दिया जाए।" इस पर पिता जी चुप हो गये, परन्तु डाक्टर सुखदेव जी चुप नहीं हुए, उन्होंने कुनीन देने का आग्रह जारी रखा। जो लोग डाक्टर सुखदेव जी को जानते है, उन्हें विदित है कि अपनी धुन में रहना और अपनी बात पर अड़ना उनके चरित्र का प्रधान अंग है। जिन की दृष्टि में डाक्टर सुखदेव जी अच्छे है वे उपर्युक्त विशेषता को चरित्र बल के नाम से पुकारते हैं, और जिन्हें वे अच्छे नहीं लगते, वे इसी विशेषता को उनका दोष मानते हैं। सो डाक्टर जी अड़ गए और यह नोटिस दे दिया कि यदि इन्द्र को एक बारी पर और बुखार आएगा तो मैं उसे कुनीन अवश्य दूँगा, चाहे उसका परिणाम कुछ ही हो। पिताजी ने डाक्टर जी का यह दृढ़ निश्चय आचार्य जी को बतला दिया, और साथ ही अपनी सम्मति भी प्रकट कर दी। चैलेन्ज मिलने पर आचार्य जी ने अपनी दवा की मात्रा बढ़ा दी, जिसका परिणाम यह हुआ कि बुखार भी अभूतपूर्व प्रकम्पन और गर्जन के साथ चढ़ा। टैम्प्रचर १०५ से ऊपर पहुँचा। उस बुखार ने डाक्टर जी को आचार्य जी पर पहली विजय प्राप्त करने का अवसर दिया। १०५ दर्जे की दशा में मेरे इलाज का उत्तरदायित्व डाक्टर जी को दे दिया गया। बुखार उतर जाने पर डाक्टर जी ने पहला काम यह किया कि मुझे मगनेशिया साल्ट की एक जबरदस्त खुराक दी, जिस से मेरा पेट खूब साफ हो गया। बुखार की बारी के दिन ब्राह्म-मुहूर्त से ही मुझे कुनीन मिक्स्चर के डोज मिलने शुरू हो गए। पूरी तरह याद नहीं कि कितनी कुनीन मिली। शायद डाक्टर जी को याद हो। इतना ही याद है कि कानों ने काम देना बिल्कुल बन्द कर दिया और सारे शरीर में कुनीन की गर्मी बुखार की तरह फैली हुई प्रतीत होती थी। मेरी अपनी दशा तो जैसी थी, वैसी थी ही, बेचारे डाक्टर जी की दशा देख कर मुझे बड़ी दया आ रही थी। वह मानों डाक्टरी का इम्तहान दे रहे थे। बड़े पण्डित जी, भंडारी जी और कुनीन विरोधी दल के अन्य सब सदस्य बड़ी कड़ी नजर से कुनीन के इस परीक्षण के फल की प्रतीक्षा कर रहे थे। बुखार दोपहर के पश्चात् आता था। डाक्टर जी थर्मामीटर हाथ में लिए मेरे पास बैठे थे। ठीक समय पर सर्दी लगनी आरम्भ हो गई, और आँखें गर्म होने लगीं। यह

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बात शीघ्र ही गुरुकुल भर में मशहूर हो गई कि कुनीन की बोतल की बोतल पिला देने पर भी बुखार नहीं रोका जा सका। बुखार चढ़ गया, परन्तु तापमान १०० से अधिक नहीं बढ़ा। रात होने तक कुनीन विरोधी दल ने प्रतीक्षाकी। जब देखा कि बुखार अधिक नहीं चढ़ा तो यह कह कर सन्तोष कर लिया कि "यह तो आकस्मिक बात है कि बुखार कम आया"। मैं बतला देना चाहता हूँ कि चिकित्सा पद्धतियों के उस संघर्ष में उस समय मेरी सहानुभूति कुनीन के पक्ष में थी, क्योंकि मैं हर दूसरे रोज आने वाले बुखार से बहुत ही परेशान हो चुका था। उसकी अपेक्षा तो मुझे कोई भी बला अच्छी मालूम देती थी।

बारी के अगले दिन कुनीन का फिर उसी जोर से प्रयोग किया गया। सम्भव है कि कुछ अधिक मात्रा ही दी गई हो। उस दिन बुखार नहीं आया। मलेरिया कुनीन के आगे भाग निकला। इस सफलता ने गुरुकुल में कुनीन और उसके साथ ही एलोपैथिक चिकित्सा के पाँव फिर से जमा दिये। गुरुकुल और उसके आस-पास चिकित्सक के तौर पर डा० सुखदेव जी की धाक उसी समय से बैठ गई। यह प्राचीनता के गढ़ में नवीनता के प्रवेश की दूसरी घटना थी।

आगे चलने से पहले यहाँ पं० गंगादत्त जी के और डाक्टर सुखदेव जी के संघर्ष की एक और बात भी सुना देता हूँ। डाक्टर जी पैदायशी प्रचारक (मिशनरी) हैं। कोई न कोई धुन उन पर हमेशा सवार रहती है। उन दिनों कुनीन प्रचार के कार्य में सफलता हो जाने पर, उन्हें दूसरी धुन यह सवार हुई कि गुरुकुल के मेहतरों को अपनाया जाय। डाक्टर जी उनके घरों में जाकर सफाई का उपदेश देने लगे, और उनके बच्चों को पढ़ाने का उपक्रम कर दिया। इस पर विरोध का जो तूफान उठा वह कुनीन-विरोधी आन्दोलन से भी बड़ा था। अध्यापकों में ब्रह्मचारियों में और नौकरों तक में इसकी चर्चा होने लगी, उस चर्चा में डाक्टर जी के विरुद्ध उचित; अनुचित सभी तरह की बातें कहीं गईं। पिताजी पर आचार्य जी तथा अन्य कार्यकर्त्ताओं की ओर से जोर डाला गया कि वह डाक्टर जी को इस कार्य से रोकें। पिताजी ने स्पष्ट उत्तर दिया कि वह डाक्टर जी के कार्य को धर्मानुकूल और आवश्यक मानते हैं, इस कारण उन्हें रोकने की जरूरत नहीं समझते। यह संघर्ष कई महीनों तक, सम्भवतः डेढ़ दो साल तक चला। धीरे-धीरे ठंडा होने लगा और अन्त में न केवल शान्त हो गया, अपितु दलितोद्धार के पक्ष में प्रबल आन्दोलन के रूप में परिणित हो गया जिसमें ब्रह्मचारियों की सहानुभूति भी सम्मिलित थी।

गुरुकुल के प्रारम्भिक प्रास्पेक्टस में यह विचार स्पष्ट रूप में लिखा गया था कि गुरुकुल में भारतीय विद्याओं के साथ-साथ पश्चिम की नवीन व्यावहारिक विद्याओं की शिक्षा भी दी जायेगी। इस कारण गुरुकुल में पूर्व और पश्चिम की उपादेय बातों के समावेश की भावना नई नहीं थी। पिताजी का इससे पूर्व का सारा जीवन इतना प्रगतिशील था कि उसमें अपरिवर्तनवादिता के लिये कोई गुंजाइश नहीं थी। फिर भी प्रारम्भिक वर्षों में गुरुकुल में इतना विचार संघर्ष हो गया। इसका मुख्य कारण यह प्रतीत होता है कि शुरू में पिताजी को जो सहायक मिले, उनमें गुरुकुल को चलाने की अन्य बहुत-सी योग्यताएँ होते हुए भी उनके दृष्टि-क्षेत्र बहुत संकुचित थे। आचार्य गंगादत्त जी एक तपस्वी विद्वान् थे। ब्रह्मचर्य में उनकी दृढ़ निष्ठा थी। जब तक वह गुरुकुल में आचार्य रहे, अपनी सम्मति के अनुसार ब्रह्मचारियों के हित

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चिंतन और चरित्र-निर्माण का भरसक यत्न करते रहे। इन अर्थों में वे सच्चे आचार्य थे। स्वयं सदाचारी थे और ब्रह्मचारियों को सदाचारी बनाना चाहते थे। व्यायाम के वह पुजारी थे। इन सब गुणों के साथ उनमें एक विशेषता यह थी कि उनका दृष्टिकोण परिमित था। परिस्थितियों के साथ मेल करने के लिये आवश्यक परिवर्तन करना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। इस कारण जब भी कोई नवीन वस्तु गुरुकुल में प्रवेश करने लगती थी, तब आचार्य जी उसे सन्देह की दृष्टि से देखते थे। पिताजी आचार्य जी का आदर करते थे, और उनसे स्नेह भी करते थे। यथासम्भव वह किसी बात में भी उनकी सम्मति के विरुद्ध नहीं चलना चाहते थे, परन्तु जब कोई परिवर्तन आवश्यक हो जाता था तो आचार्य जी की अनिच्छा को काफी रियायत देकर, कुछ समय के पश्चात् परिवर्तन हो जाने देते थे। कभी-कभी तो बहुत ही छोटी-सी बात पर मतभेद खड़ा हो जाता था। एक बार यह विचार हुआ कि हमें साइंस के कुछ सिद्धांत बतलाये जाएँ। एक अध्यापक ने साइंस की प्राइमर लेकर मौखिक रूप से ही यह समझाया कि पानी दो गैसों के मिलने से बनता है। जब हमने आश्रम में जाकर इस बात की चर्चा की तो संस्कृत के अध्यापक-मंडल की ओर से घोर विरोध किया गया और कहा गया कि जल तो पदार्थ है, वह दो गैसों से कैसे बन सकता है। इसी आधार पर साइंस की पढ़ाई का विरोध बहुत दिनों तक होता रहा।

उन दिनों का एक छोटा सा चुटकुला याद आता है। वह भी लिख देता हूँ। एक पंडित जी थे जिन्होंने व्याकरण और धर्मशास्त्र तो पढ़ा था परन्तु साहित्य से अनभिज्ञ थे। एक दिन हम लोगों से कहने लगे कि नवीन संस्कृत-साहित्य बिल्कुल नहीं पढ़ना चाहिये, क्योंकि वह शृंगाररस से पूर्ण है। मैंने कहा—पंडित जी सारा नवीन संस्कृत साहित्य खराब नहीं है। दृष्टान्त के लिए वेणीसंहार को ले लीजिये, उसमें शृंगार का लेश भी नहीं है। इस पर पंडित जी हँस कर बोले—वाह, इसके तो नाम से ही शृंगार प्रकट होता है, क्योंकि नाम ही वेणीशृंगार है। इस पर ब्रह्मचारी हँस पड़े। पंडित जी ने शायद हमारे हँसने से भी वही परिणाम निकाला होगा कि वेणीशृंगार जैसे अश्लील नाटक के पढ़ने से इनके दिमाग खराब हो गए हैं।

———

१७. सरकारी कोप की घटा

मैं इससे पहले के परिच्छेदों में बतला आया हूँ कि बंग-विच्छेद के दिनों से ही गुरुकुल काँगड़ी के सिर पर सरकारी कोप के काले बादल घिर आये थे। सरकार के सन्देह के कई कारण थे। गंगा के उस पार, दुनियां से अलग-थलग, सर्वथा स्वतन्त्र उपनिवेश के रूप में गुरुकुल सिर उठाये खड़ा था। गुरुकुल विश्वविद्यालय भारतवर्ष में उस समय एकमात्र ऐसा शिक्षणालय था जो किसी प्रकार भी सरकार के नियन्त्रण में नहीं था। गुरुकुल के अधिकारी सरकारी अफसरों की खुशामद नहीं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करते थे और गुरुकुल के छात्र अंग्रेजों को सलाम करना नहीं जानते थे। उन दिनों हमारा राजनीतिक आन्दोलन प्रारम्भिक अवस्था में था। शासकों के दिमाग अभी उसे समझ नहीं पाये थे। अभी उनकी मानसिक अवस्था फ्रांस के राजा १६ वें लुई जैसी थी। जब फ्रांस में क्रांति का सूत्रपात हुआ और पहली बार पेरिस की जनता ट्यूलरीज के महलों के नीचे इकट्ठी हो कर 'भूख,भूख' का शोर मचा रही थी और सम्राट से रोटी मांग रही थी, तब लुई ने वजीर से कहा था—वह क्या शोर मच रहा है ? क्या यह बगावत है ?

वजीर ने उत्तर दिया—'नहीं महाराज ! यह बगावत नहीं, यह क्रांति है।'

उस समय तक भारत के शासक यही समझ रहे थे कि बंगाल और पंजाब में जो तूफान उठा है। वह गुलाम भारतवासियों की बगावत है, इस कारण वे समझते थे कि इन बागियों के दिमाग में से सलाम करा कर बगावत को निकाला जा सकता है। इस प्रसंग में मैं एक छोटी सी आप-बीती सुना दूँ तो अनुचित न होगा।

उस वर्ष हम लोग सरस्वती यात्रा के लिये धर्मशाला के पहाड़ पर गये थे। ब्रह्मचारियों के साथ प्रधान जी (पिता जी) के अतिरिक्त कई प्रसिद्ध आर्य-समाजी भी थे। एक दिन प्रातः काल के समय कुछ विद्यार्थी छावनी की सड़क पर घूमने के लिए जा निकले। हम लोगों के साथ अधिष्ठाता के रूप में डाक्टर सुखदेव जी थे। ब्रह्मचारियों के सिर नंगे थे और हाथों में डण्डे थे। हम लोग बातें करते हुए जा रहे थे कि सामने से दो गोरे घुड़सवार आते दिखाई दिए। जब वे पास आए तब हम सड़क के एक किनारे हाकर चलने लगे और समझा कि हम ने बीच का रास्ता छोड़ कर शिष्टाचार का परिचय दे दिया है। परन्तु गौरांग जाति के उन प्रतिनिधियों ने वैसा नहीं समझा। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब मैंने देखा कि एक गोरे ने अपना घोड़ा मध्य रास्ते को छोड़ कर मेरी ओर बढ़ा दिया है। मैं यह अद्भुत बात देख कर खड़ा हो गया। गोरे का घोड़ा मेरे इतने पास आ गया था कि घोड़े की थूथनी का साँस मेरे शरीर को छू रहा था। मैं विस्मित होकर गोरे के मुँह की ओर देखने लगा। वह शायद आशा रखता था कि मैं उसकी और उसके घोड़े की शक्ल देखकर या तो भाग खड़ा हूँगा या जमीन पर नाक रगड़ने लगूंगा। परन्तु मैंने वैसा कुछ भी नहीं किया और जहाँ का तहाँ खड़ा रहा। इस पर अत्यन्त क्रोध भरे स्वर से उसने कहा—'सलाम करो, सलाम !'

मैंने वहीं खड़े-खड़े उत्तर दिया—'क्यों सलाम करें ?'

इस उत्तर से और भी भड़क कर गोरे ने अपने घोड़े को और भी आगे बढ़ाते हुए अंग्रेजी में कहा—'तुम्हें चाहिए कि हरेक अंग्रेज को सलाम करो।'

घोड़े का मुँह बिल्कुल मेरी छाती से लग गया था। पर मैं वहीं अचल खड़ा रहा। मैंने शांत भाव से उत्तर दिया—"ऐसा कोई कानून नहीं जो हम से जबरदस्ती सलाम करा सके।"

गोरे ने फिर कहा—'तुम सलाम नहीं करेगा ?'

मैंने उत्तर दिया—नहीं।

अब गोरे के सामने दो रास्ते खुले थे। या तो वह घोड़ा मुझ पर चढ़ा देता अथवा हार मान कर, सलाम लिए बिना ही अपना रास्ता नापता। लगभग एक मिनट

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तक मैं, गोरा और उसका घोड़ा उसी स्थिति में खड़े रहे। मैं और मेरे सब साथी इस प्रतीक्षा में रहे कि अब क्या होता है। अन्त में गोरा केवल 'बुली' साबित हुआ और घोड़े की बाग खींच कर यह कहते हुए वहाँ से चल दिया—'टुम सलाम नहीं करटा, अच्छा डेखा जायगा।'

यह मैंने उस समय की अंग्रेजी मनोवृत्ति का एक नमूना दिया है। उपर्युक्त घटना उस समय गुरुकुल से निकलने वाले 'वैदिक मेगजीन' नामक पत्र में प्रकाशित की गई थी और सिपाही की शिकायत धर्मशाला के कमान्डिंग आफिसर के पास भी भेजी गई थी। कमान्डिंग आफिसर ने घटना पर दुःख प्रकट करते हुए गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता को (पिता को) जो पत्र लिखा, उसमें यह आशा दिलाई थी कि सिपाही को चेतावनी दे दी जायेगी। यह सब केवल रिवाज ही था। क्योंकि कुछ दिन पीछे धर्मशाला में ही हमारे एक दूसरे साथी के साथ फिर वैसी ही घटना घटित हुई।

नौकरशाही शासन में जो झुकना या सलाम करना नहीं जाने, वह सन्देह की दृष्टि से देखा जाता था। गुरुकुल के अधिकारियों और ब्रह्मचारियों का सबसे बड़ा दोष यही था कि वे न सरकार से कुछ माँगते थे और न अफसरों की दहलीज पर सिर झुकाना आवश्यक समझते थे।

गुरुकुल पर सरकार की यह संदेह-दृष्टि अनेक बातों में प्रकट होती थी। गुरुकुल में दर्शक रूप से आने वाले खुफिया पुलिस के ऊँचे अधिकारियों का ताँता लगा रहता था। जब कभी गुरुकुल के ब्रह्मचारी सरस्वती यात्राओं पर निकलते थे, तब उनके पीछे-पीछे गुप्तचर बुलडॉग की तरह लगे रहते थे और गुरुकुल के जो कार्य सरकार के सहयोग की अपेक्षा करते थे, उनमें रोड़े अटकाये जाते थे।

एक बार की बात है, शायद सितम्बर का महीना था, पिता जी स्वास्थ्य-सुधार के लिए क्वेटा गए हुए थे। गुरुकुल काँगड़ी से तीन मील की दूरी पर चण्डी पहाड़ के नीचे बिजनौर के कलक्टर, जिनका नाम शायद फोर्ट था डेरा डाले पड़े थे। गुरुकुल में पिता जी की अनुपस्थिति के कारण स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी अथवा स्वर्गीय प्रो० बालकृष्ण जी में से कोई महानुभाव मुख्याधिष्ठाता का कार्य कर रहे थे। गुरुकुल में खबर पहुँची कि सरकार को गुरुकुल में हथियारों के गुप्त स्टोर होने का अन्देशा है। इस कारण गुरुकुल की तलाशी लेने के लिए और यदि आवश्यकता हो तो अन्य कठोर कार्यवाही करने के लिए स्वयं कलैक्टर साहब तशरीफ लाए हैं। सम्भव है दो चार दिन में तलाशी हो जाय। शस्त्रास्त्रों का कोई गुप्त स्टोर न होते हुए भी समाचार बहुत सनसनीपूर्ण था जिससे प्रभावित होकर गुरुकुल कार्यालय से पिता जी को इस आशय का तार दिया गया कि स्थिति गम्भीर है, जल्दी आइये।

पिता जी देखने से खूब लम्बे-चौड़े और हृष्ट-पुष्ट होते हुए भी कई रोगों के शिकार बने हुए थे। बवासीर का रोग उन्हें पैतृक मिला था। प्रौढ़ावस्था में हर्निया की शिकायत हो गई थी और साथ ही निरन्तर मानसिक परिश्रम करने के कारण आधे सिर का दर्द रहने लगा था। कई वर्षों तक तो पिता जी ने न रोग की परवाह की, और न चिकित्सकों की। परन्तु जब अन्त में निरन्तर सिर दर्द के कारण कार्य करना भी असम्भव हो गया, तब एक-दो महीने तक विश्राम करने के लिए क्वेटा चले गए थे। वहाँ पहुँचे अभी सम्भवतः १० दिन भी नहीं हुए होंगे कि गुरुकुल से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उपर्युक्त तार पहुँच गया,जो सैकड़ों मीलों का सफर करा कर और सिंध की गरम हवा और रेत का स्नान करा कर तीसरे दिन पिता जी को हरिद्वार खींच लाया।

क्वेटे से वापिस आने पर पिता जी को जब समाचार मालूम हुए तो उन्होंने अपने स्वभावानुसार शेर की गुफा में पहुँच कर उससे दो-दो बातें करने का निश्चय किया। उसी रोज अथवा उस से अगले रोज आप गुरुकुल के सवारी बैल-तांगे में बैठ कर कलैक्टर के कैम्प पर जा पहुँचे और मिलने के लिए अपना कार्ड भेज दिया। कलैक्टर, जो शायद उसी समय तलाशी के वारंट पर हस्ताक्षर करके चुका था, दुविधा में पड़ गया। पुलिस तो ने यह रिपोर्ट दी थी कि महात्मा मुन्शीराम गुरुकुल से चले गए हैं और उनके स्थान पर अनुभवहीन क्रांतिकारी नौजवान गुरुकुल का संचालन कर रहे हैं। यदि गुरुकुल की तलाशी लेनी है तो यही अच्छा मौका है तथा भविष्य के लिए इस खतरनाक संस्था से छुटकारा पाने का भी यही अवसर है। इस रिपोर्ट के आधार पर ही सब तैयारी की गई थी। ऐसे समय अकस्मात् पिता जी के नाम का विजिटिंग कार्ड प्राप्त करके कलैक्टर थोड़ी देर के लिए चक्कर में आ गया कि क्या करें ? पुलिस की दौड़ लेकर गुरुकुल की ओर कूच करें या उसके गवर्नर से बातचीत करने में समय व्यतीत करें।

अंग्रेज, चाहे वह कैसा भी हो, बंधे हुए रिवाजों का मानने वाला होता है। इसे उसके स्वभाव का दोष कहो या गुण, है यह उसकी प्रकृति। एक सज्जन ने विजिटिंग कार्ड भेजा है तो प्रचलित रिवाज कहता कि उसे मिलने के लिए बुलाना चाहिए। मिस्टर फोर्ड ने भी पिता जी को मिलने के लिए अपने खेमे में बुला लिया।

उस बातचीत में क्या हुआ, यह लिखने की आवश्यकता नहीं है। इतना बतला देना पर्याप्त है कि उसका परिणाम क्या हुआ। उस दिन बातचीत में जो बीज-पात हुआ, वह कुछ वर्षों में भारत के वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड द्वारा गुरुकुल कांगड़ी की तीर्थ यात्रा के रूप में फलीभूत हुआ। वायसराय के गुरुकुल आगमन को शायद कुछ लोग सरकारी अफसर द्वारा एक शिक्षण संस्था के निरीक्षण का रूप दें, परन्तु जिन लोगों ने उस घटना को आदि से अन्त तक देखा था, उन्हें यह विश्वास हो गया है कि वायसराय का गुरुकुलागमन केवल सरकारी दौरे का हिस्सा नहीं था, प्रत्युत उसमें कुछ प्रयोजन और भावुकता का अंश भी था।

पाठक उस भावुकता का रूप और कारण जानने के लिए अवश्य उत्सुक होंगे। सम्भव है मेरे दिये हुए समाधान में से पाठकों को उस पक्षपात की बू आए जो स्वभावतः किसी पुत्र को अपने महान् पिता के लिए होनी चाहिए। इस खतरे को उठाकर भी मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि इसका मुख्य कारण पिता जी का गौरवयुक्त और आकर्षक व्यक्तित्व ही था। विदेशियों पर उनके व्यक्तित्व का अद्भुत असर पड़ता था। मेरे पास उनके कई अंग्रेज, अमेरिकन तथा अन्य विदेशी मित्रों और भक्तों के बीसियों पत्र संभाल कर रक्खे हुए हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि वे लोग निजी रूप में भी पिताजी के प्रति गहरे प्रेम और भक्ति की भावना रखते थे। युक्तप्रांत के उस समय के गवर्नर लार्ड मेस्टन (जो उस समय सर जेम्स मेस्टन थे) मि. मैकडानल्ड, जो उस समय अंग्रेजी पार्लियामेंट में मजदूर दल के नेता थे। (और पीछे इंगलैंड के प्राइम मिनिस्टर बने) दीनबन्धु सी० एफ० एण्डरूज तथा प्रसिद्ध अमेरिकन पत्रकार मि० फैल्प्स आदि के नाम गुरुकुल का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पुराना इतिहास जानने वालों को विदित ही हैं। इन प्रसिद्ध नामों के अतिरिक्त कुछ अन्य दृष्टान्त भी ऐसे थे जिनसे पिताजी का व्यक्तिगत आकर्षण और भी अधिक स्पष्टता से प्रतीत होता था।

ऐसा एक दृष्टान्त मैं यहाँ देता हूँ। उन्हीं दिनों की बात है कि रुड़की से एक नए ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट आए। वह आयरलैंड के सम्भवतः उत्तरीय आयरलैंड के निवासी थे। उनका नाम लिखना यहाँ आवश्यक नहीं। वह दौरे पर हरिद्वार पहुँचे तो शायद एक विद्रोही संस्था को देखने की उत्सुकता से गुरुकुल भी गये, वहाँ मुख्याधिष्ठाता के बंगले पर जाकर लगभग एक घन्टे तक उनसे बातचीत की। उस बातचीत का परिणाम यह निकला कि वे सज्जन पिता जी के शिष्यों में शामिल हो गए। उनके हरिद्वार के दौरों की संख्या बढ़ गई और हरेक दौरे में गुरुकुल का एक चक्कर लगाना आवश्यक सा हो गया। उनकी मिलनसारी और खुशमिजाजी का एक नमूना काफी मनोरंजक है। अप्रासंगिक होते हुए भी मेरे लिए उसके लिखने का प्रलोभन संवरण करना कठिन है। उन्हें हिन्दुस्तानी में बोलने का बहुत शौक था। उन दिनों गंगा के पुल का ठेका एक ऐसे सज्जन के हाथ में था, जो गुरुकुल के परम हितैषी थे, किन्तु दैववशात आँखों से भैंगे थे। आयरिश महोदय जब कभी ठेकेदार की चर्चा करते, तब कहा करते थे कि मुझे बचपन में भैंगे आदमी से बहुत डराया जाता था। इसलिए अब भी मुझे ठेकेदार को देखकर डर लगता है। इधर गुरुकुल में एक प्रोफेसर थे, जो प्रकृति देवी की कृपा से काने थे। वह किसी कारण से गुरुकुल से रूठ गए और हरिद्वार में बैठकर गुरुकुल के विरुद्ध पैम्फलेट आदि द्वारा प्रचार का कार्य करने लगे। उन्हीं दिनों आयरिश महोदय गुरुकुल आए। उन से एकाध प्रोफेसर की चर्चा हुई, तो उन्होंने हिन्दुस्तानी में कहा—अब मुझे ठेकेदार से डर नहीं लगता क्योंकि मैंने यह भी सुना है कि—

ऐंचाताना करे पुकार,
मैं काने से मानी हार।

बात मजेदार और लगती हुई थी। इसलिए याद रह गई। अब-प्रसंगागत बात सुनिए—

एक दिन वे आयरिश महोदय पिताजी के पास आए और कहा कि मैं विवाह करने के लिए कुछ महीनों की छुट्टी पर जा रहा हूँ। मुझे कुछ सन्देश दीजिए। पिता जी ने कहा कि इस समय तो मैं तुम्हारे लिए केवल मंगलकामना करता हूँ। जब तुम अपनी अर्धांगिनी सहित वापिस आओगे सन्देश उस समय दूँगा। वह सज्जन विवाह के लिए चले गए। कई महीनों के पश्चात् जब पत्नी सहित लौटे तो रुड़की से पहला अवसर तलाश करके गुरुकुल आए और पत्नी सहित पिताजी के पास पहुँचे। पिता-जी ने उन्हें संयम और निरामिष भोजन का उपदेश दिया। वह आयरिश सज्जन क्रम से कलैक्टर के पद पर पहुँच कर कमिश्नर तब बने और युक्तप्रांत के अनेक राजकीय अधिकारों पर रहे। इस सम्पूर्ण समय में वह निरन्तर पिताजी से पत्र-व्यवहार करते रहे जिस में अपनी प्रेम और भक्ति की भावना को सदा प्रकट करते रहे।

पिताजी के बलिदान के बाद एक बार अखबारों में पढ़ा था कि कहीं के कमिश्नर होते हुए उस आयरिश महानुभाव ने एक फैसले में इलाहाबाद हाई कोर्ट

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के जजों को किसा मुकदमें का सही फैसला न करने पर जोरदार फटकार बतला दी थी, जिसके कारण नौकरशाही प्रणाली के सिद्धान्त के अनुसार उन्हें समय से पहले नौकरी से रिटायर हो जाना पड़ा। हम लोगों को उनके इस प्रकार रिटायर किए जाने पर कोई आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि हम तो इस पर आश्चर्यित थे कि वे इतने दिनों तक नौकरशाही मशीन के पुर्जे कैसे बने रहे ?

दीनबन्धु सी० एफ० एन्डरूज से पिता जी का जो प्रेममय सम्बन्ध था, वह लोक-विदित है। लार्ड मेस्टन पर गुरुकुल का और पिता जी का कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा था कि लोग उन्हें गुरुकुल वाला कहने लगे थे।

---

१८. गुरुकुल में वायसराय का आगमन

पिताजी के मिस्टर फोर्ड से मिलने के पश्चात् घटनाचक्र बड़े वेग से उलटी ओर चलने लगा। मिस्टर फोर्ड से मिलने के कुछ ही दिन बाद कुछ मित्रों ने बीच में पड़कर पिताजी की युक्तप्रांत के गवर्नर पर जेम्स मेस्टन से मुलाकात करा दी। सर जेम्स मेस्टन ने गुरुकुल देखने की उत्सुकता प्रकट की या गुरुकुल की ओर से दिये हुए निमन्त्रण को स्वीकार किया, यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है। सम्भवतः दोनों ही काम एक ही समय में हो गए। फलतः सर जेम्स मेस्टन धूम-धाम से गुरुकुल पधारे। उनका शानदार स्वागत हुआ। जिसके उत्तर में उन्होंने गुरुकुल के प्रति अपना संतोष और कुछ दबा हुआ भक्ति-भाव प्रकट किया। व्यक्तिगत रूप से पिताजी के प्रति सर जेम्स मेस्टन ने विशेष आदर-भाव प्रकाशित किया।

यह सिलसिला और आगे चला। सर जेम्स ने इशारा दिया कि क्यों न आप वायसराय को भी निमन्त्रित करें, क्योंकि लार्ड चेम्सफोर्ड (उस समय के वायसराय) शिक्षा के बहुत प्रेमी हैं, वह गुरुकुल आना पसन्द करेंगे। यह इशारा पाकर पिता जी ने लार्ड चेम्सफोर्ड को गुरुकुल आने का निमन्त्रण भेजा, जो तत्काल स्वीकार कर लिया गया। तदनुसार एक दिन प्रातः काल हरिद्वार से राजसी महन्तों के सजे हुए हाथियों पर सवार होकर लार्ड चेम्सफोर्ड, लेडी चेम्सफोर्ड, सर जेम्स मेस्टन और अन्य बहुत से छुटभइये अफसर गुरुकुल भूमि में पहुँचे। लार्ड चेम्सफोर्ड और उनकी पार्टी का गुरुकुल की ओर से हार्दिक स्वागत किया गया। संस्था के सभी मुख्य-मुख्य भाग उन्होंने पैदल घूम कर देखे। अन्त में उन्हें पुण्य-भूमि के महाविद्यालय भवन के सामने सेमल के पेड़ के चबूतरे के नीचे संस्कृत में अभिनन्दन-पत्र पेश किया गया। उत्तर में आपने भी गुरुकुल के आदर्शों की और पिताजी के व्यक्तित्व की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की।

वायसराय की गुरुकुल यात्रा के समय मैं गुरुकुल की शिक्षा समाप्त कर चुका था और वहीं उपाध्याय (शिक्षण) का कार्य करता था। उस समय दो-तीन घटनाएँ मुझे स्मरण हैं, जो बहुत छोटी-छोटी हैं परन्तु समय और प्रवृत्तियों को सूचित करने वाली अवश्य हैं। इसलिए उनका उल्लेख कर देता हूँ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पहली घटना भोजन भण्डार के चबूतरे पर हुई। चबूतरे के पास पहुंच कर वायसराय और उनकी पत्नी को सूचना दी गई कि इससे आगे जूता नहीं जा सकता और साथ ही प्रार्थना की गई कि भंडार देखने की कृपा कीजिए। क्षण भर के लिए तो वे दुविधा में पड़ गये कि किन शब्दों में इन्कार करें, क्योंकि नंगे पाँव तो चलना उनके लिए असम्भव ही था। इतने में पिताजी के सेवक ने जिसका नाम चिन्ता (सिंह) था, कपड़े के बहुत से जूते लाकर दर्शकों के कदमों के आगे रख दिए और वायसराय से प्रार्थना की गई कि आप चमड़े के जूते उतार कर कपड़े के जूते पहनाने की अनुमति दीजिए। इस पर वायसराय और उनकी पत्नी ने अनुमति दे दी और उन्हीं के सेवकों ने वायसराय और उनकी पार्टी के पैरों में से चमड़े के जूते उतार कर कपड़े के जूते पहना दिए। यह अनुभव उनके लिए इतना नया और अच्छा था, कि भण्डार देखने के समय वायसराय और उनकी पत्नी हँसते और कपड़े के जूतों का आनन्द लेते रहे।

दूसरी घटना संस्कृत क्लब में हुई। ब्रह्मचारियों के संस्कृत भाषण का प्रदर्शन करने के लिए विशेष सभा की योजना की गई थी जिसमें ब्रह्मचारियों के अतिरिक्त सब उपाध्याय भी वायसराय से परिचित होने के लिए उपस्थित थे। परिचय के समय एक बहुत ही मजेदार घटना हुई, जो यदि विनोद में परिणत न हो जाती तो बहुत ही भद्दी रहती। जिस समय आचार्य रामदेव जी वायसराय को उपाध्यायों से परिचित करा रहे थे उस समय हमारे वयोवृद्ध उपाध्याय पं सूर्यदेव जी जो पिछली पंक्तियों में सबसे पीछे खड़े थे, कमरे के कोने में संकुचित होकर सभा से निकलने की चेष्टा कर रहे थे। पं सूर्यदेव जी पुराने कर्मकाण्डी थे। हम लोग ताड़ गये कि वह म्लेच्छ जाति के स्पर्श से बचने की चेष्टा कर रहे हैं। परन्तु आचार्य रामदेव जी तो धुन के पक्के थे, वह ऐसी छोटी बातों पर कहाँ दृष्टि देते थे? वह प्रयत्नपूर्वक रास्ता बनाते हुए कमरे के कोने तक वायसराय को ले गये और झट से पंडित सूर्यदेव का परिचय करा दिया। शिष्टाचार के अनुसार वायसराय सभी से हाथ मिलाते जा रहे थे। उन्होंने पंडित सूर्यदेव जी की तरफ भी हाथ बढ़ा दिया। पंडित सूर्यदेव जी दीवार के साथ खड़े थे, अतः और पीछे न हट सके, परन्तु म्लेच्छ के स्पर्श से बचने के लिए अपने हाथ को यथासम्भव पीछे ले गए। क्षण भर के लिए स्थिति बहुत गम्भीर हो गई। वायसराय का हाथ आगे बढ़ रहा है और पंडित जी हाथ को पीछे दुबकाए जा रहे हैं, इस विषम परिस्थिति को लार्ड चेम्सफोर्ड ने ताड़ लिया और अंग्रेज जाति की स्वभावसिद्ध शान्तचित्तता से उसे हल भी कर दिया। आपने एक दम आगे बढ़ कर बड़ी फुर्ती से अपने दोनों हाथों में पंडित जी का हाथ पकड़ लिया और खब जोर से हिलाकर कहा, 'वैरी ग्लैड टू सी यू' (मैं आप से मिलकर बहुत खुश हुआ)। पंडित जी को काटो तो खून नहीं, इस भ्रष्टाचार के बलात्कार को चुपचाप सहना पड़ा। वायसराय के उस कमरे से निकलते ही पंडित सूर्यदेव जी शिव-शिव कहते हुए आनन्दाश्रम की ओर भाग गये। वहाँ जाकर कपड़ों सहित गंगा में कई डुबकियाँ लगाईं। अपने शिष्य को भेजकर गोशाला से गोबर मंगाया और म्लेच्छ सम्पर्क से भ्रष्ट हुए हाथों को दसों बार गोबर से पवित्र किया।

इससे पाठक यह न समझें कि पंडित सूर्यदेव जी सर्वथा पुराने ढर्रे के पंडित थे। उनमें कई नए ढंग की बातें भी थीं। आर्ष-साहित्य के प्रौढ़ पंडित होने के साथ-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

साथ गतकाफरी के भी उस्ताद थे। काशी के पंडितों की प्रशंसा करते हुए यह भी स्वीकार किया करते थे कि स्वामी दयानन्द जी दिव्यदर्शी विद्वान् थे। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे बहुत ही भोले थे।

एक ऐसी संस्था में, जिसकी राजद्रोहियों में गिनती थी, वायसराय का आना और उस संस्था की प्रशंसा करना एक बहुत बड़ी राजनीतिक छलांग थी जिसने लोगों को आश्चर्य में डाल दिया। आर्य-समाज के भक्तों और गुरुकुल प्रेमियों का आश्चर्य सन्तोष-मिश्रित था। उन्होंने इस घटना का स्वागत किया, क्योंकि इससे एक विकट गुत्थी सुलझ गई और संस्था पर जो काले बादल छा रहे थे, वे कम-से-कम उस समय उड़ गए।

गरम राजनैतिक श्रेणी के सज्जनों ने वायसराय के गुरुकुलागमन को बहुत संदेह की दृष्टि से देखा। उन्हें इस घटना से गुरुकुल के स्वतन्त्र और राष्ट्रीय रूप को खतरा प्रतीत होता था। उन सज्जनों में लाला हरदयाल एम० ए० की टिप्पणी विशेष रूप से चुभने वाली थी। आपने एक पत्र में इस आशय का लेख लिखा था, कि जब हमने दिल्ली के कबूतर (श्री० सी० एफ० एन्डरूज) के बार-बार गुरुकुल जाने आने का समाचार पढ़ा था, तभी हम समझ गये थे कि गुरुकुल पर कोई मुसीबत आने वाली है। हमारा भय सच्चा सिद्ध हुआ। भारी अभिशाप के समान वायसराय गुरुकुल पहुँच गया।

अपनी-अपनी रुचि और प्रवृत्ति के अनुसार लोगों ने जो सम्मतियाँ बनाईं उन्हें छोड़ भी दें, तो एक विचारणीय प्रश्न अवश्य रह जाता है। प्रश्न यह है कि दोनों ओर से यह परिवर्तन इतनी शीघ्रता से कैसे हो गया? कहाँ तो गुरुकुल वालों का यह रुख कि किसी सरकारी अफसर से बात नहीं करते थे और कहाँ यह हालत कि अफसर पर अफसर चले आ रहे हैं और प्रसन्न होकर चले जाते हैं। उनका आवभगत होती है। उन्हें आलू के पकौड़ों के साथ तुलसी की चाय पिलाई जाती है और संस्कृत में अभिनन्दन-पत्र पेश किए जाते हैं। इस क्रांतिकारी मानसिक परिवर्तन का क्या कारण था?

दूसरी ओर सरकार के व्यवहार में भी कुछ कम परिवर्तन नहीं हुआ। कहाँ तो तलाशी की तैयारी हो रही थी और कहाँ सबसे बड़ा राज्य का अधिकारी निःशंक होकर गुरुकुल में घूम रहा था और प्रायः सभी चीजों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करता जाता था। ऐसा दृष्टि में आता था कि एक अधिकारी का आगमन की उससे बड़े अधिकारी के आगमन की भूमिका मात्र होता था। एक मसखरे के कथनानुसार बस अब इतनी ही कसर रह गयी थी कि महात्मा मुन्शीराम इंग्लैंड के किंग जार्ज को गुरुकुल आने का निमन्त्रण भेजें। निमन्त्रण स्वीकार तो हो ही जायेगा।

पहले मैं गुरुकुल के मानसिक परिवर्तन के सम्बन्ध में कुछ शब्द कहूँगा। पिताजी की तबियत में अपरिवर्तनशीलता का अत्यन्त अभाव था। मित्र और शत्रु उनके स्वभाव को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते थे। मित्र उसे महात्मा जी का महात्मापन कहते थे और शत्रु उसे स्वभाव की अस्थिरता का नाम देते थे। वास्तविक बात यह थी कि पिताजी को मानसिक परिवर्तन करने में प्रायः क्षण भर की भी देर नहीं लगती थी। मुझे अनेक परिस्थितियों में अन्त तक उनके पास रहने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा। मैं और मेरे जैसे और साथी आश्चर्य चकित हो कर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

देखते थे कि किसी नई घटना, नई चिट्ठी अथवा नए वक्तव्य का उनके दिल और दिमाग पर ऐसा तीव्र असर होता था कि उन के अनुयायी वहीं खड़े रह जाते थे, जहाँ पहले खड़े थे और पाँच ही मिनट में पिताजी केवल खाई नहीं प्रत्युत विचारों का बहुत बड़ा समुद्र पार करके सैंकड़ों मील आगे जा खड़े होते थे। हम लोग देखते थे कि यह क्या हुआ ? समझने में देर लगती थी, परन्तु अन्त में बात समझ में आ जाती थी, तो कोई किश्ती में बैठकर और कोई स्लीपरों के बेड़े द्वारा सरकते-सरकते उन तक पहुँचने की चेष्टा करते थे।

यह बात आकस्मिक नहीं थी। इसका मूल कारण मनोवैज्ञानिक था। कुछ लोग मस्तिष्क से सोचते और निश्चय करते हैं। उन्हें बुद्धिवादी कहा जाता है। कुछ लोग हृदय से अनुभव करते और अनुभूति के आधार पर ही इतिकर्तव्यता का निश्चय करते हैं, वे भावुकताप्रधान समझे जाते हैं। पिताजी उन व्यक्तियों में से थे जो निश्चय का अवसर आने से पूर्व और निश्चय हो जाने के पश्चात् मस्तिष्क का पूरा प्रयोग करते हैं। परन्तु निश्चय मस्तिष्क से नहीं करते, अपितु हृदय स करते हैं, जिसका दूसरा नाम—अन्तरात्मा—है। ऐसे महानुभाव विवेचना के लिए तर्क का प्रयोग करते हैं परन्तु निश्चय के लिए केवल श्रद्धा को पथप्रदर्शक मानते हैं। साधारण व्यक्ति ऐसे लोगों को पूरी तरह समझने में अपने आपको सर्वथा असमर्थ पाते हैं। साधारण व्यक्ति सोचता है कि इस भलेमानस को चिरकाल की विचार-परम्परा के अनुसार ही तो किसी निश्चय पर पहुंचना चाहिए था। परन्तु उसे क्या मालूम कि वह भला मानस एकदम श्रद्धा के विमान पर आरूढ़ होकर कहीं का कहीं पहुँच गया। पिताजी ने संन्यास लेने के समय यही घोषणा की थी कि 'मैंने अपने जीवन के सब निर्णय केवल श्रद्धा के आधार पर किये हैं। इस कारण मैं अपना नाम श्रद्धानन्द रखता हूँ।" पिताजी जिसे "श्रद्धा" नाम से पुकारते थे, महात्मा गाँधी उसे—आन्तरिक शब्द—कहते हैं।

यह थोड़ी सी मनोवैज्ञानिक व्याख्या मुझे यह समझाने के लिए करनी पड़ी, कि पिताजी के विचार इतने शीघ्र परिवर्तित से क्यों प्रतीत होने लगते थे। गुरुकुल एक स्वतन्त्र संस्था थी, अंग्रेजी सरकार से उसे कुछ लेना देना नहीं था। खुशामद करना स्वभाव के सर्वथा प्रतिकूल बात थी। इन कारणों से वर्षों तक गुरुकुल के सम्बन्ध में पिता जी ने सरकार के प्रति सर्वथा उदासीनता का भाव रखा। न गुरुकुल में सरकार की खुशामद ही सिखाई जाती थी और न राजद्रोह का प्रचार होता था। विशाल हाथी की तरह गुरुकुल अपने निर्दिष्ट मार्ग पर चला जाता था। न दाएं देखता था, न बाएं। इसी बीच में देश का वातावरण राजनीति दृष्टि से विक्षुब्ध हो गया। संसार भर के विदेशी शासनों की यह विशेषता होती है, कि उनका मन चोर की तरह सन्देहशील हो जाता है। उन दिनों भारत सरकार भी बेतरह सन्देहशील हो गई थी। पेड़ से पत्ता गिरता था तो सरकार को बम की आहट मालूम होती थी। ऐसे समय में गुरुकुल का उपेक्षा भाव सरकार को गुप्त राजद्रोह के रूप में दिखाई दिया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

पिता जी ने इस परिस्थिति को भाँप लिया, उन्हें प्रतीत हो गया कि मानसिक निर्बलता और झूठी रिपोर्टों के आधार पर सरकार के अधिकारी व्यर्थ में ही गुरुकुल पर सन्देह करने लगे हैं। इससे गुरुकुल को क्षति पहुंच सकती है। गुरुकुल की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रक्षा का वह अपना धर्म समझते थे। क्वेटे से लौट कर इतिकर्तव्यता का निश्चय करने में शायद कुछ क्षण ही लगे होंगे उन्होंने निश्चय कर लिया कि गुरुकुल की रक्षा के लिये अधिकारियों के मन में से निराधार सन्देह की भावना को निकाल फेंकना अत्यन्त आवश्यक है। अधूरापन पिता जी की तबीयत में नहीं था। कोई कार्य वे आधे दिल से नहीं करते थे, जब उन्होंने निश्चय कर लिया कि अधिकारियों के मन में से गुरुकुल के प्रति सन्देह को दूर करना है तो फिर वह बिजनौर के कलैक्टर तक रुकने वाले नहीं थे। कलैक्टर से कमिश्नर, कमिश्नर से गवर्नर और गवर्नर से वायसराय तक पहुंचने में अधिक देर नहीं लगी। परिणाम यह हुआ कि जिस गुरुकुल पर ताले लगाने के वारंटों पर हस्ताक्षर हो चुके थे उसे देखने आकर सब अधिकारियों ने उस की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की।

पिता जी ने जिस भावना से सरकारी अधिकारियों को गुरुकुल में निमन्त्रित किया उसे जो लोग नहीं समझ सके उन्होंने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार सम्मति प्रकट की।

इसी समस्या का दूसरा पहलू भी है। यह प्रश्न भी पूछा जा सकता है कि सरकार के रुख में इतना शीघ्र परिवर्तन कैसे हो गया? ऐसी कौन-सी नई बात हुई, जिससे अधिकारियों को विश्वास दिला दिया कि गुरुकुल राजद्रोही संस्था नहीं है।

सारे घटना चक्र को बहुत पास से देखने के अनन्तर मैं जिस परिणाम पर पहुंचा हूँ, वह निम्नलिखित है। वह अनुमान पर आश्रित है, इस कारण सम्भव है ठीक न हो, तो भी मैं उसे इस आशा से अंकित करता हूँ कि वह भी एक सम्भवित समाधान होने से विचारणीय है।

जब पिता जी अफसरों से मिले, तब अफसरों पर उनके व्यक्तित्व का बहुत अनुकूल असर हुआ। उनकी विशाल मूर्ति, खुली तबीयत और आदर्श प्रेम के साथ-साथ विरोध या कड़वेपन के सर्वथा अभाव को अनुभव करके अधिकारियों ने यह मानने में देर न लगाई कि गुरुकुल पर और उसके मुख्याधिष्ठाता पर सन्देह करना व्यर्थ है। इस से बिगड़ी हुई परिस्थिति शीघ्र ही शान्त हो गई, परन्तु सरकार के ऊँचे अधिकारियों ने यहीं तक सन्तोष नहीं किया। मेरी कल्पना है कि उन लोगों ने और आगे बढ़ कर गुरुकुल को अपने असर में लेने का संकल्प किया। उन्होंने सोचा होगा कि जो व्यक्ति हम से इतनी अच्छी तरह मिलता है और जिसके हृदय में अंग्रेज जाति के प्रति अणुमात्र भी कटुता नहीं है, उसे यह समझा लेना क्या कठिन है कि सरकार का सहयोग प्राप्त करने से गुरुकुल को लाभ ही होगा। सम्भव है अत्यन्त सद्भावना से प्रेरित होकर ही अधिकारियों ने ऐसा विचार किया हो। परन्तु यह असंदिग्ध है, कि एक समय ऐसा अवश्य आ गया था जब सरकार गुरुकुल को बहुत सी आर्थिक सहायता देने के अतिरिक्त गुरुकुल विश्वविद्यालय को 'चार्टर प्राप्त यूनिवर्सिटी' मानने को तयार हो गई थी। इस सम्बन्ध में काफी स्पष्टता से एक बहुत ऊँचे अधिकारी ने पिता जी को इशारा भी दिया था। जिस तीव्र उत्सुकता से सरकार ने गुरुकुल की ओर को हाथ बढ़ाया उसका एक मुख्य कारण सरकार की यह भावना अवश्य प्रतीत होती थी कि गुरुकुल का और सरकार का स्थिर गठजोड़ा हो जाय।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सरकार को इसमें सफलता नहीं हुई। उसका कारण यह था कि जिसे उन्होंने केवल बर्फ की तह समझा था, उसके नीचे कठोर चट्टान थी। पिता जी की सामाजिकता और सरलता के पीछे दृढ़ विश्वास की जो दीवार थी उसे ऊँचे अधिकारी तब तक नहीं समझ सके जब तक पिता जी ने सरकार द्वारा पेश किये हुए दोनों उपहारों को ग्रहण करने से कोरा इन्कार नहीं कर दिया। बुद्धि और श्रद्धा दोनों के सहारे पर चलने वाले व्यक्तियों के स्वभाव की यह विशेषता होती है कि वह गौण बातों में समझौते के लिए जिस शीघ्रता से तैयार हो जाते हैं मुख्य सिद्धान्त के विषय में उस से भी अधिक शीघ्रता से समझौता करने से सर्वथा इन्कार कर देते हैं। जो लोग गम्भीर दृष्टि से इसके मनोवैज्ञानिक कारणों पर विचार नहीं करते वह प्रायः उन व्यक्तियों को "अस्थिर, परिवर्तनशील, दुर्बोध" आदि शब्दों से विशेषित करने लगते हैं। वस्तुतः बात यह होती है कि, सिद्धान्तवादी मनुष्य गौण और मुख्य में भेद करना जानते हैं। गौण में समझौता करने को सदा उद्यत रहते हैं किन्तु मुख्य सिद्धान्त को आँच नहीं आने देते। पिता जी ने सरकार के हाथ में हाथ तब तक रहने दिया जब तक उन्होंने यह अनुभव नहीं किया कि गुरुकुल की अन्तरात्मा पर आघात नहीं पहुँच सकता है। ज्यों ही उन्होंने ऐसी सम्भावना को अनुभव किया त्यों ही अपना हाथ खींच लिया, उपहार लेने से इन्कार कर दिया और इस आशंका से कि निरन्तर सम्पर्क से कभी परिस्थिति अधिक न उलझ जाय, निमन्त्रणों का क्रम भी वहीं समाप्त कर दिया।

लार्ड चेम्सफोर्ड के गुरुकुलागमन के साथ अधिकारियों के आगमनों का ताँता समाप्त हो गया। गुरुकुल के अधिकारी सफल हो गए, क्योंकि गुरुकुल पर जो संदेह के बादल छा रहे थे, वह छिन्न-भिन्न हो गये। सरकारी अधिकारियों को कहाँ तक सफलता मिली यह कहना कठिन है, क्योंकि सरकार ने अपना लक्ष्य कहाँ तक रक्खा था इस का केवल अनुमान लगाया जा सकता है, निश्चय से कुछ नहीं कहा जा सकता।

---

१६. दुःखी दिल का पुरदर्द दास्ताँ

पुराने आर्यसमाजी तो शीर्षक में दिये गए नाम की पुस्तक से परिचित होंगे, किन्तु सम्भवतः नई सन्तति इसे नहीं समझ सकेगी, इस कारण इस का थोड़ा सा परिचय देना आवश्यक प्रतीत होता है। पिता जी ने यह पुस्तक उर्दू में लिखी थी। इसमें उन्होंने उन सब आक्षेपों का युक्ति और प्रमाणों से उत्तर दिया था, जो उनके तब तक के सार्वजनिक जीवन पर किये गये थे। यह तो हुआ पुस्तक का परिचय। अब आप उस के सम्बन्ध में मेरे तत्कालीन संस्मरणों को सुनिये।

जहाँ तक मुझे स्मरण है, हम लोग उन दिनों गुरुकुल की सातवीं श्रेणी में पढ़ते थे। यहाँ एक बात पाठकों के सम्मुख स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। पाठकों ने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

देखा होगा कि इन संस्मरणों में मैंने कहीं भी तारीख नहीं दी, इस का यह कारण नहीं कि प्राय: सभी दी हुई घटनाओं की तारीखें दी नहीं जा सकती थीं। अवश्य दी जा सकती थीं। उसके दो कारण हैं। एक तो यह कि सद्धर्म-प्रचारक की पुरानी फाइल में पिता जी के सार्वजनिक जीवन के सम्बन्ध में सभी मुख्य घटनाएँ जिन का कुछ भी सार्वजनिक महत्व हो, प्रकाशित होती रही हैं। इतना ही नहीं, पिता जी ने अपने निजी जीवन को इतना अधिक सार्वजनिक बना दिया था कि अपने व्यक्तित्व अथवा परिवार से सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी चीजें भी सद्धर्म-प्रचारक के स्तम्भों में किसी न किसी रूप में आ चुकी हैं। पिता जी की अपनी बहुत सी डायरियाँ भी सुरक्षित हैं। इसके अतिरिक्त स्वयं मैं भी नियमित डायरी रखने का अभ्यासी हूँ। कुछ पाठकों को यह जान कर आश्चर्य होगा कि जब मैं चौथी श्रेणी में पढ़ता था, तब से अब तक के प्राय: सभी वर्षों की सभी डायरी मेरे पास विद्यमान हैं। प्रतीत होता है कि अन्य अनेक न्यूनताओं के होते हुए भी एक यह विशेषता मैंने पैतृक संस्कारों से प्राप्त की है। डायरी कागज और फाइल रखने का मुझे स्वभावसिद्ध मज है। यदि मैं चाहता तो उपर्युक्त सब साधनों से सहायता लेकर इन संस्मरणों में दी गई कम से कम ९० प्रतिशत घटनाओं की तारीखें दे सकता था, परन्तु फिर वे संस्मरण न रहते। वह तो कारा इतिहास हो जाता, जिसे लिखने का मेरा मंशा नहीं थी। मैं तो इन लेखों में अपनी स्मृति-पुस्तक से पन्ने फाड़ कर पाठकों के सम्मुख रख रहा हूँ। चित्र में दृश्य तो आता है, पर तारीख नहीं आती। इसी व्यवस्था के अनुसार मैंने ऊपर लिखा है कि जहाँ तक मुझे स्मरण है कि हम लोग उन दिनों गुरुकुल की सातवीं श्रेणी में पढ़ते थे।

उन दिनों पिता जी को आधे सिर के दर्द की शिकायत बहुत बढ़ गई थी, नजले से भी परेशान थे। दफ्तर में काम करने वाले लेखकों तथा छोटी श्रेणी के अधिष्ठाताओं से कभी-कभी हमें ऐसे समाचार भी मिलते रहते थे, जिनके हम अधिकारी नहीं समझे जाते थे। ऐसे समाचारों में से एक यह भी था कि प्रधान जी पर अखबारों में और आर्य-प्रतिनिधि-सभा में जो आक्षेप किये जा रहे हैं, उनके कारण प्रधान जी बहुत दुःखी हैं और इसीलिए उनकी तबीयत बहुत खराब रहती है। एक बार हमने अद्भुत बात अनुभव की। पिता जी पञ्जाब आर्य-प्रतिनिधि-सभा के अधिवेशन में भाग लेने के लिए लाहौर गये। जब वे वहां से लौट कर घर आये, तब हमने आश्चर्य से देखा, कि उन ६-७ दिनों में उनके चेहरे में कोई बड़ा परिवर्तन आ गया है। जब ध्यान से देखा तो समझ में आया कि सप्ताह भर में ही उन के सिर और दाढ़ी मूंछ के आधे बाल सफेद हो गए हैं। जनश्रुति ने उस समय हमें बतलाया कि सभा में प्रधान जी पर बहुत आक्षेप किये गए, जिनके उन्होंने बड़ी सफलता से उत्तर दिये, परन्तु उस रात भर की बैठक का प्रधान जी के मन और शरीर पर इतना असर हुआ कि उनके बाल सफेद हो गये। यह समाचार हमने लाहौर से आये हुए सज्जनों से पूछ-पूछ कर संगृहीत किये थे, क्योंकि पिता जी तो कभी इन विषयों की हम लोगों से चर्चा करते ही नहीं थे।

ऐसे समाचारों ने हमारे हृदयों में तीव्र जिज्ञासा पैदा कर दी। हम दोनों भाई उर्दू पढ़ना जानते थे। गुरुकुल में आने से पहले एक मौलवी साहब उर्दू और फारसी पढ़ाने के लिए घर पर आया करते थे। मुझे याद है कि फारसी में हम 'सोहराब

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रुस्तम' की कहानी पढ़ा करते थे। जब गुजरांवाला गुरुकुल जाने के लिए हमारे बिस्तर बाँधे गए, हम उर्दू अच्छी तरह पढ़ने लगे थे। हमें मालूम हुआ कि एक 'हितकारी' नाम का अखबार आता है, जिस में पिता जी पर कटाक्षपूर्ण लेख छपे हैं। हम ने उसे किसी तरह तलाश करने और पढ़ने का प्रयत्न जारी किया, जिसमें हमें कार्यालय के एक लेखक की सहायता से सफलता मिल गई। वह हमें कुछ घन्टों के लिए हितकारी का पर्चा ला कर दे देता था। उसे ले कर हम दोनों भाई गंगा के किनारे किसी घनी झाड़ी में जा बैठते थे और उस का पारायण करते थे। जिन आर्य महानुभावों के 'हितकारी' में लेख होते थे, वे उस समय पंजाब के आर्य-जगत् के प्रमुख और मानी व्यक्ति थे। हितकारी के सम्पादक भी एक प्रसिद्ध वक्ता और प्रचारक थे। इन संस्मरणों में उनमें से किसी का नाम भी नहीं लिखूंगा। पंजाब के आर्य-समाजों के इतिहास का वह एक काला अध्याय था, जिस पर समय का पर्दा पड़ चुका है। उसे न उठा कर, केवल उतनी ही स्मृतियों को अंकित करूँगा, जो पिता जी के जीवन से सम्बन्ध रखती हैं।

'हितकारी' को निरन्तर देखने से हम दोनों भाई पंजाब की आर्यसमाजों के आन्तरिक कलह से काफी भली प्रकार परिचित हो गए। कुछ समय पीछे लाहौर से "प्रकाश" नाम का पत्र निकलने लगा। उसमें "हितकारी" का उत्तर दिया जाता था। प्रति सप्ताह उसके प्राप्त करने का भी हमने प्रबन्ध कर लिया था। दो-तीन बार गुरुकुल में आर्य-प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा के अधिवेशन हुए, उनकी जो टूटी-फूटी रिपोर्टें हम लोगों को मिलती रहीं उनसे गुरुकुल में विरोधी लोगों के प्रति नाराजगी का भाव उत्पन्न हो गया था, इस कारण जब ऐसे महानुभाव गुरुकुल में आते थे, तब जो ब्रह्मचारी आर्यसमाज के आन्तरिक झगड़ों से थोड़ा बहुत परिचित हो चुके थे, वे उन्हें कड़ी आलोचना की दृष्टि से देखा करते थे। वह दृष्टि वस्तुतः उन महानुभावों की मानसिक प्रवृत्तियों की प्रतिक्रियामात्र थी।

उस झगड़े में जो आक्षेप किये जाते थे, वे विचित्र ढंग के थे। जिन लोगों से वह सम्बन्ध रखते थे उनके लिए यह निश्चय करना कठिन हो जाता था कि उन आक्षेपों की निराधारता पर हँसें या नीचता पर क्रोध करें। आक्षेपों के कुछ नमूने लीजिये। पिता जी के बारे में लिखा था, कि उन्होंने त्याग ही क्या किया है, जालंधर में रहते थे, तो वकालत नहीं चलती थी अब गुरुकुल में आकर महात्मा बन गए हैं, तो विलायती ढंग की सजी हुई बैठक में बैठते हैं और रेशमी कपड़े पहनते हैं। जालन्धर में वकालत के दिनों में पिता जी का रहन-सहन कैसा था, यह हम लोग जानते थे। हम लोगों की कोठी कितनी बड़ी थी इसे वे लोग जानते हैं जिन्होंने उसे कभी देखा है। उसमें रहने के लिए पूरी हवेली थी। बैठक और दफ्तर का हिस्सा अलग था। एक सुन्दर वाटिका थी। सारा सद्धर्म-प्रचारक प्रेस था और इतना बड़ा अस्तबल था जिसमें दो घोड़ा-गाड़ियाँ और दो-तीन दूध देने वाले पशु रहते थे। प्रेस को अलग छोड़ दें, तो भी घर में कम से कम एक दर्जन नौकर थे। जिन दिनों समालोचक लोग पिता जी पर और गुरुकुल पर आक्षेपों की भरमार कर रहे थे, उन दिनों सारा गुरुकुल कच्ची दीवार के टिनशैडों में समाया हुआ था, जिन में से वह टिनशैड जिस में पिता जी के बैठने व सोने की जगह थी, ऊँचाई में औरों से कम होने के कारण बहुत गर्म था। उसमें जो फर्नीचर पड़ा था, उस का एक बड़ा भाग

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अब तक दिल्ली में मेरे पास सुरक्षित है। तीन-चार लकड़ी की कुर्सियां थीं जिन का आसन भी लकड़ी का ही था। एक बड़ी दराजों वाली मेज थी जिस का पूर्ववृत्त यह है कि वह तब भी पिताजी के दफ्तर में रहती थी, जब वे वकालत करते थे। गुरुकुल के उस टिनशैड में और गंगा किनारे वाले बंगले में वही मेज शोभायमान रही और बाद में 'अर्जुन' कार्यालय के ऊपर जिस कमरे में लिखने का कार्य था, वहाँ भी वही मेज विद्यमान थी। इस बड़ी मेज के अतिरिक्त एक छोटी मेज और एक कुर्सी भी वकालत के समय की ही, गुरुकुल के उस कमरे में रहती थी, जो पिता जी के बैठने का कमरा था। ये दोनों चीजें भी अब तक मेरे कमरे में विद्यमान हैं, जो सज्जन चाहें कम से कम ६० साल पुरानी वस्तुओं को देख कर अनुमान लगा सकते हैं कि जिन महानुभावों ने उन से सजे हुए कमरे को विलायत का ड्राईंग-रूम के नाम से विशेषित करने का दुस्साहस किया था, उनकी आँखों को पक्षपात ने कितना अन्धा कर दिया था। इसी प्रकार की आलोचनाओं से से 'हितकारी' अखबार के कालम भरे होते थे। महाशय कृष्ण जी और उनके अभिन्न मित्र स्व० पण्डित विश्वम्भरनाथ जी उन्हीं दिनों कालेज की शिक्षा समाप्त करके आर्यसमाज के कार्यक्षेत्र में आए थे, उन्हें विरोधी पार्टी के, पिताजी पर किए गए ये आक्षेप अन्याय युक्त प्रतीत हुए। विरोधियों के आक्षेपों का उत्तर देने के लिए महाशय कृष्ण जी ने कुछ मित्रों के सहयोग से 'साप्ताहिक प्रकाश' का प्रकाशन आरम्भ किया। पंजाब की आर्य-जनता में पिता जी के प्रति गहरी श्रद्धा का भाव विद्यमान था। आर्य-जनता 'हितकारी' में किए गए आक्षेपों का उत्तर सुनना चाहती थी। पिता जी के सम्पादकत्व में निकलने वाला 'सद्धर्म-प्रचारक' अनेक आर्य-समाजों में धर्म-पुस्तक की तरह पढ़ा जाता था, परन्तु पिता जी की यह दृढ़ प्रतिज्ञा थी कि जहाँ तक हो सकेगा 'सद्धर्म-प्रचारक' के स्तम्भों में विरोधियों के गंदे आक्षेपों की चर्चा नहीं आने पाएगी। विरोधियों के आक्रमणों का मुख्य उद्देश्य यह सिद्ध करना प्रतीत होता था कि पिता जी महात्मा नहीं हैं, इस कारण उन्हें महात्मा मुन्शीराम के नाम से न पुकारा जाए। इस बात को सिद्ध करने के लिए एक सैशन जज साहब ने साप्ताहिक 'हितकारी' में कई मास तक एक लेख-माला लिखी। 'साप्ताहिक प्रकाश' में इन आक्षेपों के थोड़े बहुत उत्तर दिए जाते थे, परन्तु विरोधियों की ओर से निरन्तर यही ललकार सुनायी जाती थी यदि हमारे किए हुए आक्षेप असत्य हैं तो महात्मा मुंशीराम उनका जवाब क्यों नहीं देते? आक्षेप सभी प्रकार के थे। रुपयों का गबन, हिसाब की गलती, कुर्बानी का ढोंग और न जाने इसी तरह के कितने विषैले अभियोग थे, जिन्हें सिद्ध करने के लिए विरोधी लोग वर्षों तक साप्ताहिक गोलाबारी करते रहे परन्तु पिता जी ने उनका उत्तर देना आवश्यक नहीं समझा।

अन्त में ऐसा समय आ गया, जब आक्षेपों की उपेक्षा करनी कठिन हो गई। विरोधियों की निरन्तर ललकार से भक्तों के दिल भी दहलने लगे और वह पिताजी को प्रेरित करने लगे कि विरोधियों को मुंहतोड़ जवाब दिया जाए। इधर विरोधियों की इस भारी बाण-वर्षा का पिता जी के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ रहा था। अन्दर ही अन्दर पलने वाले मानसिक विक्षोभ के कारण उनकी वही अवस्था हो रही थी, जिसका कालिदास ने निम्नलिखित पदों में वर्णन किया है—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

राजा स्वतेजोभिरदह्यतान्तर्भोगीव मन्त्रौषविरुद्धवीर्यः।

अपनी इच्छानुसार, अपने ऊपर डाले हुए प्रतिबन्ध के कारण अन्दर भरा हुआ क्षोभ प्रतिदिन असह्य होता जा रहा था जिसका परिणाम यह हुआ कि एक दिन पिताजी ने निश्चय कर लिया कि संसार के सामने सत्य का प्रकाश किया जाए। इस संकल्प को लेकर पिता जी ने गंगा किनारे वाले बंगले से अपना बोरिया-बँधना उठा कर पक्की धर्मशाला में १५ दिन के लिए डेरा जमाया और उन दिनों में लगभग ६०० पृष्ठों की वह किताब लिखी, जिसका नाम इस अध्याय के आरम्भ में दिया गया है।

——

२०. समाधान

'दुःखी दिल की पुरदर्द दास्तां' में पिता जी ने न केवल उन सब आक्षेपों का विस्तृत उत्तर दिया था, जो विरोधियों की ओर से उनके सार्वजनिक जीवन पर किए जाते थे, आर्य-समाज के क्षेत्र में उनके जो-जो विरोधी हुए उनके विरोध के कारणों पर भी पूरा प्रकाश डाला था। उनकी दास्तां सचमुच दिल को बहुत दुःखी करने वाली है। सारी पुस्तक को पढ़कर मन पर यह असर होता है कि पंजाब के आर्य-समाजों के कार्यक्षेत्र में ऊंचे पदों पर काम करने वाले प्रायः सभी प्रमुख व्यक्ति एक-एक करके पिता जी के विरोधी बन कर समालोचकों में शामिल होते गए। इस दशा को देख कर एक उदासीन व्यक्ति के मन में भी यह प्रश्न पैदा होने लगता है कि इसमें क्या सब दोष औरों का ही था? पाठक सोचने लगता है कि जिस व्यक्ति के इतने विरोधी हो गए कि जो आज साथी बना कल वही समालोचक बन गया, क्या इसमें सब दोष अन्यों का ही था? उसका नहीं था?

इस पुस्तक के पढ़ने से एक और प्रश्न भी पाठक के मन में उत्पन्न हो सकता है। वह यह कि इतने बड़े सार्वजनिक कार्यकर्त्ता ने अपने विरोधियों की आलोचना की इतनी परवाह क्यों की, कि उनका उत्तर इतने दुखी दिल से दिया और हरेक छोटे से छोटे आक्षेप का इतना विस्तृत उत्तर दिया। वह उनकी उपेक्षा कर सकते थे, कम से कम सर्वथा शान्त भाव से उत्तर दे सकते थे।

ये दोनों प्रश्न पिता जी के जीवन-काल में भी पूछे जाते थे। प्रायः ज्योतिषी लोग समृद्ध व्यक्तियों का हाथ देख कर कह दिया करते हैं कि तुम्हारी हस्तरेखा से मालूम होता है, कि तुम जिसे दूध पिलाओगे वही तुम्हें डसने को आयेगा। सब लोगों के सम्बन्ध में यह बात ठीक हो या न हो, पर पिता जी के सम्बन्ध में तो लगभग अक्षरशः ठीक सिद्ध होती रही। सार्वजनिक जीवन में उनके सब साथी कुछ समय के पश्चात् न केवल पिछड़ जाते थे, बल्कि उनके कठोर विरोधी बन जाते थे। मैंने अत्यन्त समीप से जो कुछ देखा और अनुभव किया, उसके आधार पर इस प्रश्न का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उत्तर देने का साहस करता हूँ। जसे मैं पहले लिख आया हूँ, पिता जी अपने निजी जीवन में और सार्वजनिक जीवन में इति-कर्तव्यता का निश्चय करते हुए युक्तियों या परिस्थितियों पर कभी विचार नहीं करते थे। स्नातक बनने के पश्चात् अनेक बार मैं उनके परामर्श में—और वह परामर्श भी लगभग प्रत्यक्ष चिन्तन ही होता था—शामिल होता रहा। किसी बड़े कदम के उठाने के विषय में विचार करते हुए मैंने कभी उन्हें यह सोचते नहीं पाया कि इस कार्य के लिए धन कहाँ से आयेगा ? पुराने साथी नाराज तो नहीं हो जायेंगे ? नये साथी कहाँ से आयेंगे ? और जो बाधाएँ आयेंगी उनका निवारण कैसे होगा ? उनका मन कुछ ऐसे ढंग का बना हुआ था कि जिसे अक्ल-मन्द लोग सांसारिक दूरदर्शिता या दुनियादारी के नाम से पुकारते हैं, वह कभी उनके पास नहीं फटकती थी। वह जब कोई बड़ा कदम उठाते थे, तब अन्तरंग लोगों में भी यही घोषणा किया करते थे, 'बस मैंने निश्चय कर लिया'। यदि कोई यह पूछता कि कल शाम तक तो अभी विचार ही हो रहा था, तो वह उत्तर देते "वह मेरी निर्बलता थी आज प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में मेरी अन्तरात्मा ने निश्चित रूप से कह दिया कि मुझे यह काम करना चाहिए", फिर कोई सलाहकार यह पूछने का साहस कर बैठता था, कि परन्तु यह कार्य होगा कैसे ? इस प्रश्न का उत्तर पिताजी का निश्चित ही था—उत्तर था—"अब तक मेरे सब कार्य सहस्रबाहु के भरोसे पर हुए हैं, यह कार्य भी वैसे ही होगा।"

उपर्युक्त घोषणा के पश्चात् और कभी-कभी उससे पहले ही प्रातःकाल के तीन चार घंटों में नया कदम बहुत दूर तक उठ चुका होता था। दृष्टान्त के लिए कांग्रेस की कार्यसमिति या हिन्दूमहासभा अथवा शुद्धिसभा से त्यागपत्र देने जैसे महान् प्रश्न को ही लीजिए। जिस दिन प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में वह अन्दर के शब्द को सुनकर यह निश्चय कर लेते थे कि अब मुझे त्यागपत्र दे देना है, उस दिन प्रातःकाल सूर्य निकलने से पहले उनका लिखा हुआ विस्तृत त्यागपत्र, उसकी आफिस कापी, उसके स्पष्टीकरण के लिए एक लम्बा वक्तव्य रूपी तार, यह सब कुछ लिखा हुआ मेज पर पड़ा होता था। सेवक के आते ही त्यागपत्र की चिट्ठी बन्द होकर डाक के डिब्बे में पड़ जाती थी। तार, तारघर पहुँच जाता था और उस सभा के सम्बन्ध में जितनी फाइल होती थी, उसे पूरा करके फाइलों को अलमारी में बन्द कर देने के लिए पंडित धर्मपाल जी विद्यालंकार के सुपुर्द हो जाती थी। पंडित धर्मपाल जी विद्यालंकार वर्षों तक स्वामी जी के निजी मन्त्री का कार्य करते रहे। जब हम लोग स्वामी जी के पास पहुँचते थे, तब हमें मालूम होता था कि जो मामला अटका हुआ था, उसकी अटक न केवल दूर हो गई है, प्रत्युत वह कोसों आगे पहुँच चुका है।

इस प्रकृति को लेकर पिताजी ने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया था। इन मनोवैज्ञानिक विशेषताओं के साथ कुछ भगवान् की दी हुई शारीरिक विशेषताएँ भी थीं। हमारे दादा जी सिपाही थे उनका पूरा ठाठ सिपाहियाना था। वह पिताजी से भी दो अंगुल ऊंचे और फैलाव में अधिक विशालकाय थे। पिताजी ने शारीरिक सम्पत्ति उनसे विरसे में पाई थी। जिस समय पीला दुपट्टा और संन्यास ले लेने के पश्चात् भगवां कपड़ा लेकर और हाथ में लम्बा दण्ड पकड़ कर वह भीड़ में चलते थे, उस समय उनके कन्धे अन्य लोगों के सिरों से ऊँचे दिखाई देते थे और सिर कन्धों से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भी ऊँचा। यदि शारीरिक सम्पत्ति किसी को जन्म सिद्ध नेता बना सकती थी तो वह पिताजी थे। उसके साथ ही संकट काल में जनता यह चाहती है कि उसको एक दम रास्ता दिखाया जाय। उसका खून इतना उबल चुका होता है कि न परामर्श की गुंजाइश होती है और न शाब्दिक आश्वासन की। उस समय पिताजी वस्तुतः क्षण भर में इति-कर्त्तव्यता का निश्चय कर लेते थे और निश्चय करने के साथ ही लाठी उठाकर बड़े से बड़े संकट से जूझने के लिए चल पड़ते थे। उनकी इसी विशेषता से प्रभावित होकर कई विषयों पर गहरा मतभेद रहते हुए भी पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपने आत्मचरित्र में पिताजी की वीरता की प्रशंसा की है। इन झाँकियों में ऐसे कई दृष्टान्त अंकित होंगे, जिनसे मेरा उपर्युक्त कथन स्पष्ट हो सके। यहाँ केवल एक दृष्टान्त देकर आगे चलता हूँ।

पिताजी संन्यास ले चुके थे। गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता और आचार्य-पद को अन्य कार्य-कर्त्ताओं ने सम्भाल लिया था। गुरुकुल का उत्सव हो रहा था, उत्सव के निमित्त आकर पिताजी उसी प्रसिद्ध गंगातट वाले बंगले में ठहरे हुए थे। उत्सव का सबसे मुख्य अपील-सम्बन्धी व्याख्यान हो रहा था, इतने में दर्शकों के निवास-स्थान की ओर से उठता हुआ धुँआ दिखाई दिया। क्षण भर में शोर मच गया—आग लग गई, आग लग गई। पण्डाल एक दम खाली हो गया, सब लोग कैम्प की ओर भागे, वहाँ जाकर देखा तो फूस के छप्पर, बारूद के ढेर की तरह धू धू करके जल रहे थे। दर्शक लोग पागलों की तरह चारों ओर भागने और शोर मचाने लगे। बीसियों बच्चे कैम्प में सोये पड़े थे, इस भयानक आग में घुसकर कौन उनको बचाए? यह नहीं सूझता था कि फूस में लगी आग बुझेगी कैसे? कुछ देर तक आर्तनाद और हाहाकार के सिवा कुछ सुनाई नहीं देता था। यह मेरी कानों सुनी बात है कि गुरुकुल के कई अधिकारी पण्डाल के पास खड़े हो कर दृश्य को देख रहे थे और कह रहे थे कि अब क्या किया जा सकता है? हम तो पहले ही कहते थे कि फूस के छप्पर नहीं बनाने चाहियें!

सहसा ऐसी निराशा-जनक परिस्थिति को भेदता हुआ 'चलो, चलो, स्वामी जी आ गए' का शब्द भीड़ में सुनाई दिया और साथ ही बंगले की ओर से तेजी से आते हुए स्वामी जी का सिर और कन्धे जनता के मस्तकों से ऊपर दृष्टिगोचर हुए। स्वामी जी सीधे मेहता गेट पर पहुँचे और शायद आधा मिनट तक सारी स्थिति का निरीक्षण किया और फिर एकदम धारा-प्रवाह की तरह आज्ञाएं निकलने लगीं—

'मिट्ठनलाल जी, आप भाग कर जाइये, गोशाला और बाटिका में जितने फावड़े और टोकरियाँ मिलें, सब लिवा लाइये।'

'चिरंजीलाल जी! आप वस्तु भण्डार में से जितने घड़े या बाल्टियाँ मिलें, सब लिवा लाइये।'

दोनों के साथ केवल २०-२० आदमी जावें अधिक नहीं। शेष सब मेरे साथ आओ, कह कर स्वामी जी आप आग के पास जा पहुंचे और दर्शकों को स्वयं-सेवक दलों के रूप में विभक्त कर दिया। एक दल को आज्ञा दी कि हाथों में या कपड़ों में भर कर जैसी भी हो, मिट्ठी और रेत ले लेकर आग पर डालो। दूसरे दल को आज्ञा दी कि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जिन छप्परों में आग नहीं लगी, उनका सामान निकालकर बहुत दूरी पर रख दो और उन छप्परों को गिरा दो और यथाशक्ति घसीट कर आग से दूर ले जाओ। इतने में फावड़े, टोकरियाँ, बाल्टियाँ घड़े, सब चीजें आ पहुंची। एक दल मिट्टी खोदने लगा, दूसरा उसे टोकरियों में भर कर आग पर डालने लगा, तीसरे दल ने कुएँ तक एक लम्बी लाइन लगा दी जहाँ से घड़ों और बाल्टियों द्वारा पानी आने लगा आर्तनाद बन्द हो गया। जहाँ अव्यवस्था थी, वहाँ व्यवस्था हो गई और लगभग आध घंटे भर में आग सर्वथा शान्त हो गई। यह दृश्य मेरे हृदय पर बहुत गहरा अंकित है; पैदाइशी नेता ही ऐसे समय अव्यवस्था में से व्यवस्था पैदा कर सकता है।

पिताजी की इन विशेषताओं की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करके मैं यह बतलाना चाहता हूं कि सार्वजनिक जीवन में उनके साथियों में से इतने अधिक समालोचक क्यों बने ? एक और विशेषता जिसकी ओर निर्देश करना अत्यन्त आवश्यक है, उनकी स्पष्ट-वादिता थी। वह इतनी प्रकट और निर्विवाद थी कि उनके भक्त और विरोधी दोनों ही उसे स्वीकार करते थे। भक्त उसे उनका सबसे बड़ा गुण मानते थे और विरोधी सबसे बड़ा दोष। सार्वजनिक जीवन में किसी बात को या किसी चीज को वह गुप्त नहीं मानते थे। जिसके विषय में जो राय रखते थे वह न केवल सब लोगों के सामने बिल्कुल निःसंकोच भाव से कह देते थे, बल्कि अगर दिल में आ गया तो सद्धर्म-प्रचारक में भी लिख देते थे। यह उनके स्वभाव का एक आवश्यक टुकड़ा था।

यहाँ मैंने पिताजी के स्वभाव की जो विशेषताएँ लिखी हैं, उनके लिए जान-बूझ कर विशेषता शब्द का ही प्रयोग किया है। वह गुण थे या दोष, इस विषय में मैंने कोई सम्मति नहीं दी। उनके जीवन काल में इस विषय में सब लोग एक मत नहीं हो सके और न कभी हो सकेंगे। किसी सुन्दर चित्र, उत्कृष्ट काव्य और महान् पुरुष की विशेषताएँ गुण हैं या दोष, इस विषय में एक मत हो भी नहीं सकता। यदि ऐसे पदार्थों के गुण दोष के सम्बन्ध में एक मत हो जाय, तो उनकी असाधारणता जाती रहे। तब तो वह साधारण पदार्थ बन जाय।

अब आप उपर्युक्त विशेषताओं को ध्यान में रखकर विचार करें, तो आपको बहुत आसानी से प्रतीत हो जाएगा कि सार्वजनिक जीवन में पिताजी के इतने विरोधी क्यों बने ? वह सार्वजनिक जीवन की जिस दिशा में चले जाते, वहाँ वह अपने नैसर्गिक गुणों से बहुत शीघ्र अगली पंक्ति में आ जाते थे, और सबसे ऊँचे दिखाई देने लगते थे। जैसे उन्होंने अपने आत्म-चरित्र में अपने बचपन और यौवन के सब दोष खुली पुस्तक की तरह खोलकर रख दिये हैं, उसी प्रकार वह सार्वजनिक जीवन में अन्य कार्य-कर्त्ताओं के दोषों को भी निःसंकोच भाव से कह डालते थे। उनके सहसा ऊँचे उठ जाने से सहयोगियों में जो नैसर्गिक ईर्ष्या उत्पन्न होती थी वह उनकी स्पष्ट-वादिता के कारण भड़क उठती थी और आज जो सहयोगी मालूम पड़ता था वह कल कड़ा आलोचक बन जाता था। किसी विशेष परिस्थिति के आने पर, जब पिता जी कोई नई छलांग मार जाते थे तो उनके पुराने साथी खाई के इसी ओर मुंह ताकते रह जाते थे और पीछे रहने के समर्थन में प्रायः पिताजी के कार्यों की आलोचना किया करते थे।

इस विवेचना के अन्त में एक बात और लिख देनी आवश्यक है। वह यह,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कि पिताजी आलोचनाओं और आक्षेपों के सम्बन्ध में बहुत भावुक थे। कुछ लोग जो सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करते हुए अपनी अनुभवशीलता को पीछे छोड़ जाते हैं, वे विरोधी आलोचनाओं से अधिक प्रभावित नहीं होते। पिताजी का हृदय इस दृष्टि से बहुत नरम और अनुभवशील था। मैंने उन्हें कई बार दूसरे का दुःख देख कर आँसू बहाते देखा है। प्रायः कोई वृत्तान्त सुनाते हुए या पढ़ते हुए मार्मिक स्थल के आने पर उनकी आँखें आँसुओं से भर जातीं थीं। जब कभी वह अपनी आलोचना सुनते थे, तो कभी-कभी रातों नहीं सो सकते थे। सोचते रहते थे कि ये लोग ऐसे नासमझ क्यों हैं? ऐसे ही अवसरों पर प्रायः उन्हें रोग आ घेरता था, जो कभी-कभी महीनों तक व्याकुल करता था। जिस रात आर्य प्रतिनिधि-सभा पंजाब में विरोधियों पर उन्होंने पूर्ण विजयलाभ किया, उस रात भर में सिर और दाढ़ी के लगभग आधे बालों के सफेद हो जाने की बात मैं लिख आया हूँ। आधे सिर का दर्द ऐसे ही मानसिक धक्कों का फल था। हम लोग, जो उनके बहुत समीप रहते थे, वे हृदय से चाहते थे कि वे इतने अनुभवशील न होते। उनका मानसिक दुःख देख कर हम लोगों को बहुत दुःख होता था और वे तो दुःखी रहते ही थे।

कहीं पाठक यह न समझ लें कि जब पिताजी आलोचनाओं से इतने अधिक परेशान हो जाते थे, तो फिर काम कैसे करते होंगे? यही तो एक मनोवैज्ञानिक चमत्कार था। जैसे कीचड़ में से कमल निकल आता है, ऐसे ही उनकी दुःख या उदासीनता की लहरों में से कोई न कोई नया रत्न निकल आता था। गुरुकुल की योजना, सर्वमेध-यज्ञ संन्यास और सत्याग्रह-प्रवेश आदि सब जीवन की क्रांतिकारिणी घटनाएँ ऐसे ही मानसिक मन्थन का परिणाम थीं। इनमें से कुछ की चर्चा पहिले हो चुकी है, शेष की चर्चा इन संस्मरणों में आगे चल कर करूँगा।

———

२१. सर्वमेध यज्ञ

अभी हम दोनों भाई स्नातक नहीं बने थे, अगले वर्ष बनने वाले थे। एक दिन प्रातः काल लगभग ४ बजे हम दोनों को सोते से जगाकर कहा गया कि प्रधान जी ने आप को बुलाया है, बंगले पर चलिए। ऐसे असाधारण समय में बुलाए जाने का कारण हमारी समझ में नहीं आया। पूछने पर सेवक ने उत्तर दिया—मुझे कुछ मालूम नहीं, हाँ इतनी बात अवश्य है कि आज रात भर वह सोए नहीं। पहले टहलते रहे, फिर कुछ लिखते रहे।

जब हम दोनों बंगले पर पहुँचे तो पिताजी को बड़े कमरे में टहलते पाया। यह उनकी विचार की मुद्रा थी, गम्भीर विचार के समय वह पीछे की ओर दोनों हाथ मिला कर टहला करते थे। हमारे पहुँचने पर वे कुर्सी पर बैठ गए और अत्यन्त गम्भीरता से दराज में से फुलस्केप के आकार का एक लिखा हुआ कागज निकाल

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कर हमारे सामने रखते हुए कहा—'इसे पढ़ लो और यदि तुम इससे सहमत हो तो इस बात पर हस्ताक्षर कर दो।' उस कागज में जो कुछ लिखा था, उसका अभिप्राय यह था—

'मैंने अपनी शक्ति के अनुसार अपने जीवन में वैदिक धर्म की सेवा की है। ऋषि दयानन्द की आज्ञा को शिरोधार्य करके वैदिक धर्म के पुनरुद्धार और आर्य-जाति के उत्थान के लिए गुरुकुल का संचालन करता रहा हूं। मैंने गुरुकुल के लिए अपनी सब शक्ति लगा दी है, परन्तु अब मुझे अनुभव हो रहा, है कि मेरा अब तक का प्रयत्न अधूरा था, मैंने अभी गुरुकुल के लिए सब कुछ नहीं दिया। जालन्धर में मेरा जो मकान है, वह पुश्तैनी नहीं है, मैंने अपनी कमाई से बनाया है, उसमें अभी तक मेरी ममता विद्यमान है। मैं उसे भी मिटा देना चाहता हूं, इस कारण मैं इस दान-पत्र द्वारा वह मकान गुरुकुल कांगड़ी के लिए आर्य-प्रतिनिधि सभा पंजाब को समर्पित करता हूं।

जब हम उस दानपत्र को पढ़ चुके तो पिता जी ने कहा—'यदि तुम्हें इस में कोई आपत्ति न हो तो वैसा लिख कर दोनों भाई नीचे अपने हस्ताक्षर कर दो, ताकि सभा वाले कोई झगड़ा न मचायें।

उस दानपत्र पर हम दोनों के हस्ताक्षरों का महत्व यह था कि इस से कुछ मास पूर्व पिता जी एक वसीयतनामा लिख चुके थे, जिसमें उन्होंने यह लिखा था कि कोठी को बेच कर जो दाम उठें वह दोनों भाइयों को आधे-आधे बाँट दिए जायें। अनुमान यह था कि कोठी बीस हजार में बिकेगी। वसीयतनामे में हरिचन्द्र जी को १०००० से प्रेस और पत्र चलाने का आदेश और मुझे विलायत जाकर बैरिस्टरी पास करने का आदेश दिया गया। इस नए दानपत्र से वह वसीयतनामा रद्द होता था।

हम दोनों ने उस अर्पणनामे को पढ़ लिया और चुप-चाप उसके नीचे स्वीकृति-सूचक हस्ताक्षर कर दिए। तब पिता जी ने हमसे कहा कि यह तो तुम्हें मालूम ही होगा कि यह कोठी मेरी अन्तिम भौतिक सम्पत्ति थी। शेष प्रेस आदि सब वस्तुएँ मैं पहले ही दे चुका हूँ। इस कोठी के देने के पश्चात् तुम्हारे लिए कोई वस्तु नहीं बचेगी, इस पर तुम आपत्ति करना चाहो, तो कर सकते हो। जहाँ तक मुझे याद है, शब्दों द्वारा हम दोनों भाई पिता जी के कथन का कुछ भी उत्तर नहीं दे सके। केवल इतना ही सूचित किया कि हमें सब मालूम है, हमें कोई आपत्ति नहीं और यह सूचना भी हमने शब्दों से नहीं, सिर के इशारे से ही दी थी। इसके पश्चात् हम दोनों आश्रम की ओर चले गए और पिता जी फिर बंगले में टहलने लगे।

हम दोनों यह समझ गए थे कि जब तक स्वयं पिता जी दान की घोषणा न करें, तब तक दान का संकल्प गोपनीय है। उन दिनों गुरुकुल का उत्सव हो रहा था। उत्सव के निमित्त से हमारे बहुत से सम्बन्धी आए हुए थे। बड़ी बहिन वहीं थीं और सम्भवतः ताया जी भी थीं। हमने दिन भर उन से भी दानपत्र की कोई बात न की। दोपहर बाद गुरुकुल के लिए अपील के सम्बन्ध में पिता जी का भाषण था। उन दिनों अपील का समय उत्सव में सबसे अधिक महत्व रखता था। भीड़ और उत्साह दृष्टि से, वह अवसर अपूर्व समझा जाता था। उस वर्ष अपील से पूर्व शायद आगरे के ठाकुर नत्थासिंह ने 'मथुरा में एक बत्ती घीमी से जल रही थी' वाला भजन ऐसी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सुन्दरता से गाया था कि उसके प्रत्येक पद पर करतल-ध्वनि सुनाई दी थी। भजन के बाद पूर्ण सन्नाटे में अपील के लिए खड़े होकर पिता जी ने निम्नलिखित आशय का भाषण आरम्भ किया—(व्याख्यान का यह आशय मैं स्मृति के भरोसे पर और वह भी बहुत संक्षेप से लिख रहा हूँ)।

कुछ समय हुआ, गुरुकुल के लिए धन-संग्रह करने के निमित्त मैं दिल्ली गया। वहाँ एक मण्डली को साथ लेकर मैं शहर के सबसे बड़े रईस के घर चन्दा माँगने पहुँचा। उस रईस को जब गुरुकुल की शिक्षा मण्डली के आने का समाचार मिला तो वह घर के अन्दर चला गया और कहला भेजा कि रायसाहब टट्टी गए हैं। हम बहुत देर तक वहाँ बैठे रहे, पर रायसाहब घर से बाहर न आए। यह बात मुझे बहुत बुरी मालूम हुई और मैं असन्तुष्ट हो कर मण्डली को लेकर वहाँ से चला आया। डेरे पर आकर मैंने अपनी अन्तरात्मा से पूछा कि ऐसा क्यों हुआ? मेरे अन्दर क्या कमी है; जिसके कारण वह धनी आदमी मुझ से बचने की चेष्टा कर रहा था? और इसका भी क्या कारण है कि उसके बाहर न आने को मैंने बुरा माना? मेरी आत्मा ने उत्तर दिया कि इसका कारण यह है कि तूने अभी अपने आप को सर्वतोभाव से धर्म की सेवा में अर्पण नहीं किया और तेरे मन में बची हुई हुई संपत्ति के कारण अहंकार है। उसी समय मैंने निश्चय किया कि मैं अहंकार की जड़, इस थोड़ी सी सम्पत्ति को भी गुरुकुल के अर्पण कर दूंगा और तब वस्तुतः धर्म की सेवा के योग्य हो सकूंगा। इसके पश्चात् पिता जी ने अर्पणनामा पढ़ कर सुना दिया।

जो बात मैंने इन थोड़ी सी पंक्तियों में लिखी है, वह वस्तुतः लगभग डेढ़ घण्टे के व्याख्यान में कही गई थी। जो नर-नारी उस दिन की अपील में उपस्थित थे, उन्हें उस समय का दृश्य कभी नहीं भूल सकता। प्रारम्भ से ही श्रोता समझ गये थे कि आज की अपील में कोई असाधारण बात है। पिताजी में भावुकता का अंश बहुत अधिक था। उनके भाव चेहरे के चित्रपट पर तत्काल प्रतिबिम्बित हो जाते थे। हृदय की प्रत्येक भावना आँख, नाक और होठों पर स्पष्टता से झलकने लगती थी और स्वर भी तदनुसार ही प्रभावित हो जाता था। जिस समय बादल के समान गर्जते हुए स्वर से उन्होंने कहा कि मेरी अन्तरात्मा ने उत्तर दिया कि इसका कारण वह अहंकार है, जो थोड़ी सी बनी हुई सम्पति के कारण उत्पन्न होता है तो प्रायः सब श्रोता समझ गए कि इसके पश्चात् कोई सनसनीपूर्ण घोषणा होने वाली है, यज्ञ-कुण्ड में कोई बड़ी आहुति पड़ने वाली है। वक्ता के स्वर, अवसर और सम्भावित घोषणा का श्रोताओं पर कुछ ऐसा असर पड़ा कि उनकी आँखों में आंसू आ गए, जो वक्ता के प्रत्येक वाक्य के साथ बढ़ते गए और आँखों से बहने लगे। प्लेटफार्म पर अजीब दृश्य हो रहा था। आर्य-प्रतिनिधि-सभा पंजाब के प्रधान लाला रामकृष्ण जी, जो शायद संसार के कुछ एक चुने हुए उन व्यक्तियों में से होंगे, जिनके बारे में भावुक होने का सन्देह भी नहीं किया जा सकता था, वे रो रहे थे। प्रकाश के सम्पादक महाशय कृष्ण जी रुमाल से आँखें पोंछ रहे थे। भक्तराज लाला लब्भूराम नैयर आवाज से रो रहे थे। ये तीन नाम मैंने नमूने के तौर पर पेश कर दिये हैं। अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार प्रायः सभी श्रोता द्रवित हो गये थे। जनता का यह हाल था कि उसे ताली बजाने या भाव व्यक्त करने तक का अवसर नहीं मिला, जब तक पिता जी दानपत्र पढ़कर बैठ नहीं गये व्याख्यान समाप्त होने पर जनता ने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दिल खोल कर तालियों और जयकारों के साथ अपना हार्दिक भाव प्रकट किया।

इस संग में पिताजी की वक्तृत्व-शैली के सम्बन्ध में कुछ शब्द कह देना अप्रासंगिक न होगा। वे भारतवर्ष में अपने समय के कुछ एक ऐसे वक्ताओं में से थे, जिन्हें जनता पर प्रभाव उत्पन्न करने वाला सर्वमान्य वक्ता कहा जा सकता है। वर्षों तक लाहौर के बच्छोवाली आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर उनका व्याख्यान उत्सव का सबसे अधिक महत्वपूर्ण और लोकप्रिय भाग माना जाता था। गुरुकुल के उत्सव पर उनके व्याख्यान के समय अधिक से अधिक भीड़ रहती थी और अधिक से अधिक सन्नाटा रहता था। संन्यास लेने के पश्चात् जब वह राजनीति में प्रविष्ट हो कर सत्याग्रह आन्दोलन के अगुआ बने, तब सब बड़ी सार्वजनिक सभाओं में उनका बोलना आवश्यक था। जामा मस्जिद के मिम्बर पर हो या पीपल पार्क की व्याख्यान-वेदी पर हिन्दू मुसलमानों की सम्मिलित भीड़ उन्हें सुनने के लिए लालायित रहती थी। इससे यह तो स्पष्ट है, कि वह वैसे वक्ता थे, जिन्हें अंग्रेजी में "मास आरेटर" कहते हैं।

इस सम्बन्ध में समालोचनात्मक दृष्टि से देखने वालों को आश्चर्य में डालने वाली बात यह थी कि जब वक्तृत्व के साधारण नपने से उनकी भाषण-शैली को नापा जाता था, तब उसकी सफलता का रहस्य समझना कठिन हो जाता था। पिताजी की भाषण शैली की आलोचना करना मेरे लिए छोटे मुँह बड़ी बात ही है, परन्तु उसकी सफलता का रहस्य जानने के लिए थोड़ा-सा विश्लेषण आवश्यक है। यदि उनके किसी भाषण की शब्दशः रिपोर्ट ली जाती, और फिर केवल भाषण की दृष्टि से उसकी परीक्षा की जाती तो उस में एक दोष प्रतीत होता था कि बहुत से वाक्य अधूरे रहते थे और कभी-कभी एक वाक्य की संगति दूसरे से पूरी तरह नहीं मिलती थी। वक्तृत्वकला में माने हुए विभावों और अनुभावों का उनके भाषणों में सर्वथा अभाव रहता था। न कभी वे अपने व्याख्यान को लिखते थे और न व्याख्यान वेदी के अनेक सिंहों की तरह बड़े आइने के सामने खड़े होकर हाथ आदि की चेष्टाओं का अभ्यास करते थे। इन सब कला-सम्बन्धी त्रुटियों के रहने पर भी यह असंदिग्ध बात है, कि वे जिस व्याख्यान वेदी पर खड़े हो जाते, उस पर अपना पूरा प्रभुत्व स्थापित कर लेते थे, और जनता को अपनी भावना से प्रभावित कर देते थे।

पिता जी की इस सफलता का रहस्य क्या था? इस प्रश्न का उत्तर संक्षेप में यह है कि वे केवल तब बोलने के लिए खड़े होते थे, जब उनके अन्दर से कोई प्रेरणा उठती थी। श्रद्धा और गहरी धार्मिक भावना के कारण उनकी आन्तरिक प्रेरणा सदा गम्भीर और तेजस्विनी होती थी। केवल बोलने के लिए वे नहीं बोलते थे। उस गम्भीर और तेजस्विनी प्रेरणा से प्रेरित होकर वे जो कुछ कहते थे, वह श्रोताओं के हृदयों को चीरता हुआ चला जाता था। श्रोताओं का ध्यान न उनके वाक्यों के अधूरेपन पर होता था और न वक्तृत्व-कला के दोषों पर। श्रोता केवल इतना अनुभव करते थे, कि वे एक सच्चे हृदय की पुकार सुन रहे हैं और उससे प्रभावित हो जाते थे। एक सफल रिपोर्टर ने यत्न किया कि पिता जी के कुछ बड़े-बड़े व्याख्यानों की शब्दशः रिपोर्ट को संग्रह रूप में प्रकाशित करे, वह यत्न बहुत ही भद्दा रहा। पढ़ने से उन व्याख्यानों का महत्व समझ में नहीं आ सकता था। वे केवल शब्द थे, उनमें वह हृदय नहीं था, जो केवल वक्ता की ध्वनि से प्रतिध्वनित होता था।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बम्बित हो सकता है। इस मौलिक कारण के साथ ही पिता जी का विशाल शरीर, भव्य मूर्ति और गम्भीर तथा ऊंचा स्वर भी उन्हें जनता के हृदयों तक पहुँचने में सहायता देता था। जिस व्याख्यान की मैंने इस अध्याय में चर्चा की है वह उनके अत्यन्त प्रभावशाली व्याख्यानों में से एक था। उसकी सफलता का यह एक जबरदस्त प्रमाण था, कि उसमें व्याख्यान-वेदी पर बैठे हुए अनेक वकीलों की आँखों में आँसू बह रहे थे। यह लगभग सर्व-सम्मत बात है, कि कानून का पेशा करने वाले लोग बुद्धिप्रधान और अतएव भावुकताहीन हो जाते हैं, उन्हें पिघलाने के लिए बहुत ही असाधारण गर्मी की आवश्यकता होनी चाहिए।

उस दिन के दान पत्र द्वारा जिस यज्ञ से पूर्णाहुति डाली गई, उसका प्रारम्भ लगभग २० वर्ष पूर्व हो चुका था। जालन्धर में वकालत आरम्भ करने और समाज-मन्दिर के सामने वाली कोठी बनाने के मध्य में लगभग ८-१० साल व्यतीत हुए होंगे, उन्हीं को वस्तुतः पिता जी के सांसारिक जीवन के वर्ष कहा जा सकता है। माता जी की मृत्यु से पूर्व ही वे आर्य-समाज में प्रवेश कर चुके थे। यह उनके स्वभाव की विशेषता थी कि वे किसी भी क्षेत्र में आधा प्रवेश नहीं करते थे। आर्य-समाज में भ उन्होंने जब प्रवेश किया तो शीघ्र ही तन्मय हो गए। सद्धर्म प्रचारक प्रेस, और पत्र की स्थापना भी आर्य-समाज के प्रचार की दृष्टि से ही की गई थी। शी घ्र ही उनका ध्यान वकालत की ओर से हट कर आर्य-समाज की ओर झुकता गया। लाहौर आर्य-समाज की दो पार्टियों के संघर्ष ने उन पर एक (महात्मा) पार्टी के नेतृत्व चोला डाल दिया, जिस से उन का अधिक समय आर्य-समाज के अर्पण होने लगा। कभी-कभी तो आर्य-समाज के उत्सवों के कारण वे सप्ताहों और महीनों तक अदालत में उपस्थित नहीं हो सकते थे। गाँव जाकर अपनी जमीन की देख-भाल क रना भी इसी बीच में छोड़ दिया था।

लाहौर में कालेज-पार्टी के संघर्ष का मुख्य परिणाम यह हुआ कि महात्मा पार्टी ने वेद-प्रचार के कार्य को अपनाया और पूरे जोर से चलाया। संघर्ष में स्वभावतः गर्मी उत्पन्न होती है, उस गर्मी ने महात्मा पार्टी के कार्य-कर्त्ताओं को असाधारण प्रेरणा दी जिस से आर्यसमाजों का जाल पंजाब के कोने-कोने में फैल गया।

पार्टी की दृष्टि से यह कार्य बहुत शानदार हुआ, परन्तु पिता जी उतने से संतुष्ट नहीं हो सक। कालेज पार्टी पर महात्मा पार्टी का सबसे बड़ा आक्षेप यह था कि कालेज में प्रचलित पाठ्य प्रणाली ऋषि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित पाठ्य प्रणाली के विरुद्ध और अनार्ष है। कालेज वाले कहते थे, यदि हमारी विधि अनार्ष है, तो तुम आर्ष विधि चला कर दिखाओ। इस चुनौती का जवाब पिता जी का गुरुकुल सम्बन्धी संकल्प था, जिस की पूर्ति में उन्होंने अपने यौवन का उत्तर भाग और सम्पूर्ण प्रौढ़ भाग सर्वतोभाव से लगा दिया। वकालत तो तभी छूट गई, जब पिता जी गुरुकुल के लिए ३००००) एकत्र करने की प्रतिज्ञा कर के घर से निकले। जब हरिद्वार के समीप गंगा के उस पार मुन्शी अमनसिंह जी ने गुरुकुल के लिए अपना काँगड़ी ग्राम दे दिया तब पिता जी ने घर भी छोड़ दिया और अपना बोरिया बँदना उठा कर गुरुकुल की भूमि में आ गये। सद्धर्म-प्रचारक प्रेस और पत्र जालन्धर वाली कोठी में ही चलते रहे। हम दोनों भाईयों को पिता जी ने सब से प्रथम गुरुकुल क छात्रों की सूची में अंकित करा दिया था। उन दिनों सम्भवतः ब्रह्मचारियों से १०) मासिक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

फीस ली जाती थी, पाछे से वह निरन्तर बढ़ती गई। जब तक हम दोनों गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त करते रहे तब तक निरन्तर हमारी फीस दी जाती रही। पिता जी निजी खर्च भी गुरुकुल से नहीं लेते थे। यह सब राशि सद्धर्म-प्रचारक की आय से ही दी जाती थी। वर्षों तक सद्धर्म-प्रचारक जालन्धर से निकलता रहा; परन्तु आँखों से इतना दूर रहने के कारण पिता जी ने उसे हरिद्वार मँगा कर चलाने का निश्चय किया। स्वर्गीय पं० केशवदेव शास्त्री की प्रबन्धकता में पत्र हरिद्वार में कुछ वर्ष तक चलता रहा, परन्तु पूरी देख-भाल न होने से वहाँ भी सन्तोष-जनक प्रबन्ध नहीं हो सका, पिता जी को कुछ समय के लिए हरिद्वार जा कर रहना पड़ा। इस का असर गुरुकुल के प्रबन्ध पर पड़ा, जिस से प्रभावित हो कर पिता जी ने निश्चय किया; कि प्रेस से भी मुक्ति पायी जाय, और सम्पूर्ण सद्धर्म-प्रचारक प्रेस गुरुकुल को दे दिया। सद्धर्म-प्रचारक पत्र अपना ही रक्खा, वह सद्धर्म-प्रचारक प्रेस में छपता था और उस की छपाई गुरुकुल को दी जाती थी। गाँव में हवेली और जमीन के जो टुकड़े थे वह इस से पूर्व ही सम्बन्धियों को दिए जा चुके थे। प्रेस का दान देने के पश्चात् कोठी के सिवा और कोई स्थिर सम्पत्ति पिता जी के पास शेष नहीं बची थी, फलतः कोठी के दान को सर्वमेध यज्ञ की पूर्णाहुति कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी। दान की घोषणा के पश्चात् हितषी लोग आँसुओं से भरी हुई आँखें और दुःख से लम्बायमान मुँह ले कर पिता जी के पास गए परन्तु वहाँ देखा कि उनके मुँह पर साधारण से भी अधिक सन्तोष और प्रसन्नता है। मानों एक भारी बोझ सिर पर से उतर गया हो। जो लोग सहानुभूति प्रकट करने गये थे, उनका साहस न हुआ कि कुछ कहें, उल्टा मन पर यह असर पड़ा कि शायद मकान के बोझ से ही महात्मा जी की सेहत खराब रहती थी' बोझ उतर जाने से अच्छी हो जायगी।

कुछ महानुभावों ने हम भाइयों पर करुणा भरी दृष्टि डालने की कृपा की। हम से मिले और कहा कि महात्मा जी ने यह बहुत बुरा किया। यदि तुम लोग उज्र-दारी करो तो दान-पत्र रद्द हो सकता है। पाठकों को जानकर यह आश्चर्य होगा कि ऐसा कहने वाले महानुभाव आर्य समाजी ही थे। जब हमसे उन्हें कोई प्रोत्साहन नहीं मिला, तो उन्होंने यही परिणाम निकाला होगा कि हम तो पहले ही जानते थे कि गुरुकुल के ब्रह्मचारी बुद्धू होते हैं, अपनी भलाई बुराई को नहीं समझते।

———

२२. पट परिवर्तन

१९१७ के अप्रैल मास में, गुरुकुलोत्सव से एक दिन पहले प्रातः काल के समय पिताजी ने मुझे अपने बंगले पर बुला कर सूचना दी कि मैंने कल संन्यास लेने का निश्चय कर लिया है' यह मैं पहले बता आया हूँ कि हम दोनों भाइयों पर पिता जी का बहुत आतंक था। मुझे यह याद नहीं कि उन्होंने कभी हमें शारीरिक दण्ड दिया हो, इस का कारण यह नहीं कहा जा सकता कि उस आतंक का कारण भय था। सम्भवतः उसका कारण जहाँ पिताजी का महान् व्यक्तित्व था, वहाँ साथ ही

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यह भी था कि वे हमारे बचपन में हम लोगों के अधिक निकट नहीं आए। गुरुकुल के जीवन में वे मुख्याधिष्ठाता थे और हम छात्र। हमारा उन से वही सम्बन्ध था जो अन्य दूसरे छात्रों का। स्वभावतः उस समय तक हम दोनों भाई पिताजी से किसी विषय पर वाद-विवाद नहीं कर सकते थे, इतना साहस ही नहीं होता था। जिस दिन की मैं बात लिख रहा हूँ शायद वह पहला दिन था, जब मैंने पिताजी से कुछ पूछने का साहस किया।

यह समाचार मुझे अन्य मार्गों से पहले ही मिल चुका था कि पिताजी संन्यास लेंगे। अवसर मिलने पर मुझे जो-जो आपत्तियाँ उठानी थीं, वह भी मैंने पहले से मन में तैयार कर रखी थीं। वह आपत्तियाँ निम्न प्रकार की थीं—संन्यास की प्रथा देश और जाति के लिए बहुत हानिकारक है। आप तो पहले ही 'संन्यासी' हैं, वेष बदलने से क्या लाभ ? संन्यास ले लेने पर भी आपको सार्वजनिक कामों के झंझट से छुट्टी नहीं मिलेगी।' मेरे इन तर्कों से पिताजी आश्चर्यित जरूर हुए, हाँ, इतना संतोष जरूर हुआ कि वह दुखित अथवा रुष्ट नहीं हुए। अपने संन्यास लेने के पक्ष में उन्होंने बहुत सी बातें मुझे समझायीं। देर तक मैं सन्देह की दशा में ही बना रहा। किन्तु जब अन्त में पिताजी ने गम्भीर भाव से कहा—'इन्द्र, तुझे तो मालूम ही है कि मैं युक्ति के आधार पर कोई कदम नहीं उठाता, केवल श्रद्धा से प्रेरित हो कर ही उठाता हूं। यह निश्चय भी मैंने श्रद्धावश ही किया है। मेरा यह निश्चय अटल है।' तब मैंने मौन होकर सिर झुका दिया।

इस प्रसंग में पाठक देखेंगे कि मैंने पिताजी के पास आपने एकाकी बुलाए जाने की बात लिखी है। इससे पूर्व प्रायः दोनों भाइयों की इकट्ठी चर्चा करता रहा हूँ। इसके लिए बीच के वर्षों की कुछ घटनाओं की ओर संक्षिप्त निर्देश कर देना आवश्यक है। १९१२ में हम दोनों भाई स्नातक हुए। मैंने इस से पूर्व एक संस्मरण में लिखा था कि पिताजी हरिश्चन्द्र जी को पत्रकार और मुझे बैरिस्टर बनाना चाहते थे। परन्तु 'हमारे मन कुछ और हैं, विधना के कुछ और'। घटनाचक्र उल्टी गति से चलता रहा। मैं स्नातक बनने से पूर्व ही 'सद्धर्मप्रचारक' के सम्पादन में सहायता देने लगा था। छात्रावस्था में कई वर्षों तक हस्तलिखित पत्रिका निकालता रहा। स्नातक होने के समय मेरा मन पत्रकार-कला की ओर पूरी तरह झुक चुका था। फलतः मैं 'सद्धर्म-प्रचारक' का सम्पादक बन कर दिल्ली चला आया और भाई हरिश्चन्द्र जी गुरुकुल काँगड़ी में उपाध्याय का कार्य करने लगे। वह उपाध्याय के तौर पर गुरुकुल में एक वर्ष से कुछ अधिक समय तक रहे। उसी वर्ष उन का विवाह हो गया। अगले वर्ष हम लोगों ने स्थान परिवर्तन कर लिया। वह दिल्ली आकर पत्रकार बन गए और मैं गुरुकुल जाकर उपाध्याय का कार्य करने लगा। दिल्ली आ कर भाईजी ने 'सद्धर्म-प्रचारक' के अतिरिक्त साप्ताहिक 'विजय' निकालना भी आरम्भ कर दिया। वह कुछ दिनों तक खूब चमका परन्तु उस की चमक को स्थानीय सरकार न सह सकी और ६ या ७ अंक निकाल कर ही उसको इतिश्री कर देनी पड़ी।

१९१४ में योरुप का पहला महायुद्ध आरम्भ हो गया। 'विजय' का प्रकाशन बन्द होने से भाई जी उदास हो चुके थे, इधर संसार की इतनी बड़ी घटना को देखने के लिए मन में जो स्वाभाविक गुदगुदी पैदा होती है, वह बहुत तीव्र हो चुकी थी।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उसी समय प्रसिद्ध देश भक्त महेन्द्र प्रताप जी ने भाई जी को विलायत चलने के लिये निमन्त्रित कर दिया। राजा साहब विदेश जाने का अन्तिम निश्चय कर चुके थे। भाई जी को मानो मुँह माँगी मुराद मिली। वह झटपट दिल्ली का घरबार समेट कर देहरादून चले गए और वहाँ से पिताजी की आज्ञा, मेरी अनुमति और अपनी सहधर्मिणी की सम्मति लिए बिना ही चुपचाप राजा महेन्द्र प्रताप जी के साथ विलायत को रवाना हो गए। उस समय भाई जी का पुत्र रोहिताश्व कुछ महीनों का ही था।

इस प्रकार घटना चक्र ने पिताजी के पास उपस्थित होने के लिए मुझे अकेला ही छोड़ दिया।

उस वर्ष का गुरुकुलोत्सव पिताजी के संन्यास के रंग से रंगा हुआ था। प्रायः सभी व्याख्यान और भाषणों में उस की चर्चा की गई। आर्य जनता की ओर से एक मानपत्र भेंट किया गया। अपील के समय अभ्यर्थना के तौर पर कोई शब्द न कहने पर भी लगभग ७० हजार रुपये एकत्रित हो गए।

पिता जी के संन्यास आश्रम में प्रवेश के समाचार को लोगों ने अपनी रुचि के अनुसार भिन्न- भिन्न रूप में सुना। मुझ से अनेक सज्जनों ने उस विषय में बात चीत की, जिससे मैं उन की भावनाओं को भली प्रकार भाँप सका। सामान्य आर्य जनता बहुत सन्तुष्ट और प्रसन्न थी। उसे पिता जी के त्यागमय जीवन का यह अन्तिम चरण उचित ही प्रतीत होता था। गुरुकुल और सभा के कुछ मुख्य अधिकारियों के सन्तोष और प्रसन्नता के भाव में कुछ थोड़ा सा यह संकुचित भाव मिश्रित प्रतीत होता था कि महात्मा जी के संन्यास ले कर गुरुकुल से अलग हो जाने पर एक बड़ा लाभ यह होगा कि उन लोगों को गुरुकुल का संचालन करने का इच्छानुसार खुला मौका मिलेगा। पिता जी के विशाल व्यक्तित्व से वे अपने मार्ग को रुका हुआ समझते थे। निजी बातचीत में ऐसे लोग अपने भाव को काफी स्पष्टता से प्रकाशित कर रहे थे। सभा के मुख्य अधिकारियों में से जो सब से ऊंचे अधिकारी थे, उन्हें पिता जी के संन्यास लेने के विचारमात्र से ही अत्यन्त दुःखी पाया। वह थे आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान लाला रामकृष्ण जी।

लाला रामकृष्ण जी का सार्वजनिक जीवन पिता जी के सार्वजनिक जीवन में इतना ओत-प्रोत था कि उनके विषय में विशेष चर्चा किए बिना मैं इस प्रसंग को समाप्त करना नहीं चाहता। लाला रामकृष्ण जी पिता जी के सब से पुराने और स्थिर साथियों में से थे। जब हम बहुत छोटे थे, गुरुकुल में जाना तो दूर रहा, प्राइमरी स्कूल में भी अभी पढ़ने नहीं गए थे, तब की बात याद है कि लाला रामकृष्ण जी हमारे मकान पर प्रायः प्रतिदिन सायंकाल को आकर पिता जी से बातें किया करते थे। पिता जी आर्य समाज जालन्धर के प्रधान थे। लगभग २० साल के पश्चात् जब पिता जी ने संन्यास लेने का विचार किया, तब लाला रामकृष्ण जी गुरुकुल की स्वामिनी सभा आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान थे और पिता जी गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता थे। बचपन की यह बात याद है कि हमारा साईस और लाला रामकृष्ण जी का साईस दोनों भाई थे। हमारे साईस का नाम नबीबख्श था और उन के साईस का नाम मुरादबख्श १९१७ की यह बात याद है कि जब जनता और साथ के अन्य काम करने वालों ने पिता जी को महात्मा जी कहना शुरू कर दिया, तब भी केवल लाला

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यह समाचार मैंने थोड़े से शाब्दिक परिवर्तन के साथ उस समय के 'विजय' से उद्धृत किये हैं। इस अध्याय में स्थान-स्थान पर मैं इसी प्रकार 'विजय' के उद्धरण दूँगा। उस समय 'विजय' का सम्पादक मैनेजर और रिपोर्टर मैं ही था। यह सब वृत्तान्त मेरा ही लिखा हुआ है। इस कारण इसे मैं अपनी स्मृतियों का बिल्कुल ताजा टुकड़ा ही समझता हूँ।

नौ बजे तक शहर में बिल्कुल शांत हड़ताल रही। उसके पश्चात् तरह-तरह के विक्षोभजनक समाचार फैलने लगे। एक समाचार यह फैला कि हौज काजी के पास कुछ लड़कों ने एक मोटर को रोककर सवारियों को नीचे उतरने के लिए कहा जैसे कि जनता सभी से कह रही थी। दवयोग से मोटर में बठें हुए साहब पुलिस के कप्तान थे। आपने लड़कों की इस हरकत को इतना बुरा समझा कि आव देखा न ताव और सीटी बजाकर झट से पुलिस को बुला लिया। पुलिस ने आते ही डंडा बरसाना शुरू कर दिया। इस पर भीड़ बिखर गई जिसके पश्चात् पुलिस ने दो आदमियों को गिरफ्तार करके कोतवाली में पहुँचा दिया।

इधर यह हो रहा था, उधर रेल के स्टेशन पर घटनाओं का चक्र और भी अधिक तेजी से चल रहा था। दो-तीन स्वयंसेवक स्टेशन के दुकानदारों को दुकानें बन्द करने की प्रेरणा करने गए। दुकानदार दुकान बन्द करने को तैयार हो गए। इतने में ठेकेदार आ गया और उसने हड़ताल करने से इन्कार कर दिया। इस समय स्टेशन पर काफी भीड़ इकट्ठी हो चुकी थी। उसे देखकर रेलवे पुलिस का सुपरिन-टेन्डेण्ट वहाँ आकर लोगों को धमकाने लगा। इस पर दो-एक आदमियों ने जवाब दे दिया। साहब ने सीटी देकर पुलिस इकट्ठी कर ली और दो आदमियों को गिरफ्तार करके स्टेशन की हवालात में बन्द करा दिया। यह समाचार शहर में फैल गया कि स्टेशन पर दो स्वयं-सेवक पकड़े गए हैं। थोड़ी देर में स्टेशन के सामने चार-पाँच हजार आदमी इकट्ठे हो गए। लोगों ने पुलिस से कहा कि दोनों आदमी बेकसूर हैं, छोड़ दिए जायें। पुलिस ने उत्तर दिया कि दोनों छोड़ दिए गए। इस पर लोगों ने आग्रह किया कि छोड़ दिए गए हैं तो दिखा दो। इधर यह बातचीत हो रही थी, उधर किले से मशीनगनों के साथ गोरों का रिसाला आ पहुँचा। हथियार बन्द पुलिस वहाँ पहले ही विद्यमान थी। डराने का यह सब सामान सामने खड़ा करके भीड़ को हट जाने का हुक्म दिया गया। लोग डरे नहीं, जमकर खड़े रहे और यह कहते रहे कि हमारे दोनों आदमी दे दो, हम चले जाएंगे? कहते हैं, एक चौदह साल का ब्रह्म-चारी कूद कर मशीनगन पर चढ़ गया और लोगों को निर्भयता का उपदेश देने लगा। पुलिस के आदमियों ने उसे पकड़ कर नीचे उतारा। इस समय अकस्मात् सिपाहियों ने पहले भीड़ पर संगीनों का वार किया, फिर गोली चला दी।

संगीनों और गोलियों ने कितने लोगों को घायल किया इसके बारे में एक मत नहीं हो सका। दर्शकों की सम्मति थी कि सत्ताईस के लगभग आदमी घायल हुए जिनमें से दो वहीं मर गए। लाशों और घायलों को घसीट कर सिपाही कम्पनी बाग में ले गए। बाग को भीड़ से खाली कराकर उसके सब दरवाजे पुलिस ने बन्द कर दिए। इस कार्य ने शहर में घायलों की दशा और संख्या के सम्बन्ध में तरह-तरह की अफवाहें फैलाने में बहुत सहायता दी। प्रसिद्ध हो गया कि बाग में सैकड़ों लाशें इकट्ठी हो गई हैं। स्टेशन की ओर से हटाए जा कर लोग

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चांदनी-चौक में इकट्ठे हो गये और बाग के घन्टा घर के सामने वाले द्वार पर जमा होकर पुलिस से लाशों की मांग करने लगे। बाग के द्वार बन्द थे। बाहर भीड़ थी और अन्दर पुलिस। कहा-सुनी में पुलिस के आदमियों को तैश आ गया। पीछे से कहा गया कि लड़कों ने पुलिस के सिपाहियों पर पत्थर फैंके थे। सम्भव है किसी लड़के ने पत्थर फेंका भी हो। पुलिस ने दूसरी बार फिर गोली चला दी, जिससे कम-से-कम १० आदमी घायल हो गए। पुलिस यहाँ से भी घायलों को घसीट कर बाग में ले गई।

इस प्रकार भारत के इस नवीन अभ्युत्थान का श्रीगणेश रक्तपात से हुआ। सरकार की गोलियों से भारतीय प्रजा का रक्त बह कर मिश्रित हो गया। उसमें हिन्दुओं का भी रक्त था और मुसलमानों का भी। कुर्बानी के उस अनूठे मिश्रण ने नगर में जागृति, जोश और एकता की एक ऐसी लहर उत्पन्न कर दी, जैसी इस सदियों बूढ़ी नगरी में इससे पूर्व शायद ही कभी दिखाई दी हो।

———

२४. संगीनों की नोक पर

जो सभा पीपल-पार्क में चार बजे से शुरू होने वाली थी, वह अढ़ाई बजे ही आरम्भ कर देना पड़ी। पीपल-पार्क के शेष भाग में अभी धूप थी, इस कारण पत्थर वाले कुएँ के पास बनारसी कृष्ण मैन्शन की छाया में लोग बैठ गये और वहीं सभा आरम्भ हुई। कुछ कविता पढ़ी गईं, जिनके पश्चात् पिताजी जनता को शान्ति का उपदेश देने के लिए खड़े हुए। उसी समय गोली चलने की आवाज सुनाई दी और थोड़ी देर बाद घबराये हुए लोग भाग कर आये। उनसे मालूम हुआ कि पुलिस ने घण्टाघर पर एकत्रित हुई जनता पर गोली चला दी है जिससे बहुत से व्यक्ति घायल हो गये हैं। इस समाचार से लोगों में हलचल सी मच गई और वे हिलने लगे। उन्हें समझा बुझाकर शान्त किया जा रहा था कि इतने में उत्तर दिशा से घुड़सवार सेना का एक दस्ता सभा की ओर बढ़ता दिखाई दिया। सन् ५७ की क्रांति के बाद शायद यह पहला अवसर था कि दिल्ली के निवासियों पर सेना चढ़ाई करती हुई दिखाई दी। जनता ने जिस धैर्य से उस दृश्य का सामना किया वह प्रशंसनीय था। लोग अपनी जगह पर बैठे प्रतीक्षा करने लगे कि आगे क्या होगा? सेना की टुकड़ी सभा के पास आकर रुक गई। उनके अफसर ने आगे बढ़कर पूछा 'यहाँ क्या हो रहा है?' स्वामी जी उस समय व्याख्यान दे रहे थे। उन्होंने अफसर को अंग्रेजी में समझाया कि 'यह सभा हो रही है और मैं लोगों को शान्त रहने का उपदेश दे रहा हूँ।' इस उत्तर से वह अफसर किंकर्त्तव्य-विमूढ़ सा हो गया और कुछ देर तक चुप रह कर बोला—'अच्छा, तो आप लोग अमन से जलसा करते रहिए, हम जाते हैं।' यह कह कर वह सिपाहियों को ले कर चला गया। सभा जारी रही।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लगभग साढ़े चार बजे मैदान में छाया काफी फैल गई थी। तब च बना कर खुली जगह में सभा जारी रखी गई। अभी पाँच ही बजे होंगे कि फौज ने दूसरी बार सभा का घेरा डाल दिया। इस बार सभा को लगभग चारों ओर से घेर लिया गया। एक ओर घुड़सवार सेना थी। किले की ओर सड़क पर कई मशीनगनें खड़ी थीं और दो ओर से पुलिस ने नाकाबन्दी की हुई थी। पुलिस के आगे-आगे दिल्ली प्रान्त के चीफ कमिश्नर मि० बैरन, डिप्टी कमिश्नर मि० वीडन, सिटी मजिस्ट्रेट, कोतवाल आदि अधिकारियों की कतार लगी हुई थी। यद्यपि परिस्थिति काफी भयंकर थी तो भी जनता हिली नहीं, अपनी जगह जमी रही। उस समय स्वामी जी मंच पर खड़े होकर जनता को शान्त रहने का उपदेश दे रहे थे। चीफ कमिश्नर ने हाथ के इशारे से स्वामी जी को अपने पास आने को कहा। पहले तो स्वामी जी ने चीफ कमिश्नर को उत्तर दिया कि 'मैं यहीं से सुन लूंगा और आप को जवाब दे दूँगा। आप को जो कुछ कहना है वहीं से कह दीजिए।' परन्तु जब चीफ कमिश्नर ने दो-तीन बार स्वामी जी को पास आने को कहा तब वे बाहर चले गये और चीफ कमिश्नर से बातें करने लगे। स्वामी जी ने चीफ कमिश्नर को बताया कि 'हम पुर-अमन सभा कर रहे हैं। मैं लोगों को शान्त रहने का उपदेश दे रहा हूँ।' इस पर चीफ कमिश्नर ने स्वामी जी से पूछा कि आप लोग इन्हें भड़कायेंगे तो नहीं? स्वामी जी ने उत्तर दिया—हम सत्याग्रही हैं, हम लोगों को शान्ति का उपदेश दे रहे हैं, आपको ऐसा सन्देह भी न करना चाहिए कि हम इन्हें भड़कायेंगे। चीफ कमिश्नर ने बातचीत के अन्त में स्वामी जी से कहा—मैं आप की जिम्मेवारी पर इस सभा को जारी रहने देता हूँ। स्वामी जी ने उत्तर दिया—मैं जिम्मेवारी लेने को तैयार हूँ, यदि पुलिस या सेना व्यर्थ में दखल देकर लोगों को न भड़कायें। चीफ कमिश्नर यह कहकर दल-बल सहित सभा से चले गये कि जलसा शान्ति से कर लो; जलसे के बाद घरों को जाते हुए लोग कोई गड़बड़ न करेंगे तो पुलिस या मिलिटरी के लोग किसी प्रकार की दस्तअन्दाजी नहीं करेंगे।

सभा के किले का दूसरा घेरा उठ जाने के पश्चात् कार्यवाही फिर जारी हो गई। मि० श्वैब कुरैसी एम० ए० ने, जो अब पाकिस्तान में एक उच्च अधिकारी हैं, एक शानदार व्याख्यान दिया, जिसका अन्तिम भाग यह था—'ये हैवानी ताकतें हैं, आप इनसे न डरें। खुदा आप के साथ है। जालिम जुल्म करें और आप सदाकत पर जमे रहें।

इस सभा में पं० लक्ष्मीनारायण जी का भी भाषण हुआ। पंडित जी कट्टर सनातन-धर्मी थे और बहुत ही पुराने विचारों के प्रचारक समझे जाते थे। उन्हें राजनीतिक सभा में बोलते देखकर लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ। मौलाना अहमद सईद और पण्डित लक्ष्मीनारायण जैसे कट्टर मजहबी आदमियों का राजनीति के मंच पर आ जाना भी उस जागृति का एक चमत्कार था।

जब उस दिन की सभा समाप्त हुई, तब आकाश में सन्ध्या का अंधेरा छा चुका था। शान्ति का उपदेश चार-पाँच घण्टे तक सुनकर जनता अशान्ति के प्रभाव से निकल चुकी थी। दिन की घटनाओं से जो विक्षोभ उत्पन्न हुआ था, वह सत्याग्रह के सन्देश से कुछ शांत हो गया था। सभास्थान से आगे-आगे स्वामी जी चले और उनके पीछे 'भारत माता की जय' हिन्दू मुसलमान की जय' आदि नारे लगाती हुई

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जनता चली। वह लगभग बीस-पच्चीस हजार की भीड़, एक क्रम में बँध कर फव्वारे से होती हुई घण्टाघर की ओर जा रही थी और उनके पीछे-पीछे कई मशीनगनें और बहुत से घुड़सवार सिपाही, मानो पहरा देते जा रहे थे। मैं भी उस भीड़ की अगली श्रेणी में, स्वामी जी की दाईं ओर चल रहा था। इससे जो घटना घण्टा-घर पर हुई—वह मैंने पूरी तरह आँखों से देखी। बहुत से चित्रकारों और कवियों ने उस घटना के प्रतिभा-सम्पन्न चित्र खींचे हैं। मैं उसका यथासम्भव, यथार्थ वर्णन लिखता हूँ।

सारी घटना लगभग पाँच मिनट में समाप्त हो गई। जब जन-समुदाय घण्टाघर तक पहुँच गया, तब देखा कि कुछ आगे, कम्पनी बाग की ओर, गोरखा सिपाही लाइन बाँधे खड़े हैं। लोग नारे लगाने में मस्त थे और तेजी से आगे बढ़ते जा रहे थे। सिपाही भीड़ को अपनी ओर आता देख कर कुछ घबरा गये और तीन-चार कदम पीछे हटकर अपनी बन्दूकों को ऐसे ढंग से सम्भालने लगे जैसे गोली छोड़ने के समय सम्भालते हैं। उस समय उनका अफसर वहाँ नहीं था इस कारण वे किंकर्त्तव्य-विमूढ़ से हो रहे थे कि इतने में एक बन्दूक चल गई। सरकार का बयान था—वह Misfire था, अर्थात् गोली भूल से चल गई थी। यह सर्वथा सम्भव है कि गोली भूल से चल गई हो। लोग गोली की आवाज से विक्षुब्ध हो गये। स्वामी जी ने लोगों को वहीं ठहरने और खड़े रहने का आदेश दिया और स्वयं आगे बढ़ कर सिपाहियों की श्रेणी के ठीक सामने जाकर खड़े हो गये। सिपाही आश्चर्यित थे कि अब क्या करें?

स्वामी जी ने सिपाहियों से पूछा—'तुमने गोली क्यों चलाई?'

इस प्रश्न का कोई उत्तर न देकर कई सिपाहियों ने अपनी बन्दूक की संगीनें स्वामी जी की ओर बढ़ाते हुए कहा—'हट जाओ, नहीं तो हम छेद देंगे। स्वामी जी एक कदम और बढ़ गये। अब संगीन की नोक स्वामी जी की छाती को छू रही थी। स्वामी जी ने बड़े ऊँचे स्वर से कहा—'मार दो।' और वहीं खड़े रहे।

यह दृश्य शायद मिनट भर रहा होगा। इतने में एक अंग्रेज अफसर घोड़ा भगाये हुए वहाँ आया। उसके आने पर सिपाहियों ने बन्दूक नीचे कर लीं। स्वामी जी ने अफसर से पूछा—'गोली क्यों चलाई गई?'

अफसर ने बहुत अस्पष्ट शब्दों में उत्तर दिया—'It was only misfire'—गोली भूल से चल गयी थी! साथ ही उसने सिपाहियों को पीछे हटकर, भीड़ के लिए रास्ता छोड़ने का हुक्म दे दिया। सिपाही पीछे हट गये। जनता ने फिर अपना कोलाहलपूर्ण प्रयाण जारी रखा। यह जुलूस नये बाजार में श्रद्धानन्द बलिदान भवन की इमारत तक गया। स्वामी जी सीढ़ियों पर चढ़ गये और लोग अपने-अपने घरों को चले गये।

———

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रामकृष्ण जी ही एक थे जो उन्हें केवल मुन्शीराम जी कह कर बुलाया करते थे और पिता जी भी उन्हें रामकृष्ण जी कह कर पुकारा करते थे। उनके प्रेम का ही बन्धन था। जिसने तीन वर्ष तक पिता जी को संन्यास लेने से रोके रखा।

यों चरित्र विश्लेषण की दृष्टि से, पिता जी की और लाला रामकृष्ण जी की तुलना बहुत ही मनोरंजक हो सकती है। ऊपर के रूप की दृष्टि से दोनों में पूर्ण विषमता थी। पिता जी हजारों की भीड़ में भी सब से अलग और प्रमुख दिखाई देते थे और लाला रामकृष्ण जी को सभा के प्रधान की कुर्सी पर बैठे होने पर भी तब तक कोई प्रधान नहीं समझ सकता था, जब तक उसे बताया न जाय। पंजाब के खत्रियों का सा साधारण वेष, छोटी-छोटी दाढ़ी और शान का सर्वथा अभाव उन्हें मध्यम श्रेणी की जनता में मिला देता था। पिता जी कहा करते थे कि लाला रामकृष्ण जी चौबीस घंटों में एक वाक्य प्रति घण्टा के हिसाब से अधिक कभी नहीं बोलते। व्याख्यान देने के लिए उन्हें व्याख्यान वेदी पर आते मैंने कभी नहीं देखा। सम्भव है, कोई सौभाग्यशाली ऐसा हो जिसने कभी एकाध बार उन का पाँच मिनट का व्याख्यान सुना हो।

ऐसा व्यक्ति था। जिसने ग्यारह या बारह वर्षों तक आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब जैसी सजीव और कोलाहल पूर्ण संस्था का संचालन किया। ऐसा मित्र था जिसने बीस से अधिक वर्षों तक पिता जी के साथ अटूट सामाजिक बन्धुत्व निभाया। बीसियों मित्र बने और अलग हो गए, उनसे भी अधिक लोग भक्त श्रेणी में शामिल हुए और साथ न चल सकने के कारण या तो पिछड़ गए अथवा समालोचक बन गए। पर लाला रामकृष्ण जी ने पिता जी के सम्पूर्ण आर्य-सामाजिक जीवन में अपने को लक्ष्मण बनाए रखा। दृढ़ता और स्थिरता यह दो प्रधान रामकृष्ण जी के जीवन के मूल मन्त्र थे। उन्होंने उन्हें कुन्दन बना दिया था।

गुरुकुल के उत्सव की समाप्ति से अगले दिन पिता जी संन्यास ग्रहण करने वाले थे। मैंने देखा कि गुरुकुल में विद्यमान सभी नर-नारी ऐसा अनुभव कर रहे थे जैसे उनका बुजुर्ग ही संन्यास ले रहा हो। जैसे किसी सम्बन्धी के अलग होने से दुःख होता है, वैसा ही सब लोग अनुभव कर रहे थे। केवल युक्ति की कसौटी पर कस कर देखें तो वह दुःख सहेतुक प्रतीत नहीं होता था। वह संन्यास ही तो ले रहे थे, देश छोड़ कर तो नहीं जा रहे थे। हमारी बड़ी बहन वेद कुमारी जी आँसुओं से रो रही थीं। गुरुकुल के ब्रह्मचारी और अध्यापक जब अपने मुख्याधिष्ठाता और आचार्य को विदा दे रहे थे, तब उन की आँखें भीगी हुई थीं। दूसरे की क्या कहूँ, मैं स्वयं इस बात पर आश्चर्यित था कि कई बार आँसुओं ने मेरी आँखों से भी निकलने का यत्न किया और जब मैंने यह सोच कर कि इस अवसर पर रोना अहेतुक है, उन्हें बार-बार रोकने का प्रयत्न किया तो उस का मेरे शरीर पर बुरा असर पड़ा। संस्कार से एक दिन पहले मुझे ज्वर आ गया।

उत्सव से अगले रोज प्रातःकाल गंगा के इस पार मायापुर वाटिका में संन्यास ग्रहण का समारोह हुआ। गुरुकुल के उत्सव में उपस्थित प्राय. सभी नर-नारी मायापुर में ठहर गए। संस्कार के समय हजारों की भीड़ थी। आर्यसमाज के बहुत से संन्यासी, पण्डित तथा अधिकारी साक्षी रूप से उपस्थित थे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

संस्कार में सब से विशेष बात यह हुई कि पिता जी ने किसी महानुभाव को अपना आचार्य न बना कर परमात्मा को ही आचार्य माना और जो प्रक्रिया आचार्य द्वारा होनी चाहिए थी, वह स्वयं ही पूरी कर ली। इस पर कुछ संन्यासियों और पुराने ढंग के रूढ़िवादी आर्य लोगों में भी काफी असन्तोष उत्पन्न हुआ। हल्की सी बुड़बुड़ाहट भी सुनाई दी, परन्तु जब पिता जी क्षौर करा कर और विधि-पूर्वक भगवा वेष पहन कर यज्ञ मण्डप में आये तो चारों ओर से जो प्रसन्नता सूचक जयकारों और तालियों की गड़गड़ाहट का शब्द उठा, उस में सब विरोधी भावनाएँ दब गईं। अन्त में पिता जी ने खड़े होकर निम्नलिखित आशय की घोषणा की—

'मैं सदा सब निश्चय परमात्मा की प्रेरणा से श्रद्धा-पूर्वक ही करता रहा हूँ। मैंने संन्यास भी श्रद्धा की भावना से प्रेरित हो कर ही लिया है। इस कारण मैंने 'श्रद्धानन्द' नाम धारण कर के संन्यास में प्रवेश किया है। आप सब नर-नारी प्रभु से प्रार्थना करें कि वे मुझे अपने इस नये व्रत को पूर्णता से निभाने की शक्ति दें।'

इस प्रकार श्रद्धा से प्रेरित हो कर सर्वमेध-यज्ञ का यह अन्तिम विधान भी पिता जी ने पूरा कर दिया। इस का एक परिणाम यह हुआ कि मेरा पिता जी कहने का अधिकार छिन गया और मुझे भी अन्य सब लोगों की तरह स्वामी जी कहने के लिए ही कर्त्तव्यबद्ध होना पड़ा।

———

२३. राजनीति के रणक्षेत्र में

लगभग दो वर्ष पूर्व, १९१७ ई० के अप्रैल मास में पिता जी मायापुर वाटिका में संन्यास ग्रहण कर रहे थे और मैं गुरुकुल काँगड़ी के उपाध्याय की हैसियत से दर्शकों में बैठा हुआ था। घटनाचक्र का यह वृत्तान्त जो मैं अब सुनाने लगा हूँ, १९१९ ई० के मार्च मास के अन्त में प्रारम्भ होता है।

२९ मार्च १९१९ के सायंकाल दिल्ली में एक विराट् सभा हुई। उस के सभापति स्वामी जी (पिता जी) थे। उपस्थिति लगभग १० हजार की थी, जो सत्याग्रह आन्दोलन के प्रारम्भ काल में बहुत बड़ी मानी जाती थी। सभा में जिन वक्ताओं के भाषण हुए, उन में मेरे अतिरिक्त मिस्टर अब्बास हुसैन कारी, मौलाना अहमद सईद और लाला शंकरलाल के नाम उल्लेख योग्य हैं। सभा का उद्देश्य दिल्ली निवासियों को उस हड़ताल की सूचना देनी थी, जो ३० मार्च को रौलट एक्ट के विरुद्ध प्रतिवाद के रूप में होने वाली थी।

इस समाचार को भली प्रकार समझने के लिए बीच की कुछ घटनाओं का दिग्दर्शन उपयोगी होगा। स्वामी जी ने संन्यास लेने के साथ ही गुरुकुल छोड़ दिया और दिल्ली आ गए। दिल्ली के प्रसिद्ध दानवीर सेठ रघूमल लोहिया चिरकाल से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वामी जी में श्रद्धा और आस्था रखते थे। नया बाजार (बर्नबैश्चन रोड, वर्तमान श्रद्धानन्द बाजार) पर उनके दो मकान थे। उनमें से एक मकान की पहली मंजिल सेठ जी ने आश्रम के तौर पर उपयोग में लाने के लिए स्वामी जी को समर्पित कर दी। स्वामी जी ने उसमें आश्रम बनाया और जीवन के शेष वर्षों में उसी में स्थिर निवास रखा। उसी मकान को 'श्रद्धानन्द-बलिदान-भवन' के नाम से प्रसिद्ध होने का सौभाग्य मिला है। बीच के दो वर्षों में स्वामी जी ने दिल्ली में तथा उत्तरीय भारत के अन्य प्रदेशों में दलितोद्धार आन्दोलन को जागरित और संगठित किया।

मैंनें १९१८ के अन्तिम भाग में गुरुकुल से एक वर्ष की फर्लो प्राप्त कर ली थी और नए बाजार के ही दूसरे भाग में एक मकान किराये पर लेकर 'विजय' नाम का दैनिक पत्र निकाला था। 'विजय' की कहानी कहीं अन्यत्र विस्तार से सुनाई जायेगी, यहाँ तो वृत्तान्त के क्रम को बाँधने के लिए केवल इतना बतला देना आवश्यक है कि मैं गुरुकुल से अवकाश लेकर दिल्ली आ गया था और दैनिक 'विजय' का सम्पादन और संचालन करता था। 'विजय' दिल्ली और पंजाब का पहला हिन्दी दैनिक-पत्र था। उसका दृष्टिकोण विशुद्ध राष्ट्रीय था।

१९१८ ई० में यूरोप का पहला महासंग्राम समाप्त हुआ। युद्ध के समय इंग्लैंड के शासकों ने हिन्दुस्तानियों को स्वराज्य की बड़ी-बड़ी आशायें दिलाई थीं। जब युद्ध समाप्त हो गया और इंग्लैंड की जीत हो गई तो भारतवासियों को स्वराज्य की पहली किश्त रौलट ऐक्ट के रूप में पेश की गई। उस समय की प्रचलित भाषा में रोटी की आशा दिलाकर पत्थर भेंट किया गया। देश में इस विश्वासघात के कारण असन्तोष और रोष की घोर ज्वाला उत्पन्न हुई जो निरन्तर बढ़ती गई। अन्त में महात्मा गाँधी मैदान में आये और देशवासियों के सामने अहिंसात्मक सत्याग्रह द्वारा रौलट ऐक्ट का विरोध करने का प्रस्ताव रखा।

स्वामी जी तब तक क्रियात्मक राजनीति से सर्वथा अलग रहते थे। उन्हें कोरी राजनीति में अणुमात्र भी श्रद्धा नहीं थी। उसे वह केवल 'प्रदर्शन' मानते थे। गाँधी जी के तपस्यात्मक राजनीति के मैदान में आते ही स्वामी जी का हृदय उस ओर झुक गया। जब १९१९ के प्रारम्भ में महात्मा गाँधी भारत के वायसराय से मिलने दिल्ली आये, तो स्वामी जी ने उन से भेंट की। उस भेंट का पूरा विवरण तो प्राप्त नहीं है, हाँ उस भेंट के पश्चात् स्वामी जी ने मुझे यह बतलाया कि यदि महात्मा गाँधी ने सत्याग्रह प्रारम्भ किया तो मैंने उन्हें आश्वासन दे दिया है कि मैं उनका साथ दूँगा। स्वामी जी दिल्ली की सत्याग्रही सेना के प्रथम सैनिक और प्रकृतिसिद्ध गुणों के अनुसार प्रथम मार्ग-दर्शक बन गये। वायसराय की ओर से महात्मा गाँधी को कोरा उत्तर मिला और उन्होंने सत्याग्रह आरम्भ करने की घोषणा कर दी तो दिल्ली में भी सत्याग्रह कमेटी स्थापित हो गयी। स्वामी जी के पीछे-पीछे मैं भी उस में सम्मिलित हो गया।

सत्याग्रह की लड़ाई का पहला कदम यह था कि देश भर में एक निश्चित दिवस 'प्रार्थना-दिवस' के रूप में मनाया जाय। जिसमें आम हड़ताल हो, सब लोग दिन भर का उपवास करें और ईश्वर से देश के कल्याण की प्रार्थना करें। इस पग के उठाने में दिल्ली की सत्याग्रह कमेटी सबसे तेज रही। अभी महात्मा गाँधी ने हड़ताल का दिन निश्चित नहीं किया था कि दिल्ली की सत्याग्रह कमेटी ने यह घोषणा कर दी कि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

३० मार्च को शहर में पूरी हड़ताल होगी और उपवास रखा जायेगा। जिस सभा के विवरण से यह परिच्छेद आरम्भ हुआ है, वह उसी दिवस का कार्यक्रम जनता को समझाने के लिए बुलाई गई थी।

उस सभा में कई विशेषताएँ थीं, जिन्हें हम राजनीति में आगे वाले युग के चिन्ह कहें तो अनुचित न होगा। स्वामी जी का तब तक का जीवन धर्म और शिक्षा के विस्तार में व्यतीत हुआ था, वे पहली बार इतनी बड़ी राजनीतिक सभा का सभापतित्व कर रहे थे। मौ० अहमद सईस का इससे पूर्व राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं था। वे मस्जिद में कुरान की शिक्षा देते थे, मजहबी जलसों में वाज करते थे और कभी-कभी आर्य-समाज पण्डित से मुबाहिसा भी किया करते थे। उनका एक राजनीतिक जलसे में आना समय का चिन्ह था। १९१४-१८ के युद्ध में टर्की का अंग्रेजों के विरुद्ध लड़कर परास्त होना और फिर मित्र राष्ट्रों की जीत के कारण खिलाफत का नष्टप्रायः होना अपना असर दिखा रहा था। मौलवी सम्प्रदाय की अंग्रेजी विरोधिनी भावना प्रतिदिन वृद्धि पर थी।

कारी साहिब उन मुसलमान नौजवानों में से थे जो मजहबी दीवाने नहीं थे। उनके हृदयों में वस्तुतः देशभक्ति का भाव विद्यमान था। वे प्रसन्न थे कि घटनाचक्र ने उनके मजहब को राजनीति के अनुकूल बना दिया है। उन्हें सन्तोष था कि वह कट्टर मुसलमान रहते हुए भी जनता के सामने देश-भक्ति की बातें कह सकते थे।

मेरा बचपन से ही राजनीति की ओर झुकाव था। दिल्ली आकर मेरे उस झुकाव को पनपने और कार्यरूप में परिणित होने का अवसर मिला, मानो प्यासे को पानी मिल गया। पिताजी के राजनीति-प्रवेश ने मुझे अवसर दिया कि मैं अपनी बचपन की हवस को पूरा करने के लिय गहरे पानी में लम्बी छलांग लगा दूँ।

३० मार्च का दिन शुभ लक्षणों के साथ प्रारम्भ हुआ। प्रातःकाल उठते ही चारों ओर पूरी हड़ताल के दृश्य दिखाई दिए। सब बाजार एकदम बन्द थे। हजार में से नौ सौ नब्बे दूकानें खुली ही नहीं थीं। क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, क्या सिक्ख और क्या जैनी सब ने एकदम हड़ताल कर दी थी। चमारों और कसाइयों तक ने पंचायत करके काम बंद कर दिया था। सदर के आनरेरी मजिस्ट्रेट खाँ साहब ने दूकान खोल तो दी और भाई बन्धुओं की कोई परवाह न की, लेकिन लोकमत का बल देखिये, थोड़ी देर में खाँ साहब भी तालियाँ, जेब में दबाये घर जाते नजर आये। आठ बजते बजते पता चला गया कि सारा शहर आज हड़ताल पर है। शेष १० फीसदी दूकानें दोपहर से पहले बन्द हो गईं।

धीरे-धारे बाजार बन्द करके लोग सड़कों पर आने लगे। आकर देखा तो सवारियों से भरी ट्रामें चल रही थीं। जनता ने ट्राम, तांगा और इक्कों की सवारियों के आगे हाथ जोड़े और पदल चलने को कहा। परिणाम यह हुआ कि एक घण्टे भर में सारे शहर की ट्रामें बिल्कुल बन्द हो गईं और तांगे तथा इक्के खाली घूमने लगे। नाई हजामत बना रहे थे, उनसे पूछने पर उत्तर मिला कि साहब, हम किसी से पैसा न लेंगे। हलवाइयों के पास बांध का दूध आया, वह सब उन्होंने बच्चों और गरीबों को मुफ्त बांट दिया। चाँदनी चौक की घण्टाघर वाली प्रसिद्ध दुकान ने पाँच मन दूध इसी प्रकार बाँट दिया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रश्न यह खड़ा हुआ कि उसके प्रबन्ध की जिम्मेदारी कौन ले ? समय की कमी और कार्य की कठिनाइयों को देख कर कांग्रेस के अन्य कार्यकर्त्ता घबरा रहे थे। अन्त में स्वामी जी के पास दिल्ली में एक संदेश भेज कर यह पूछा गया, क्या आप इस भारी उत्तरदायित्व को उठा सकेंगे ? स्वामी जी ने अपनी प्रकृति के अनुसार तत्काल उत्तर दिया कि यदि यह उत्तरदायित्व मुझ पर डाला जाएगा तो मैं उसे अवश्य उठा लूंगा।

मार्शल ला की सब घटनाओं की जिस कमेटी ने छानबीन की थी, पण्डित मोतीलाल जी उसके अध्यक्ष थे। कानूनी और नैतिक योग्यता की दृष्टि से उन से बढ़िया अध्यक्ष मिलना कठिन था। इस कारण वह वृहद् अधिवेशन के सभापति निर्वाचित किए गए।

मैं अधिवेशन से कई दिन पूर्व ही अमृतसर पहुँच गया था जिससे मुझे वहाँ की घटनाओं को आदि से अन्त तक देखने का अवसर मिला। भारत के प्रत्येक कोने से प्रतिनिधियों का आगमन कई सप्ताह पहले से ही आरम्भ हो गया था। मद्रास और आसाम जैसे दूरवर्ती प्रान्तों से पंजाब की दशा को आँखों से देखने और सहानुभूति प्रकट करने के लिए देश के प्रतिनिधि बड़ी उत्सुकता से अमृतसर आ रहे थे। उन में से कुछ व्यक्तियों को मैंने पहली बार देखा था। उनके प्रथम दर्शन के समय मेरे मन पर जो प्रभाव पड़ा वह मैं स्मृति के कोष में से निकाल कर यहाँ रखने का यत्न करता हूँ। देशबन्धु चितरञ्जनदास के मैंने वहाँ प्रथम बार दर्शन किये। मैं स्वागत का प्रबन्ध कार्य कर रहा था। दिसम्बर का महीना था। आकाश में बादल घिर रहे थे और ठन्डी-ठन्डी डर पैदा करने वाली हवा चल रही थी। बेचारे मद्रास, बंगाल और गुजरात जैसे समशीतोष्ण प्रान्तों के प्रतिनिधि बड़ी मुसीबत में पड़ गये थे। सर्दी से बचाने के लिए उन्हें धर्मशालाओं और पक्के मकानों में ठहराया गया था, तो भी वे सर्दी से परेशान थे। उनके पास जब भी स्वयं सेवक जाते तब यही शिकायती वाक्य सुनाई देता 'यहाँ तो बड़ी शीत है'। ऐसे वातावरण में हम लोग प्रातःकाल नौ बजे के लगभग बंगाल के प्रतिनिधियों के डेरों पर गये। यह समाचार मिल चुका था कि बंगाल से दास बाबू आये हैं। मैं बड़ी उत्सुकता से उस कमरे में पहुँचा जिस में कुछ अन्य प्रतिनिधियों के साथ दास बाबू ठहरे हुए थे। वहाँ जाकर जो दृश्य देखा वह इस प्रकार था—कमरे में कोई सात आठ पलंग बिछे हुए थे, जिन पर सब लोग कम्बल, लोई, रजाई आदि सब प्राप्तव्य कपड़ों में लिपटे हुए थे। दास बाबू उस के केन्द्र बने हुए थे। उन के पलंग के पास एक बड़ा पेचवान हुक्का रखा हुआ था, जिस की नली उन के मुंह में थी। अन्य बंगाली प्रतिनिधि भी हुक्के या सिगार से अपने शरीर को गर्म कर रहे थे। उधर कमरे में घुसते ही प्रतीत हो गया कि किसी गहरे विषय पर बंगाली जोश-खरोश के साथ बहस हो रही है, जिससे कमरा आग के धुए और शब्दों के धारा-प्रवाह से लबालब भरा हुआ था। अन्दर जाने पर शीघ्र ही मालूम हो गया कि दास बाबू के विधिपूर्वक सभापतित्व में बंगाल के कुछ प्रतिनिधि कांग्रेस के सामने आने वाले मुख्य प्रस्ताव पर बहस कर रहे थे। देशबन्धु दास के पास श्रीयुत विपिनचन्द्र पाल भी बैठे हुए थे। उस समय की बातचीत से हम इस परिणाम पर पहुंचे कि दास महोदय कांग्रेस में आने वाले प्रस्ताव और उस पर पेश होने वाले संशोधन के ठंडेपन से बहुत असंतुष्ट थे, वे उसे माडरेट, दब्बू आदि विशे-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

षणों से विभूषित कर रहे थे। उनका विशाल चेहरा, उससे भी विशाल माथा और हर बात में प्रकट होने वाली प्रतिभा उन्हें अनायास ही बंगाल के प्रतिनिधियों का नेता बना रही थी। इसके पश्चात् भी मुझे उस महापुरुष के दर्शनों का कई बार सौभाग्य मिला। मुझ पर उन के व्यक्तित्व की विशालता का जो पहला प्रभाव पड़ा वह बढ़ता ही गया। अमृतसर में मुझे पहली और अन्तिम बार मद्रास के प्रसिद्ध दैनिक—हिन्दू— के संपादक श्री कस्तूरीरंगा आयंगर को देखने का अवसर मिला। वे पूरे कांग्रेसी नहीं थे, इसका अभिप्राय यह है कि वे क्रियात्मक रूप से कांग्रेस के प्रत्येक निश्चय से अपने को बँधा हुआ नहीं मानते थे। वे एक आदर्श पत्रकार थे। सम्मति बनाने और उसके प्रकट करने में अपने को सर्वथा स्वतन्त्र रखते थे। साथ ही यह सर्वसम्मत बात है कि उनका दृष्टिकोण पूरी तरह राष्ट्रीय था। वे एक सम्पादक की हैसियत से मार्शल ला सम्बन्धी सीमा अध्ययन करने और कांग्रेस की प्रगति का स्वयं निरीक्षण करने के लिए अमृतसर पहुँचे थे। उनसे मुझे पत्रकार कला के सम्बन्ध में बहुत गहरी प्रेरणा मिली।

इस अधिवेशन में देशवासियों ने पहली बार सार्वजनिक रूप से पूरे नेहरू परिवार को देखा। कांग्रेस के मंच पर श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्रीमती कमला नेहरू, कुमारी विजयलक्ष्मी नेहरू, कुमारी कृष्णा नेहरू पर दृष्टि पड़ते ही प्रत्येक दर्शक पूछने के लिए बाधित हो रहा था—यह कौनसा राज परिवार आया है। विशुद्ध काश्मीरी रूप-रंग, राजसी वेशभूषा और नेहरू परिवार की स्वाभाविक शान ने उस समय उस परिवार को सम्पूर्ण पंडाल की दृष्टियों का केन्द्र सा बना लिया था।

अब मैं उस महान् राष्ट्रीय रंगमंच के प्रधान पात्रों—लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी की ओर आता हूँ। अमृतसर की कांग्रेस में ये दोनों महान् व्यक्ति अपनी पूरी कलाओं के साथ आये थे। भेद इतना ही था कि लोकमान्य तिलक अपनी आयु की पूर्णिमा को पार कर चुके थे और महात्मा गाँधी पूर्णिमा की ओर प्रयाण कर रहे थे। दोनों भारत के भाग्य विधाता व्यक्तियों में जो मतभेद था उसे सब विवेकशील लोग जानते थे। यूं तो दोनों ही आदर्शवाद के पुजारी थे, परन्तु जहाँ लोकमान्य तिलक अपने आदर्श की प्राप्ति में व्यावहारिक नीति के प्रयोग को उचित मानते थे, वहाँ महात्मा गाँधी इस दावे के साथ राजनीति के क्षेत्र में अवतीर्ण हुए थे, कि वे भारत की स्वाधीनता के ऊँचे आदर्श को सत्य और अहिंसा के धार्मिक आदर्शों द्वारा प्राप्त करने का मार्ग बतलायेंगे।

अमृतसर की कांग्रेस से पूर्व प्रतीत होता था कि पंजाब के सम्बन्ध में सारा देश एकमत हो जाएगा। परन्तु अधिवेशन से दो दिन पूर्व जब प्रतिनिधि लोग अपने-अपने स्थानों से अमृतसर के लिए रेल द्वारा रवाना हो चुके थे, तब ब्रिटिश सरकार ने सम्राट के वक्तव्य के रूप में फूट का एक बीज राजनैतिक क्षेत्र में फेंक दिया। यह साम्राज्यवादी सरकारों का पुराना हथकण्डा है। इस घोषणा में वे सुन्दर वायदे दोहराये गए थे जो पिछली सदी से इंगलैंड के बादशाह हिन्दुस्तानियों से करते रहे और जिनके आधार पर हिन्दुस्तान में वह मुहावरा-सा बन गया है कि वायदे तोड़ने के लिए ही किए जाते हैं। घोषणापत्र में भारतवासियों को विश्वास दिलाया गया था कि सम्राट् उन्हें स्वराज्य देना चाहते हैं, पर देंगे धीरे-धीरे। स्वराज्य की पहली किस्त के तौर पर मार्शल ला के कुछ एक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कैदी जेल से छोड़ देने की सूचना भी सरकार की ओर से सम्राट् की घोषणा के साथ ही दे दी गई। कांग्रेस के घर में विचारों की फूट पैदा करने के लिए सरकार का यह हथकण्डा सफल सिद्ध हुआ। कांग्रेस तीन भागों में विभक्त हो गई। सम्राट् की घोषणा का महात्मा गाँधी पर यह असर हुआ कि वे उस घोषणा का स्वागत करने और सरकार से सहयोग करने के लिए उद्यत हो गये। लोकमान्य तिलक ने रेल में जो वक्तव्य दिया उसमें प्रतियोगी सहयोग (रिस्पेन्सिव कोओपरेशन) का समर्थन किया। उनका पक्ष यह था कि सरकार सहयोग का जितना हाथ बढ़ाये उतना ही हम भी बढ़ावें। तीसरा दल उन लोगों का था जो सम्राट् की घोषणा को केवल एक धोखा समझते थे, और उसके आधार पर सरकार के प्रति अपने असन्तोष को कम नहीं करना चाहते थे, और न ही विरोधी रुख को बदलना चाहते थे। उस दल के नेता देशबन्धु दास थे।

अमृतसर में नेताओं के पहुँचने पर मुख्य प्रस्ताव के सम्बन्ध में मतभेदों की चर्चा ने शीघ्र ही उग्र रूप धारण कर लिया। तीन केन्द्रों में तेजी से मोर्चा बन्दी शुरू हो गई, बीच बचाव करने के लिए जो व्यक्ति काय कर रहे थे उनमें तीन प्रमुख थे। श्रीमती एनीबीसेन्ट, पंडित मदनमोहन मालवीय और स्वागताध्यक्ष की हैसियत से पिता जी।

———

२८. लोकमान्य तिलक का जलूस और गाँधी युग का जन्म

तीनों में से कौन सा पक्ष जीतेगा, प्रारम्भ में यह बात संदिग्ध सी मालूम होती थी, परन्तु कांग्रेस अधिवेशन से एक दो दिन पूर्व जब अमृतसर के बाजारों में लोकमान्य तिलक का जलूस निकला तब कम से कम मेरे मन में कोई सन्देह बाकी न रहा। मैंने जलूस तो सैकड़ों देखे परन्तु उतना असली जोश और जीवित उत्साह मुझे शायद ही किसी में मिला हो। लगभग चालीस वर्ष के बलिदानमय जीवन ने तिलक महाराज का, भारतवासियों के हृदय में वह स्थान बना दिया था जो पुराने देवी देवताओं का बन जाया करता है। बहुत से पंजाबियों ने इससे पूर्व लोकमान्य तिलक के दर्शन भी न किए थे। वे यह तो जानते थे कि तिलक नाम का एक स्वाधीनता का देवता है जिसकी पूजा करनी चाहिए। उन्हें दर्शनों का पहला अवसर मिला था। पूजा का यह दुर्लभ अवसर पाकर उनके वर्षों से भरे हुए अरमान फूट पड़े थे। बाजारों में नरमुण्ड ही नरमुण्ड दिखाई देते थे। हरेक व्यक्ति तिलक महाराज की जय, के नारों से आकाश फोड़ रहा था। पंडित नेकीराम जी शर्मा को उस जलूस में मैंने पहली बार देखा। ऐसा याद आता है—पंडित जी तिलक महाराज की गाड़ी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पर किसी जगह खड़े होकर अपने मेघ गम्भीर स्वर से तिलक महाराज की जय के नारे स्वयं लगा रहे थे और जनता से लगवा रहे थे। उस जलूस ने कांग्रेस के अन्य सब कार्यक्रम को मात दे दी थी। उस समय मुझे और मुझ जैसे सैकड़ों दर्शकों को यह निश्चय सा हो गया था कि कांग्रेस के अधिवेशन में तिलक महाराज के सामने कोई नेता न ठहर सकेगा। जो प्रस्ताव वे पेश करेंगे वही स्वीकार किया जायगा।

लोकमान्य तिलक के उस जलूस की अनेक स्मरणीय चीजों में से एक विशेष चीज स्वयं लोकमान्य की गम्भीर मुद्रा थी, जो प्रत्येक बारीकी से देखने वाले दर्शक पर प्रभाव उत्पन्न करती थी। चारों ओर कोलाहल का तूफान उमड़ रहा था। फूलों और मालाओं से गाड़ी भर गई थी। स्थान-स्थान पर गाड़ी रोक कर आरती की जा रही थी और भक्त लोग तरह-तरह की भेंट देकर भक्ति का प्रदर्शन कर रहे थे। चारों ओर यह सब कुछ था परन्तु लोकमान्य तिलक की मूर्ति मानों निश्चल होकर बठी थी। जनता के कोलाहल से उनके चेहरे पर न विक्षोभ की झलक दिखाई देती थी और जनता के सत्कार प्रदर्शन से होठों पर न मुस्कराहट दौड़ती थी। उनके गम्भीर तेजस्वी नेत्र और स्थिर निश्चल होंठ न तूफान में हिलते थे और न प्रभात के पवन से खिलते थे। उनमें मातृभूमि की पराधीनता की भावना मानों फौलाद बन कर बैठ गई थी। जब उन्हें मांडले की जेल में अपनी जीवन संगिनी पत्नी की मृत्यु का समाचार मिला तब उनके आँसू नहीं निकले, इस पर उनसे किसी ने पूछा—'ऐसे दुखद समाचार से आपके आँसू क्यों नहीं निकले ?' इस प्रश्न का लोकमान्य ने चिर-स्मरणीय उत्तर दिया था—'मेरे पास बहाने के लिए कोई आँसू नहीं बचे, मैं उन सबको अपनी मातृभूमि के लिए बहा चुका हूँ। प्रतीत होता है वे आँसू अपने साथ होठों की मुस्कराहट को भी बहा ले गये थे। सार्वजनिक रूप में तिलक महाराज के पास न आँसू थे और न मुस्कराहट। वहाँ थी केवल कठोर कर्त्तव्य की भावना, जिसका पालन करने में वे कभी एक क्षण के लिये भी नहीं हिचकिचाये। लोकमान्य तिलक का चेहरा एक क्रांतिकारी का आदर्श चेहरा था। वहाँ प्रिय अप्रिय की कोई भावना नहीं थी। केवल धर्म के पालन की दृढ़ प्रतिज्ञा थी। कांग्रेस के मंच पर वैसा दृढ़ क्रान्तिकारी चेहरा न उन दिनों दिखाई देता था और न अब तक दिखाई दिया है। उसकी थोड़ी सी झलक सरदार वल्लभभाई पटेल के चेहरे पर दिखाई देती थी।

मैं इससे पूर्व बतला आया हू कि कांग्रेस के मुख्य प्रस्ताव के सम्बन्ध में नेताओं के तीन मत थे। गर्म दल—जिसके नेता श्री विपिनचन्द्र और श्री चितरंजन दास समझे जाते थे—इस पक्ष में थे कि सम्राट की घोषणा की उपेक्षा की जाय और सरकार के अत्याचारों की उसी प्रकार निन्दा की जाय जैसे उस घोषणा के अभाव मे की जाती। महात्मा गांधी चाहते थे कि सम्राट की घोषणा में सरकार की बदली हुई नीति का स्वागत किया जाय और साथ ही सरकार के किए हुए दमन की निन्दा की जाय। महात्मा जी कांग्रेस में इस भावना को लाना चाहते थे कि शत्रु के साथ भी उदारता का व्यवहार करना चाहिए। लोकमान्य तिलक का मत दोनों के मध्य मे था। वे नहीं चाहते थे कि सम्राट की घोषणा या मार्शल ला के कुछ कैदियों की रिहाई पर कोई स्वागत या हर्ष का सूचक कोई प्रस्ताव स्वीकार किया जाय। उनका कहना था कि यह तो सरकार की चाल है इस में कोई सार नहीं है। "वह जैसे को

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

२५. मस्जिद के मिम्बर पर

यह कहने में जरा-सी भी अत्युक्ति नहीं है कि ३० मार्च की घटनाओं ने केवल दिल्ली निवासियों में ही नहीं, प्रत्युत् भारत के बहुत बड़े भाग में मानसिक क्रान्ति पैदा कर दी थी। उस दिन सायंकाल के समय जो भावना जनता में उत्पन्न हो गई थी, उसे देखते हुए हम कह सकते हैं कि उस दिन के बाद बारह घण्टों में जो परिवर्तन आया, सामान्य रूप से वह बारह वर्षों में भी न आता। कहावत है—लहू पानी की अपेक्षा गाढ़ा होता है। यह उस दिन देखने में आया। पुलिस और फौज की गोलियों ने जिन लोगों को घायल अथवा शहीद किया उनमें हिन्दू भी थे और मुसलमान भी। दोनों का लहू बह कर मिल गया। इस रक्तमिश्रण ने चमत्कार कर दिखाया। ३१ मार्च के प्रातःकाल मानों हिन्दू-मुसलमानों का भेद मिट चुका था। 'हम' शब्द से 'ह' से 'हिन्दू' और 'म' मुसलमान का ग्रहण करके एकता के बन्धन की घोषणा करने का रिवाज उसी समय से चला है। ३१ मार्च के प्रातःकाल ३० मार्च को गोली से आहत हुए एक मुसलमान का जनाजा निकला। दिल्ली निवासियों को अपने हृदय में भरे हुए रोष और जोश को प्रकाशित करने का अच्छा अवसर मिला। जनाजा जब घण्टाघर के पास पहुँचा, तब लगभग उसके साथ दो लाख की भीड़ थी भीड़ में हिन्दू अधिक थे या मुसलमान, यह कहना कठिन है। जनाजे के साथ स्वामी श्रद्धानन्द जी भी थे और हकीम अजमलखां भी। दिल्ली की इन दोनों विभूतियों का प्रथम साक्षात्कार जनाजे के जुलूस में ही हुआ।

अगले दिन सिविल हस्पताल से पाँच शहीदों की लाशें मिलीं। उनमें से दो मुसलमान थे और तीन हिन्दू। कुछ दूर तक पाँचों अर्थियाँ साथ-साथ चलीं। उस समय अनुमान लगाया गया था कि उनके साथ कम-से-कम तीन लाख हिन्दू व मुसलमानों की भीड़ थी। चाँदनी चौक से भीड़ दो हिस्सों में बंट गई। मुसलमानों का जनाजा ईदगाह की ओर चला गया और हिन्दुओं की अर्थियाँ यमुना जी की ओर। ईदगाह और निगम बोध घाट पर बेतहाशा भीड़ थी। दोनों जगह देशभक्ति और एकता पर व्याख्यान हो रहे थे।

इस जोश की चरम सीमा उस समय प्रकट हुई, जब ४ अप्रैल के दिन, दोपहर बाद की नमाज के पीछे जामा मस्जिद में मुसलमानों का एक विशाल जलसा हो रहा था और उस में मौलाना अब्दुल्ला चूड़ी वाले ने आवाज देकर कहा—'स्वामी श्रद्धानंद जी की तकरीर होनी चाहिए।' 'नार—ए तकबीर से मस्जिद गूंज उठी। दो-तीन जोशीले नौजवान उठे और तांगे पर जाकर नये बाजार से स्वामी जी को लिवा लाए। 'अल्ला-हो—अकबर' के नारों के साथ स्वामी जी मस्जिद की वेदी पर आरूढ़ हुए। शायद यह भारत के ही नहीं, इस्लाम के इतिहास में पहला अवसर था कि एक मुसलमानेतर व्यक्ति ने जामा मस्जिद की वेदी पर से वाज किया। स्वामी जी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ने ऋग्वेद के एक मन्त्र से अपना व्याख्यान आरम्भ किया और 'ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः' के साथ समाप्त किया। ६ अप्रैल को फतहपुरी मस्जिद में भी स्वामी जी का भाषण हुआ।

———

२६. पंडित मोतीलाल नेहरू से भेंट

गत संस्मरण में बतला चुका हूँ कि रौलट ऐक्ट सम्बन्धी सत्याग्रह आन्दोलन ने भारत की राजनीति में नए युग को जन्म दिया। नए युग का जन्म कोई साधारण बात नहीं। राष्ट्र और विशेष रूप से भारत जैसे पुराने आहिस्ता चलने वाले राष्ट्र आसानी से करवट नहीं बदल सकते। उनकी नींद तोड़ने के लिए बहुत बड़ा शोर, बहुत अधिक झजकोरे और कभी-कभी नुकीले औजारों की नोक-झोंक तक आवश्यक होती है। भारत जैसे पराधीन देश की नींद को तोड़ना और उसकी राजनीतिक करवट को बदलना भी बहुत बड़े प्रयत्न का काम था, जिसे शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार के सिवा कोई नहीं कर सकता था। इतिहास पुकार पुकार कर कहेगा कि १९१९ में जो राजनैतिक युग में परिवर्तन हुआ उसका श्रेय सबसे अधिक उसकी अंग्रेजी सरकार के गवेषन को है। गवेषन से मेरा अभिप्राय यह है कि उस समय सरकार को जो कुछ करना चाहिए था वह उसने नहीं किया और किया भी तो तब किया, जब चिड़ियां खेत को चुग चुकी थीं और जो नहीं करना चाहिये था, वह बड़ी फुर्ती से फौरन से पेश्तर कर दिखाया। अत्याचारी की भूलों से ही अत्याचार पीड़ितों का उद्धार हुआ करता है। उस समय की अंग्रेजी और भारतीय सरकार एक बार ठीक रास्ते से चूक कर ऐसी बौखलाई कि हर कदम पर चूकती चली गई, जैसे कुतुबखाने की उपरली सीढ़ी से फिसलना आरम्भ करके हुमायूं सबसे निचली मौत की मंजिल तक फिसलता चला गया था। उसी प्रकार सरकार भी एक बार मार्ग भ्रष्ट होकर तब तक ठीक मार्ग पर नहीं आई, जब तक भारत ने करवट नहीं बदली।

रौलट ऐक्ट के विरोध में महात्मा गांधी ने सत्याग्रह की घोषणा कर दी। प्रारम्भिक कदम के तौर पर जो देश व्यापी हड़ताल हुई, भिन्न-भिन्न प्रांतों की सरकारों ने उस पर अपने-अपने ढंग से प्रहार किया। पंजाब के गवर्नर सर माइकल ओड़वायर की सरकार ने सत्याग्रह पर लाठी और गोली से प्रहार किया, जिसका उग्र रूप जलियांवाला बाग के हत्याकांड और मार्शल ला के आकार में प्रकट हुआ। ब्रिटिश टाईगर अपने असली नग्न रूप में संसार के सामने आ गया। पंजाब पर ऐसे अत्याचार हुए, जैसे इतिहास में पढ़े थे, परन्तु कभी विश्वास नहीं किया था और समझा था कि यह केवल अतिशयोक्ति मात्र है। कुछ समय तक तो पंजाब के सम्बन्ध में फांसी घर की सी निस्तब्धता बनी रही। प्रान्त पर सैंसर शिप का पर्दा डालकर मार्शल ला के नाम

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पर जो भीषण अन्याय किए गए उनका देश को और संसार को तब पता चला, जब लोकमत से प्रभावित होकर सरकार को सैंसरशिप का प्रतिबन्ध हटा लेना पड़ा। पर्दे के हटने पर पर संसार ने देखा कि सभ्यताभिमानी ब्रिटेन के प्रतिनिधियों ने पंजाब में जो राक्षसी लीला की है, उसने नीरो और चंगेजखां की स्मृतियों को भी मात कर दिया है। देश-भर में हा-हाकार सा मच गया। पंजाब की दशा को देखने और उसके आघातों पर मरहम लगाने के लिए देश के हर एक प्रान्त से देशभक्त पंजाब के लिए रवाना होने लगे। उन देश भक्तों में से विशेष रूप से स्मरणीय देशबन्धु चितरञ्जनदास, पंडित मोतीलाल नेहरू, स्वामी श्रद्धानन्द जी और पण्डित मदनमोहन मालवीय जी थे। पहले दोनों महानुभाव मार्शल ला की तहकीकात के सम्बन्ध में और शेष दोनों महानुभाव मार्शल ला द्वारा आहतों और पीड़ितों की सहायता के लिए पंजाब पहुंचे। इस प्रसंग में इन तथा इनके अन्य सहायक देश भक्तों ने जो अनुपम सेवाएं कीं, उनके विस्तार से लिखने का यह स्थान नहीं है। वे सेवाएं भारत के राजनैतिक इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी जा चुकी हैं। मैंने तो यह चित्रपट इसलिए सामने रखा है कि मैं तत्सम्बन्धी उस चित्र को अंकित कर सकूं, जो मेरी स्मृति में खूब उज्ज्वल रूप से विद्यमान है।

पिताजी के पास पण्डित मोतीलाल नेहरू का इस आशय का पत्र आया कि मैं मार्शल ला की घटनाओं की तहकीकाती कमेटी में भाग लेने के लिए लाहौर जा रहा हूं। आप पंजाब में सेवा का कार्य करके अभी आये हैं। इलाहाबाद से लाहौर जाता हुआ दिल्ली में आपसे मिल कर जाऊंगा। पत्र में अपने दिल्ली पहुंचने की तारीख और पिता जी के निवास स्थान पर पहुंचने का निश्चित समय भी दिया हुआ था। निश्चित और विधिपूर्वक कार्य करने की यह प्रवृत्ति पूज्य नेहरू जी के चरित्र का एक अंग थी।

मुझे नेहरू जी के समीप दर्शनों की बड़ी लालसा थी। उन्हें एक बार पटना की कांग्रेस में दूर से देखा था। तब आप माडरेट (नरम) विचारों के धनी नेता समझे जाते थे। उस समय मैंने नेहरू परिवार को इलाहाबाद से रेल द्वारा पटना जाते हुए देखा था। पहले दर्जे का पूरा डिब्बा रिजर्व कराया गया था। पूरे विलायती वेश में दोनों नेहरू—पिता और पुत्र—जब प्लेट फार्म पर पहुंचे, तो स्टेशन पर काफी सनसनी सी फैल गई थी। नेहरू जी के धन और आनन्द भवन की ख्याति चारों ओर फैल चुकी थी। यह भी चर्चा पूजे जोर पर थी कि उसके लड़के विलायत से बैरिस्टर बन कर आये हैं, ये भी हाईकोर्ट में प्रैक्टिस करेंगे। दोनों नेहरूओं के साथ अन्य भी दो तीन व्यक्ति थे, जो रूपरंग और वेषभूषा से नेहरू परिवार के ही सदस्य माने जा रहे थे। वह नेहरू परिवार का ठाठ था, जिसे साधारण जनता उत्सुकता से देख रही थी।

उसके पश्चात् यह पहला अवसर था, जब नेहरू जी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त करने की आशा हुई। मैंने पिता जी से निवेदन किया कि मैं नेहरू जी के आपके स्थान पर आने के समय कुछ देर के लिए उपस्थित रहना चाहता हूं और आपकी बातचीत आरम्भ हो जाने पर चला जाऊंगा। पिता जी ने स्वीकार कर लिया।

वह दृश्य मुझे पूरी तरह याद है। प्रातःकाल के दस बजे का समय होगा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जब पण्डित जी (पिता जी) के निवास स्थान पर पहुँचे। जब वे सीढ़ियों से ऊपर पहुँचे तो उनके रूप की पहली झाँकी दिखाई दी। अभी वे कोट-पैंट और हैट के वेश से निकले नहीं थे। शानदार सफेद मूँछें, उनके सुन्दर कश्मीरी चेहरे पर खूब सज रही थीं और उनकी शान को बढ़ा रही थीं। पिताजी उनका स्वागत करने के लिए कमरे से बाहर आये। उस समय जो परिस्थिति उत्पन्न हुई, वह वस्तुतः बहुत ही मनोरंजक थी। इसमें थोड़ा अभिनय का सा रंग भी आ गया था। पिताजी ने बाहर आकर पंडित जी पर नजर पड़ते ही आश्चर्य से कहा—हैं, 'तुम हो' पंडित जी ने पिता जी की तरफ ध्यान देकर कहा—'अरे तुम हो' मैं आश्चर्य में आ गया। दोनों ने खूब कसकर हाथ मिलाये। पिता जी ने कहा—'मैं अब तक नहीं जानता था कि पंडित मोतीलाल नेहरू तुम ही हो।' पंडित जी ने उत्तर दिया कि 'मैं भी अभी तक नहीं समझता था कि महात्मा मुन्शीराम और स्वामी श्रद्धानन्द तुम ही हो।' इसके पीछे थोड़ी देर के लिए दो बुजुर्ग अपनी आयु, ऊँची परिस्थिति और शायद मेरी उपस्थिति को भूल गए और पुराने कालेज के समय में वापिस चले गये। एक ने दूसरे से कहा—तुम तब भी बहुत नटखट थे। दूसरे ने उत्तर दिया—तुम्हारी तब भी यह आदत थी। किस ने किस से क्या कहा यह याद नहीं रहा, सारी बातचीत से थोड़ी देर में मेरी समझ में आ गया कि कालेज में पढ़ने के समय दोनों बुजुर्ग इलाहाबाद में सहपाठी थे, दोनों सैलानी तबीयत के थे और किताबों के कीड़े नहीं थे।

इतना परिचय प्राप्त करके और दर्शनों से सन्तुष्ट होकर मैं चुपके से वहाँ से उठ गया। दोनों में लगभग दो तीन घण्टे तक बातचीत होती रही।

———

२७. अमृतसर में नए युग का जन्म

१९१९ के अन्त में अमृतसर में कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ उसने देश की राजनीति में युग परिवर्तन कर दिया था। उन चार पाँच दिनों में भारत में तिलक युग का अन्त और गांधी युग का आरम्भ हुआ। मैं इसे अपना सौभाग्य समझता हूँ कि मुझे उस युग परिवर्तन के महान् दृश्य को साक्षात् देखने का अवसर मिला। मैंने वहाँ जो कुछ देखा उसे यथा संभव ठीक ठीक अंकित करने का यत्न करता हूं।

कांग्रेस का वह अधिवेशन बड़ा महत्वपूर्ण था। वह अधिवेशन उस समय किया गया था जब पंजाब के वक्षःस्थल पर मार्शल ला की संगीनों द्वारा किये हुए घाव हरे थे और जनरल डायर के हुक्म से जलियांवाला बाग में चलाई गई बन्दूकों की प्रतिध्वनि अभी शांत नहीं हुई थी। उस समय देश के तीव्र विक्षोभ और क्रोध को प्रकट करने के लिए अमृतसर में राष्ट्रीय महासभा का वृहद् अधिवेशन बुलाया गया था। उसके स्वागताध्यक्ष और सभापति क्रमशः युवाकाल के पुराने सहपाठी स्वामी श्रद्धानन्द जी और पण्डित मोतीलाल जी नेहरू नियुक्त हुए थे। जब यह निश्चय किया गया कि कांग्रेस का अधिवेशन अमृतसर में हो, तब सबसे महत्वपूर्ण

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तैसा" इस सिद्धान्त को मानने वाले थे। उसका नाम उन्होंने "प्रतियोगी-सहयोगी" रखा था।

प्रारम्भ के दो-तीन दिनों तक मध्यस्थों द्वारा यह यत्न होता रहा कि कोई सर्वसम्मत प्रस्ताव बन जाय परन्तु सब अपनी-अपनी बात पर अड़े हुए थे, इस कारण सफलता नहीं हो रही थी। इसी बीच में प्रकृति ने उग्र रूप धारण करके मानवीय वातावरण की गर्मी पर ठंडा पानी डाल दिया। बड़े जोर के बादल घिर आये और वस्तुतः मूसलाधार वर्षा हुई। खुले अधिवेशन के लिए जो पण्डाल बना था उसमें ठीक अधिवेशन से पहली रात के समय कमर-कमर तक पानी भर गया था। पंजाब की भूमि और कई दिन तक निरन्तर वर्षा—पंजाब से बाहर के लोगों के लिए मौसम असह्य हो गया, कम्बल और अंगीठी की पूरी सहायता होने पर भी बेचारे प्रतिनिधियों के दाँत बजते थे। इस उग्र सर्दी के कारण अधिवेशन भी एक-दो दिन के लिए रोक देना पड़ा। इतने समय में मतभेदों की गर्मी काफी शांत हो गई और जब अन्त में गीले पंडाल में चटाइयों पर बैठकर देश के प्रतिनिधियों ने मुख्य प्रस्ताव पर विचार आरम्भ किया तो उन्हें यह देखकर हर्ष हुआ कि नेताओं का मतभेद प्रकाशित तो हुआ परन्तु बहुत नरम रूप में और वह भी शीघ्र ही मिट गया। कांग्रेस ने जो प्रस्ताव स्वीकार किया उसमें सम्राट् की घोषणा का स्वागत किया गया था और साथ ही पंजाब पर हुए अत्याचारों की निन्दा की गई थी। उस प्रस्ताव को लोकमान्य तिलक और महात्मा गाँधी के विचारों का समझौता कह सकते हैं।

मैंने पहले बतलाया है कि जनता और प्रतिनिधियों में लोकमान्य तिलक के व्यक्तित्व का प्रभाव अमृतसर में सबसे अधिक प्रतीत होता था। ऐसा समझा जाता था कि यदि वे अन्त तक अपनी बात पर अड़े रहते तो जीत उन्हीं की होती। यह सर्वसम्मत बात थी कि लोकमान्य तिलक अड़ने वाले आदमी थे। जीवन भर उन्होंने विरोधी शक्तियों का सीधे खड़े हो कर मुकाबला किया, कभी अणुमात्र भी झुकने का नाम नहीं लिया। अमृतसर में पहली बार वे समझौते के लिये तैयार हो गये। यह देखकर लोकमान्य के कुछ शिष्यों को दुःख और आश्चर्य हुआ। वे लोग तिलक महाराज की सेवा में पहुँचे और जिज्ञासा की कि महाराज आप समझौता क्यों करते हैं। खुले अधिवेशन में आपकी जीत निश्चित है। इस जिज्ञासा का लोकमान्य ने जो उत्तर दिया उसके पूरे शब्द तो मुझे याद नहीं परन्तु अभिप्राय मेरे हृदय पर बड़ी स्पष्टता से अंकित है। आपने जो कुछ कहा उसका अभिप्राय यह था—मैं अब शारीरिक दृष्टि से वृद्ध हो गया हूँ। मुझे जो कुछ कहना था वह कह चुका हूं। अब आवश्यक है कि देश का नेतृत्व दूसरे हाथों में जाय। वह व्यक्ति जिसके हाथों में मुझे नेतृत्व सम्भालने की शक्ति दिखाई देती है, वह गाँधी है। इसी कारण मैंने गांधी का संशोधन स्वीकार कर लिया है। देश की बागडोर अब उसी के हाथ में जायगी।"

उस समय लोकमान्य तिलक के उस कथन से उनके भक्तों का पूरा सन्तोष नहीं हुआ था। परन्तु समय ने बतलाया कि लोकमान्य तिलक को उनके भक्त जितना बड़ा समझते थे, वे उससे बहुत बड़े थे। वे महान् भी थे और भविष्यदर्शी भी। जब खुले पंडाल में लोकमान्य के तथा महात्मा जी के भाषणों के पश्चात् प्रस्ताव स्वीकार हुआ तब सारा पंडाल महात्मा गांधी की जय के नारों से गूँज उठा। उस जयनाद के कोलाहल में कांग्रेस का एक युग समाप्त हो रहा था और दूसरा युग जन्म

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
ले रहा था। तिलक युग पर विराम चिन्ह लग रहा था और गांधी युग प्रारम्भ हो रहा था।

———

२९. गांधी जी डिक्टेटर बने

इस पुस्तक के पाठकों को यह पता चल चुका होगा कि मैं यहाँ न औरों का इतिहास लिख रहा हूँ और न अपना जीवन चरित्र। मैं उन घटनाओं और व्यक्तियों के चित्रों को अंकित करने का यत्न कर रहा हूँ, जिनकी पृष्ठ-भूमि में, मेरे पिताजी का न्यूनाधिक सम्पर्क विद्यमान हो। १९२० से १९२३ तक का समय मेरे जीवन का घटनापूर्ण समय कहा जा सकता है, क्योंकि उसने मेरे जीवन-प्रवाह की दिशा को निश्चित किया। परन्तु मैं उन वर्षों की घटनाओं में से कुछ थोड़ी सी ऐसी घटनाओं का ही वर्णन करूँगा, जिन्होंने मेरे हृदय को विशेष रूप से प्रभावित किया और अपने रंग से रंजित किया।

१९२० और १९२१ के वर्ष सत्याग्रह आंदोलन की तैयारी के वर्ष थे। वह आंदोलन क्या रूप धारण करेगा, १९१९ के प्रारम्भ में शायद महात्मा गांधी जी को भी इसका पूर्ण रूप से पता नहीं था। अमृतसर की कांग्रेस में सरकार की ओर से भारतवासियों की इच्छाओं के प्रति सहानुभूति का जो इशारा किया गया था, उसके बारे में कांग्रेस में मतभेद की बात मैं पहले कह आया हूँ। महात्मा जी को उसमें आशा की झलक दिखाई देती थी, परन्तु लोकमान्य तिलक और देशबन्धु दास आदि उसे केवल राजनीति की एक चाल समझते थे। मार्शल ला की तहकीकात और दमन द्वारा पीड़ितों को हर्जाना देने आदि के प्रश्नों पर जनता के सामने झुकने के लिए सरकार तैयार न हुई जिससे महात्मा गांधी जैसे उदार व्यक्ति को भी यह अनुभव होने लगा कि अमृतसर कांग्रेस पर सम्राट् की ओर से जो घोषणा प्रकाशित हुई थी, वह केवल एक चाल थी, उसमें कोई सार नहीं था। परिणाम यह हुआ कि उन लोगों के हृदय में सरकार के प्रति गहरी प्रतिक्रिया उत्पन्न हो गई। सत्याग्रह के आन्दोलन ने असहयोग का रूप धारण किया और पंजाब की दुर्घटनाओं के साथ स्वराज्य की माँग भी नत्थी कर दी गई।

क्रांति की देश व्यापी ज्वाला

इस समय अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं से भारत के आंदोलन को दैवी सहायता मिली। पहले यूरोपियन युद्ध में जर्मनी के साथ परास्त होने के कारण टर्की के सुलतान को खलीफा पद से वंचित कर दिया गया, जिस से भारत के मुसलमानों की धार्मिक भावना को बहुत भारी ठेस पहुँची और वे अंग्रेजी सरकार से असन्तुष्ट हो गए। उस असन्तोष का परिणाम यह हुआ कि मौलाना शौकतअली, मौलाना मुहम्मद अली और जमीयत उलमाए हिन्द के नेतृत्व में कांग्रेस ने, मुसलमानों में खिलाफत

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का आन्दोलन आरम्भ किया। महात्मा गाँधी ने और उनके नेतृत्व में कांग्रेस मुसलमानों के खिलाफत आंदोलन का समर्थन किया जिसका परिणाम यह हुआ कि सरकार से कांग्रेस की जो माँग तब तक केवल पंजाब की शिकायतों के निवारण तक परिमित थी, उसमें खिलाफत भी जोड़ दी गई। इस आधार पर मुसलमान समूह रूप से कांग्रेस में शामिल होने लगे। हिन्दू मुसलमानों के इस मेल ने असहयोग आंदोलन को असाधारण बल प्रदान कर दिया। यदि यह घटनाचक्र इस प्रकार न चलता तो शायद कांग्रेस पर और देश की राजनीति पर महात्मा जी का पूरा अधिकार इतना शीघ्र न हो सकता। परन्तु भगवान् को जो अभीष्ट होता है उसके साधन अकस्मात् ही पैदा हो जाते हैं। सरकार भी एक के पीछे दूसरी भूल करती गई और महात्मा जी एक चतुर कारीगर की तरह विरोधियों की हरेक भूल को अपने लिए उपयोगी बनाते गये। कलकत्ते के विशेष और नागपुर के वार्षिक कांग्रेस अधिवेशनों ने महात्मा गाँधी के द्वारा प्रस्तावित कार्य-क्रम को पूरी तरह अपना लिया। १९२१ वाँ वर्ष देश के लिए राजनीतिक इतिहास में स्मरणीय रहेगा। उससे देश के दृष्टिकोण में क्रांति पैदा हुई। उसी वर्ष इंगलैण्ड के युवराज की भारत यात्रा के अवसर पर भारतवासियों की ओर से जैसा विरोधी प्रदर्शन हुआ वैसे कि उससे एक वर्ष पूर्व कल्पना में भी नहीं आ सकता था। सरकार ने भी देशव्यापी दमन करके उस प्रदर्शन की विशालता को अंगीकार किया, जिससे असहयोग आंदोलन को और भी अधिक पुष्टि मिली।

क्रांति से भरे हुए उन दो वर्षों का अति संक्षिप्त विवरण मैंने केवल इसलिए दिया है कि १९२१ के अन्त में अहमदाबाद में कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ उसके संस्मरणों को पाठकों के सन्मुख स्पष्टता से रख सकूँ। मैं उन वर्षों में राजनीतिक कार्यक्षेत्र से अलग सा हो गया था। गुरुकुल काँगड़ी से बुलाये जाने पर मैं वहाँ चला गया था। उन दिनों गुरुकुल में रहते हुए भी मैं देश की राजनीति से पूरी तरह परिचित रहने का यत्न करता रहा, परन्तु कार्यक्षेत्र से अलग रहा। अमृतसर की कांग्रेस के पश्चात् मैं अहमदाबाद की कांग्रेस में दर्शक रूप से सम्मिलित हुआ। जैसे किसी मनुष्य के शारीरिक परिवर्तनों को हर रोज देखने वाले व्यक्ति की अपेक्षा वह व्यक्ति अधिक स्पष्टता से अनुभव कर सकता है, जो उसे बहुत समय व्यतीत हो जाने पर देखे, उसी प्रकार उन दो वर्षों में कांग्रस में जो आमूलचूल परिवर्तन हुआ, उसे मैं अधिक स्पष्टता से अनुभव कर सका, ऐसा मेरा विचार है।

अहमदाबाद की काँग्रेस

दिल्ली से अहमदाबाद के लिये रेल पर सवार होने के समय स्टेशन पर जो दृश्य देखा, वह बदले हुए राजनीतिक वातावरण का पहला चिन्ह था। सारा स्टेशन चाँदी के समान चमकते हुए सफेद खद्दर पहनने वाले प्रतिनिधियों से भरा दिखाई देता था। सम्भवतः स्टेशन पर विद्यमान भीड़ में अन्य लोगों की संख्या अधिक हो परन्तु यह एक मनोवैज्ञानिक सचाई है कि वेश की समानता संख्या को आँखों के लिए सौ गुना कर देती है। नियन्त्रण में बंधे हुए दस आदमी अनियन्त्रित हजार आदमियों पर हावी हो जाते हैं। यह पहला वर्ष था जब देश पर महात्मा जी के प्रभाव की सूचना दृष्टि-मात्र से ही मिलती थी। अहमदाबाद जाने वाले प्रतिनिधि, दर्शक और स्वयंसेवक सब खादी के वेश में थे। अहमदाबाद पहुँच कर तो खादी का साम्राज्य

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ही दिखाई देता था। शहर में जिधर जाओ गांधी टोपियों का बादल सा उमड़ता दृष्टिगोचर होता था। महात्मा जी की नेतृत्व शक्ति का यह सबसे प्रथम और स्थूल प्रमाण था। कोई सेना नहीं बन सकती जब तक उस का नियत वेश न हो। भारत की राजनीति को महात्मा जी की यह सबसे प्रथम महत्वपूर्ण देन थी कि उन्होंने राष्ट्रीयता का एक वेश बना दिया। अहमदाबाद में वह एकता, जो वेश की एकता से प्रकट होती है—गली, कूचों में. राह जातों को भी दिखाई दे रही थी। उसका यह परिणाम स्वाभाविक ही था कि अन्य सब जयकारों को 'महात्मा गांधी की जय' के नारों ने दबा दिया था। एक बार तो महात्मा जी की जयकार का नारा इतने जोर से उठा कि उसने भारत माता की जय के निनाद को भी दबा दिया। अहमदाबाद की कांग्रेस में गांधीयुग, उठते हुए यौवन की दशा में दृष्टिगोचर हो रहा था। उस समय मुझे १९१८ की कांग्रेस की याद आई। दिल्ली में उस अधिवेशन के समय मैं पत्रकारों में बैठा हुआ मञ्च की शोभा को देख रहा था। मञ्च पर जाने वाले नेताओं में मानो विलायती सूट की सुन्दरता की होड़ लगी हुई थी। एक से बढ़ कर दूसरा महापुरुष साहिबी की दौड़ में आगे निकलने की कोशिश में था। जब नेता लोग मञ्च पर चढ़ते थे, तब उनके बूटों की चरचराहट सारे मण्डप में गूंज जाती थी। अहमदाबाद में वह सब बदल गया था। धनी और निर्धन, नेता और स्वयंसेवक, स्त्री और पुरुष सब खद्दर के सफेद वेश में शोभायमान थे। पैरों में सभी के चप्पल थी। यह वेश की एकता राजनीति में महात्मा जी की प्रमुखता का पहला शानदार परिणाम था।

यह पहली कांग्रेस थी, जिसने जनता के मेले का रूप धारण किया। कांग्रेस के प्रतिनिधियों का एक मुख्य डेरा तो था ही, उसके अतिरिक्त कई उप-कैंप भी थे। महात्मा जी का कैंप सबसे अलग बनाया गया था। उसकी व्यवस्था अन्य डेरों से अलग ही थी। उसके पश्चात् प्रत्येक ऐसी कांग्रेस में, जिसमें महात्मा जी सम्मिलित हुए, एक अलग महात्मा कैंप बनाने की प्रथा का निरन्तर पालन किया गया।

इस कांग्रेस की एक बड़ी विशेषता यह थी कि मुसलमान समूह रूप से सम्मिलित हुए थे क्योंकि खिलाफत को कांग्रेस के कार्यक्रम का एक भाग बना दिया गया था।

उन दिनों साधारण मुसलमान कांग्रेस को खिलाफत के नाम से ही पुकारते थे। हम लोगों को खद्दर पहने हुए देख कर मुसलमान तांगेवाले प्रायः पूछा करते थे 'क्यों बाबू जी क्या आप भी खिलाफत में काम कर रहे हैं। सुना है, गांधी जी भी आजकल खिलाफत में काम कर रहे हैं।' उस युग के मुसलमान कांग्रेस को खिलाफत का एक छोटा सा सीगा (विभाग) समझते थे। नेताओं की बात दूसरी है। वे समझते तो ठीक होंगे परन्तु शायद अपने मुसलमान अनुयायियों को बतलाते यही थे कि कांग्रेस खिलाफत में शामिल हो गई है। अहमदाबाद में मुसलमान उलेमाओं और उनके अनुयायियों का अलग कैंप था जिसके द्वार पर अर्ध चन्द्र वाला नीला झंडा फहरा रहा था। मौलाना शौकतअली और मौलाना मुहम्मदअली कराची में पढ़े गए फतवे के अपराध में जेल में थे। उनकी अहमदाबाद में अनुपस्थिति ने मुसलमानों के जोश को और भी अधिक भड़का दिया था।

हम लोग एक जुदा कैम्प में ठहरे थे, जिसके केन्द्र पिता जी थे। उसे आर्य-समाजी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

राष्ट्रवादियों का डेरा कहा जा सकता है। उस डेरे में सकड़ों स्त्री-पुरुष ठहरे हुए थे। प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल विशेष व्याख्याताओं के व्याख्यान के लिए अन्य डेरों की भाँति इस डेरे में भी प्रबन्ध था। दो व्याख्यान मुझे विशेष रूप से याद हैं। एक व्याख्यान पंडित रामभजदत्त चौधरी का था। आप पंजाब के प्रसिद्ध आर्यसमाजी थे और हाल में ही राजनीति में प्रविष्ट हुए थे। दूसरा व्याख्यान श्री स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक का था। स्वामी जी को मैं अपने प्रारम्भिक राजनीतिक शिक्षकों में से मानता हूँ। उनकी मनुष्यों के अधिकारों पर लिखी हुई छोटी-सी पुस्तिका ने बाल्यावस्था में मुझे बहुत प्रभावित किया था। स्वामी जी के राजनीतिक व्याख्यान सुनने का मुझे बहुत शौक था। मैंने उनका यह पहला राजनीतिक व्याख्यान सुना। मैं उन की वक्तृत्व शक्ति से बहुत प्रभावित हुआ। उनके व्याख्यान का निम्नलिखित हिस्सा अभी तक मुझे याद है। 'लोग मुझसे पूछते हैं, स्वामी जी आप सिर के बाल कब कटवायेंगे ? मैं उन्हें जवाब देता हूं अरे, ये तो सिंह की लटायें हैं, ये तब तक नहीं कटेंगी, जब तक हमारा देश स्वतन्त्र नहीं हो जाएगा। ये जेल में भी मेरे साथ ही जायेंगी।'

कांग्रेस का वृहद् अधिवेशन

अहमदाबाद के कांग्रेस अधिवेशन की कई विशेषतायें थीं। मुख्य मण्डप में से कुरसी और मेज को पहली बार देश निकाला दिया गया। मंच पर और नीचे चटाइयों के ऊपर चादर बिछा दी गई थीं। यह इस बात का चिन्ह था कि कांग्रेस कुछ श्रेणियों की न रह कर जनता की चीज हो गई। दूसरी विशेषता यह थी कि मण्डप में जिधर देखो, सफेद खद्दर ही खद्दर दिखाई देता था। मौलानाओं तक ने ऊँची ऊंची खद्दरी टोपियाँ पहन रखी थीं। तीसरी विशेषता थी सरदार वल्लभ भाई पटेल के स्वागताध्यक्ष के पद पर से दिये गए भाषण की संक्षिप्तता। इस से पूर्व स्वागताध्यक्ष से यह आशा की जाती थी कि कांग्रेस के सभापति को जो कुछ कहना चाहिए, उसे स्वागताध्यक्ष पहले ही कह जायेगा। इस पिष्टपेषण से कांग्रेस का समय व्यर्थ में ही नष्ट होता था। सरदार बल्लभ भाई पटेल ने अपना स्वागत-भाषण शायद १५ मिनट में ही समाप्त कर दिया। इन नवीनताओं से प्रतिनिधि लोग बहुत ही प्रसन्न हुए। सरदार के संक्षिप्त भाषण से उनके बारे में लोगों ने जो सम्मति बनाई वह दो तरह की थी। सरदार का असली रूप अभी भारतवासियों के सामने नहीं आया था। कुछ ने कहा—महात्मा जी के अनुयायी होने के कारण ही इन्हें स्वागताध्यक्ष बनाया गया है। अपने भाई श्री विट्ठल भाई पटेल जैसी योग्यता इनमें नहीं है, बेचारे क्या बोलते। जो लोग सरदार से कुछ परिचित थे, उन्होंने यह समाधान किया कि बल्लभ भाई कर्मप्रधान पुरुष हैं, वाणीप्रधान नहीं। ये कहते कम और करते अधिक हैं।

इस अधिवेशन के अध्यक्ष पद के लिए देशबन्धु दास का चुनाव हुआ था। वे जेल में थे। उनके स्थान पर सभापतित्व करने के लिए हकीम अजमलखां साहब का निर्वाचन किया गया। हकीम साहब अंग्रेजी नहीं जानते थे। उन्होंने अपना प्रारम्भिक भाषण उर्दू में पढ़ा था, यह कांग्रेस की चौथी विशेषता थी।

अहमदाबाद कांग्रेस की सब से बड़ी विशेषता यह थी कि इस के प्रथम और मुख्य प्रस्ताव द्वारा कांग्रेस के डिक्टेटर का कंटीला ताज महात्मा जी के सिर पर रखा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

गया और उससे भी विशेष महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि वह ताज महात्मा जी ने अपने हाथों से स्वयं अपने सिर रखा। इस घटना ने उस समय नैपोलियन की ताज-पोशी का दृश्य याद करा दिया। जब सम्राट पद पर आरूढ़ होने के समय पोप ने नैपोलियन के सिर पर रखने के लिए ताज उठाया तो नैपोलियन ने हाथ बढ़ा कर उसे स्वयं अपने हाथों में ले कर सिर पर रख लिया। महात्मा जी ने वह प्रस्ताव स्वयं ही उपस्थित किया, जिसके द्वारा उन्हें कांग्रेस के सर्वाधिकार समर्पण किये गये थे। महात्मा जी ने उस समय जो भाषण दिया उस के शब्द मेरे कानों में अब भी गूंज रहे हैं। उन शब्दों का श्रोताओं पर जो अद्भुत प्रभाव हो रहा था वह भी मुझे स्पष्ट रूप से याद है। महात्मा जी ने जो कुछ कहा उस का अभिप्राय यह था—देश में स्वराज्य की उत्कृष्ट अभिलाषा पैदा हो गई है। देशवासियों को यह भी विश्वास हो गया कि उन की इच्छा अहिंसात्मक लड़ाई द्वारा पूरी हो सकती है। मैं अहिंसात्मक लड़ाई का उद्भावक और आचार्य हूँ। यह भी सम्भावना है कि शीघ्र ही सरकार नेताओं की गिरफ्तारी करने वाली है, इन कारणों से मैं प्रस्ताव करता हूँ कि स्वराज्य की अहिंसात्मक लड़ाई चलाने के लिए मुझे डिक्टेटर के पूर्ण अधिकार दिये जायं और यह भी अधिकार दिया जाय कि मैं स्वयं अपने उत्तराधिकारी चुन सकूँ। मैं विश्वास रखता हूँ कि हम अहिंसात्मक भावना से स्वराज्य की लड़ाई लड़ सकेंगे। हम एक वर्ष के अन्दर-अन्दर स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं और भारत का सूर्यमंडल में वही ऊँचा स्थान है, जिस का वह अधिकारी है।

जिस समय महात्मा जी व्याख्यान दे रहे थे, श्रोता मानों मन्त्रमुग्ध हो रहे थे। आत्म-विश्वास का जादू मैंने उस दिन देखा। मेरे पास मेरठ के वकील और एक धनी व्यक्ति बैठे थे। महात्मा जी के एक-एक शब्द पर मानों उनके खून में उबाल आता था। उफ और ओह इस प्रकार के बेचैनी सूचित करने वाले शब्द बार-बार उनके मुंह से निकलते थे। वे मानों अनुमान कर रहे थे कि स्वराज्य उन की ओर भगा चला आ रहा है और भारत संसार की चोटी पर बड़े वेग से चढ़ रहा है। महापुरुष का मैस्मरेजम उनके चेहरे पर उग्र रूप में झलक रहा था। श्रोताओं में से अधिकांश की वैसी ही दशा थी। तब क्या आश्चर्य की बात थी कि वह प्रस्ताव जोश के उमड़ते हुए तूफान में महात्मा गांधी जी की जय के नारों के बीच स्वीकार किया गया।

इस प्रकार अहमदाबाद कांग्रेस के मुख्य प्रस्ताव द्वारा देश में गांधीयुग का पूर्ण अधिकार हो गया।

———

पंजाब के दो शेर

३०. स्वामी जी और लाला जी

जब मैं पिता जी और लाला लाजपतराय जी के परस्पर सम्बन्ध के विषय में अपनी स्मृतियों को इकट्ठा करके देखता हूँ तो मुझे जंगल के दो शेरों की लोकोक्ति

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

याद आती है। कहते हैं एक जंगल में दो शेर नहीं रह सकते, परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि वे दूसरे की बहादुरी को भी पहचानते नहीं। यह स्पष्ट है कि वे दूसरे की शक्ति को पहचानते हैं, उस का आदर करते हैं और इसलिए साथ-साथ रहना पसन्द नहीं करते। वे जानते हैं कि दो राजा और दो शेर एक साथ नहीं रह सकते। यदि उन से एक दूसरे के विषय में राय पूछी जाय तो वे यही कहेंगे कि वह शेर है और मैं भी शेर हूँ, हम दोनों एक जंगल में कैसे रह सकते हैं?

यह एक सर्वसम्मत सी बात है और जिससे शायद कोई ही पंजाबी इन्कार करे कि लाला जी और स्वामी जी अपने-अपने क्षेत्र में वीर सिपाहियों के वीर सेनापति थे। यही गुण था जिसने उन्हें पंजाब का नेता बनाया। उन दोनों वीर नेताओं के पश्चात् पंजाब को वैसा नेतृत्व नहीं मिला। यही पंजाब के वर्तमान सार्वजनिक जीवन का सबसे बड़ा रोग है। जो पंजाब सरकारी नेताओं की कमान में आकर ब्रिटिश साम्राज्य के लिए पृथ्वी के कोने-कोने में लड़ाइयां लड़ते और वीरता के क्षेत्र में नाम पैदा करते थे वही पंजाबी सिंह सदृश सेनापतियों के अभाव में देश की राजनैतिक दौड़ में पिछड़ रहे हैं।

यह तो प्रसंगागत बात हुई। यहाँ तो मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि लाला जी और पिता जी में नेतृत्व की दृष्टि से इतनी अधिक समानता थी कि उन्हें निश्शंक होकर एक ही जंगल के दो शेर कहा जा सकता है। दोनों का कार्य क्षेत्र एक सा रहा। दोनों एक दूसरे के गुणों का आदर करते थे परन्तु शायद ही कभी कोई ऐसा समय आया जब दोनों ने एक ही संस्था में काम किया हो, एक ही व्याख्यान वेदी पर व्याख्यान दिया हो अथवा एक आन्दोलन को इकट्ठे मिल कर चलाया हो। यदि कभी अकस्मात् ऐसा अवसर आ भी गया है तो वह शीघ्र समाप्त होता है। कभी देर तक नहीं चला।

आर्य-समाज के क्षेत्र में

दोनों महापुरुषों ने अपने-अपने सार्वजनिक जीवन का आरम्भ आर्य-समाज में किया। दोनों ही शुरू से एक महान् व्यक्ति लाला साँईदासजी के प्रभाव में रहे। दोनों में जोश था, त्याग की भावना व निर्भयता थी और तर्क करने की शक्ति थी। दोनों ही अपने ढंग के प्रभावशाली वक्ता थे। यदि पंजाब की आर्य-समाजों में फूट न पड़ती या फूट पड़ने पर भी दोनों महापुरुष एक ही पक्ष में चले जाते तो आर्य-समाज का और साथ ही पंजाब का सार्वजनिक जीवन शायद दूसरी ही तरह का होता, परन्तु दो शेर एक जंगल में न रह सके। पिता जी महात्मा पार्टी के नेता बन गये और लाला जी कालेज पार्टी के।

समय का प्रवाह बहता गया। लाला जी ने अपनी सारी शक्ति डी० ए० वी० कालेज के निर्माण में लगा दी और स्वामी जी ने सर्वमेध-यज्ञ करके गुरुकुल विश्वविद्यालय खड़ा किया। लाला जी का केंद्र स्थान लाहौर था और स्वामी जी ने अपना केन्द्र हरिद्वार में बनाया। उस समय मैं बच्चा था। इस कारण दोनों महापुरुष एक-दूसरे के सम्बन्ध में क्या विचार रखते थे, निजी ज्ञान के आधार पर इस विषय पर कोई सम्मति नहीं दे सकता। मेरी सम्मतियों का सिलसिला उस समय से आरम्भ होता है जब लाला जी राजनीति में प्रवेश कर चुके थे। मैं वहीं से इस संदर्भ को शुरू करता हूँ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मांडले की जेल में

लाला जी के और पिता जी के परस्पर सम्बन्ध का दूसरा परिच्छेद उस समय से आरम्भ होता है जब सरकार ने लाला जी को गिरफ्तार करके नजरबन्दी के लिये मांडले के किले में भेज दिया था। लाला जी उस समय राजनीति के क्षेत्र में पूरी तरह आ चुके थे। सारा पंजाब उनके तपस्वी आभूषणों से हिल गया था। सरकार उस प्रकम्प को न सह सकी, उसने लाला जी को और कुछ अन्य नेताओं को पंजाब से बाहर जेलों में बन्द कर दिया।

इससे पूर्व लाला जी आर्य-समाज के प्रमुख कार्यकर्त्ता माने जाते थे। उनमें और आर्य-समाज में एकीभाव सा हो रहा था। उनकी गिरफ्तारी का आर्य-समाज और आर्यसमाजियों पर बहुत असर पड़ा। सरकार आर्यसमाज को सन्देह की निगाह से देखने लगी और आर्यसमाज अपने को सरकार का कोप भाजन समझने लगी। डी० ए० वी० कालेज के लाला जी जीवन प्राण थे। उनकी गिरफ्तारी का सबसे पहला और जोरदार असर डी०ए० वी० कालेज कमेटी पर पड़ा। जिसने गिरफ्तारी के कुछ ही दिनों के अन्दर इस आशय का ठहराव पास किया कि लाला जी की राजनैतिक हलचलों का आर्य-समाज और डी० ए० वी० कालेज से कोई सम्बन्ध नहीं है।

मैं इससे पूर्व बतला आया हूँ कि आर्य-समाज के कार्य क्षेत्र मे लालाजी और पिता जी प्रतिस्पर्धी के रूप में ही कार्य कहते रहे। उस समय दोनों एक दूसरे के आलोचक थे। जब लाला जी ने राजनैतिक कार्य आरम्भ किया तब भी परिस्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। लाला जी को परमात्मा ने ऐसी शक्ति प्रदान की थी कि वह एक ही भाषण से जनता के हृदय पर अधिकार कर लेते थे। राजनीति में आने पर भी उन्हें लोगों के हृदयाधिदेवता बनने में देर न लगी। लाहौर में उन का जलूस निकाला गया जिसमें जनता का जोश यहाँ तक बढ़ा कि लोगों ने गाड़ी के घोड़े खोल दिये और स्वयं गाड़ी को खींचा। उन दिनों की राजनीति से पिता जी असन्तुष्ट थे। वे उसे चरित्रहीन राजनीति कहा करते थे। उन्हीं दिनों के सद्धर्म प्रचारक में पिता जी के राजनीतिक आन्दोलन के विषय में एक आलोचनात्मक लेखमाला है। अन्य घटनाओं के साथ गाड़ी के घोड़े खोलने वाली घटना का उल्लेख भी कड़ी आलोचना के साथ किया गया था। जब लाला जी गिरफ्तार हो गए तब किसी को यह आशा नहीं थी कि उनका सबसे जबरदस्त समर्थन पिता जी की ओर से होगा। पुराने आर्यसमाजी आश्चर्य से आँखें मलने लगे। जब उन्होंने सिविल मिलट्री गजट में पिता जी को लिखी हुई आर्यसमाज सम्बन्धी लेखमाला पढ़ी (उस लेखमाला में पिता जी ने लाला जी की निष्कपट सफाई पेश की थी) तो साथियों की ओर से नहीं-नहीं और आलोचकों की ओर से हाँ-हाँ का व्यवहार देख कर लोग चकित होने लगे। परन्तु इसमें आश्चर्यित होने की कोई बात नहीं थी। जहाँ लाला जी के पहले के साथी बुद्धि-प्रधान व्यक्ति थे, वहाँ पिता जी में बुद्धि और भावुकता का अद्भुत मेल था। दूसरे के दुःख को देख कर वे एकदम पसीज जाते थे। असली वीरता के सामने उन का सिर अनायास झुक जाता था। संस्कार रास्ते में रुकावट नहीं डाल सकते थे। जिस व्यक्ति का सारा जीवन विरोधी शक्तियों से सीधी टक्कर लेने में व्यतीत हुआ हो, उसके विषय में सुन कर पाठक आश्चर्यित होंगे कि किसी के दुःख की बात सुनते

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

था कहते हुए उन का गला भर आया करता था और आंखों में आंसू झलक आते थे। ऊँचे स्वर से पुस्तक अथवा पत्र पढ़ते हुए करुणा या वीरता की मार्मिक बात आते ही उनका पढ़ना रुक जाता था। सुनने वाले अनुभव कर लेते थे कि उनका हृदय भर आया है। लाला जी की गिरफ्तारी का भी उन पर ऐसा ही असर हुआ। अब वे लाला जी को एक घायल सेनापति के रूप में देख रहे थे। उनके हृदय से विरोध के भाव दूर हो गये थे। लाला जी भी भावुकता में पिता से कुछ कम नहीं थे। उन पर पिताजी के लेख का बहुत गहरा असर हुआ। जब वह मांडले से लौटकर लाहौर आये तब उन से मिलने के लिए पिताजी उन की कोठी पर गये थे। उस समय मैं भी उन के साथ था। दोनों भावुक व्यक्तियों का मिलन बहुत ही भावुकतापूर्ण था। दोनों भाई-भाई की तरह बगलगीर हुए। दोनों के नेत्र उस समय प्रेम के आंसुओं से गीले थे और भी बहुत से मित्र इस समय वहाँ उपस्थित थे। उन सब को पुराने महान् प्रतिस्पर्द्धियों को भाई भाई की तरह मिलना बहुत ही प्यारा लगा।

मुझे आप पर अभिमान है

भारत के घटना-चक्र ने फिर पलटा खाया। लाला लाजपतराय जी अमरीका गये और वहीं रोक दिये गये। उन्हें वर्षों तक वहाँ घर बनाकर रहना पड़ा। लाला जी ने उस लाचारी के प्रवास का पूरा उपयोग किया। उन्होंने भारत के पक्ष में लेख और वाणी द्वारा खूब प्रचार किया। जिससे अमरीका में और अन्य देशों में भी भारत के स्वाधीनता-आन्दोलन की चर्चा विशेष रूप से हुई। इसी बीच में योरुप का पहला महायुद्ध आरम्भ हो गया। युद्ध के दिन लाला जी को अमरीका में ही काटने पड़े। युद्ध के समाप्त होने पर भी बहुत समय तक उन्हें वहाँ रुके रहना पड़ा। इधर भारत-वर्ष में रौलट ऐक्ट का आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। देश भर में असन्तोष की आग भड़क उठी और उस से भी विशेष रूप से पंजाब में तो मानो ज्वालामुखी फट पड़ा। सरकार के रोष का वज्र पंजाब पर भी उग्रतम रूप में पड़ा। उन दिनों दिल्ली और पंजाब पर जो आपत्तियाँ आयीं, उनके समाचार पढ़कर हजारों मील दूर बैठे हुए पंजाब-केसरी के भावुकता पूर्ण हृदय की क्या दशा होती होगी, उसका अनुमान ही लगाया जा सकता है। वह कभी आंसू बहाता होगा तो कभी प्रज्वलित हो उठता होगा। जी चाहता होगा कि उड़ कर देश में पहुँच जाऊँ तथा सरकार और प्रजा के बीच में खड़ा होकर दमनकारियों से ललकार कर कह दूँ कि आओ मैं यहाँ खड़ा हूँ, यदि इच्छा हो तो मेरी छाती से टकरा जाओ, पर याद रखो कि मेरी छाती को पार किये बिना तुम प्रजा तक नहीं पहुँच सकोगे। देश की जाग्रति और सरकार के दमन के समाचारों के साथ ही लाला जी ने यह समाचार भी पढ़े कि दिल्ली और पंजाब में जनता का नेतृत्व स्वामी जी कर रहे हैं। उन्होंने दिल्ली की जामा मस्जिद के मिम्बर पर से भारतीय एकता पर स्वामी जी द्वारा दिये गये सरमन का समाचार पढ़ा और फिर यह भी सुना कि मार्शल-ला से आज पंजाब की सेवा के लिए स्वामी जी सर माइकेल ओडवायर की नयी तलवार की परवाह न करके अमृतसर पहुँच गये। इन समाचारों का लाला जी के हृदय पर जो प्रभाव पड़ा वह उनके उस समय स्वामीजी के नाम लिखे गये पत्र की एक पंक्ति से बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है। आपने अपने प्रेम और अपनावट से भरे हुए पत्र में लिखा था 'मुझे आप पर अभिमान है'। इस एक छोटे से वाक्य में कितनी ममता और कितनी सहृदयता भरी पड़ी है। उसे हृदय वाले ही जान सकते हैं। लाला जी को ऐसा अनुभव हो रहा था कि मानो स्वामी जी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के शरीर में उन्हीं की आत्मा काम कर रही है। ऐसा वाक्य प्रायः ऐसे भाई के लिए लिखा जाता है। जो सामान्य सगे से भी अधिक सगा हो।

गुरुकुल में

आखिर वह समय भी आ गया जब लाला जी अपने देश में आ गये। उस समय असहयोग आन्दोलन आरम्भ हो चुका था। लाला जी ने आते ही पंजाब में असहयोग युद्ध की कमान संभाल ली। असहयोग के कार्यक्रम का एक भाग यह भी था कि सरकारी ढंग की प्रचलित शिक्षा का बहिष्कार किया जाये। डी० ए० वी० कालेज के निर्माण में लाला जी का बहुत बड़ा भाग था। उन्होंने कालेज के लिए तन मन और धन की समूची शक्तियाँ लगाकर उद्योग किया था। परन्तु असहयोग धर्म का एक आदेश चाहता था कि लाला जी उसी अपने खून से सींचे हुए कालेज का विरोध करें। कोई छोटा व्यक्ति होता तो इस धर्म संकट में ठिठक जाता। पर लाला जी वस्तुतः महान् थे वह सांसारिक मोह से ऊँचे उठ गये थे और डी० ए० वी० कालेज के छात्रों को कालेज छोड़ कर राष्ट्रीय शिक्षणालय में पढ़ने की प्रेरणा करने लगे। उन्हीं दिनों गुरुकुल काँगड़ी के वार्षिकोत्सव पर लाला जी को निमन्त्रित किया गया। डी० ए० वी कालेज और गुरुकुल काँगड़ी एक दूसरे से बिल्कुल उल्टी संस्थाएँ मानी जाती थीं। आर्यसमाज की दुनियाँ में दोनों को एक दूसरे के निषेध से समझा जाता था। लाला जी कालेज के जन्मदाताओं और संचालकों में से प्रमुख व्यक्ति थे। इधर स्वामी जी गुरुकुल के संस्थापक और सर्वेसर्वा थे। समय का चिन्ह समझिये कि लाला जी को स्वामी जी ने गुरुकुल के उत्सव पर निमन्त्रण दिया। लाला जी ने उसे सहर्ष स्वीकार किया। इस से पूर्व लाला जी का नाम हम लोगों के लिए ऐसा ही था जैसा किसी ऐतिहासिक वीर शिरोमणि का पढ़ा था कि जयमल फत्ता और आल्हा ऊदल बड़े बहादुर थे। शत्रु उन के नाम से काँपा करते थे, और मित्र उन की आन के सहारे जीते थे। हम लोग गुरुकुल में रहते थे। कभी लाला जी के दर्शनों का सौभाग्य नहीं पाया था। उनका नाम सुनते थे, उन की वीर-गाथाएँ पढ़ते थे और हृदय से उन के चरणों में अपना सिर झुकाते थे। जब सुना कि लाला जी गुरुकुल में आएंगे तो हमारे दिल बांसों उछलने लगे। सुन रखा था कि लाला जी की जबान में जादू है। हम लोगों को सबसे बड़ी प्रसन्नता यह हो रही थी कि लाला जी का भाषण सुनेंगे; जो हमारे लिए अब तक केवल एक दन्त-कथा बनी हुई थी। उसे स्थूल रूप में आँखों के सामने आने की आशा से सब ब्रह्मचारी असाधारण रूप से प्रसन्न थे।

लाला जी का गुरुकुल में बड़ी धूम-धाम से स्वागत हुआ। स्वागत का तो आजकल रिवाज हो गया है, परन्तु आप सच मानें वह स्वागत बिल्कुल हार्दिक था। हम लोगों के हृदय लाला जी के स्वागत के लिए उमड़े पड़ते थे।

लाला जी दलितोद्धार-सम्मेलन के सभापति निर्वाचित हुए थे। जब आप बोलने के लिए खड़े हुए, तब बहुत देर तक पण्डाल तालियों से गूँजता रहा। आर्य-समाज और कांग्रेस के शब्दकोष में जितने जोशीले नारे थे सब लगा दिए गए। अनुभव हो रहा था कि डी० ए० वी० कालेज के एक संस्थापक को गुरुकुल में देखकर आर्य-समाजी लोग, आर्य समाज की एकता का, और एक राष्ट्रीय नेता को गुरुकुल

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में देखकर राष्ट्रवादी लोग भारतीय राष्ट्र की एकता का स्वप्न देख रहे थे। ब्रह्मचारियों के लिए लाला जी का भाषण सुनने का पहला ही अवसर था, इस कारण उन की उत्सुकता बहुत ही बढ़ी चढ़ी थी।

लाला जी कैसे वक्ता थे, इस पर मैं यहाँ कुछ नहीं कहूँगा। मैं दीपक दिखाकर सूर्य की रोशनी को प्रकाशित क्या करूँ? हम लोगों पर उनका क्या असर पड़ा, इसकी चर्चा भी किसी दूसरे स्थान पर ही करूँगा। यहाँ तो मैं उन थोड़े से संस्मरणों को स्मृति की पुस्तक में से उद्धृत करता हूँ जो लाला जी ने उस भाषण में स्वामी जी और गुरुकुल के सम्बन्ध में कहे थे। आपने कहा—

'मुझे जब स्वामी जी की ओर से गुरुकुल का निमन्त्रण-पत्र मिला था तब मैंने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। डी० ए० वी० कालेज से मेरा उसकी स्थापना के समय से ही सम्बन्ध है। वह सम्बन्ध ऐसा है जैसे एक बाप का बेटे के साथ होता है। मैं डी० ए० वी० कालेज को अपनी सन्तान की तरह प्यार करता हूँ। परन्तु गुरुकुल से मेरा प्रेम दूसरी ही तरह का है। मैं उससे ऐसा प्यार करता हूँ जैसा एक प्रेमी को प्रेमिका के साथ होना चाहिए।'

यह वाक्य अभी समाप्त भी न हुआ था कि सारा पंडाल तालियों से गूंज उठा। यहाँ तक कि वाक्य के अन्तिम शब्दों का केवल अनुमान ही लगाया जा सका। उस असामान्य रूप से परिमार्जित ऊँचे और तार-स्वर से कहे हुए भावुकता पूर्ण यह वाक्य श्रोताओं के हृदयों को पार करके मानों उनकी अन्तरात्माओं में प्रवेश कर गए। उस समय हम लोगों ने पहली बार अनुभव किया कि व्याख्यान-कला का जादू किसे कहते हैं। लालाजी उस कला के आचार्य थे। हिन्दुस्तानी भाषण की कला में लाला जी जो ऊँचा पैमाना कायम कर गए हैं, वह आज तक भी अछूता ही पड़ा है। कोई वक्ता उसकी निचली रेखा को छू तक नहीं सका।

गुरुकुल में स्वामी जी और लाला जी भाई-भाई की तरह गले से गले मिलाकर मिले। दो ऐसे सेनापति जिनकी तबियतों में परस्पर समानताएँ असमानताओं की अपेक्षा बहुत अधिक थीं, यदि समानताएँ ९० थीं तो असमानतांएँ १० थीं। उन्हें परिस्थितियों ने अलग-अलग मोर्चों पर खड़ा कर दिया था। गुरुकुल में उन दोनों को एक ही मोर्चे पर खड़ा देख कर आर्य-जनता अपने अंगों में फूली नहीं समाती थी।

———

३१. १९२४ का एकता सम्मेलन

जैसे १९१९ के प्रारम्भ में भारत की राष्ट्रीयता और एकता के सुनहरे अनुभव की प्रारम्भिक स्मृतियाँ मेरे स्मृतिपट पर अंकित हो गई थीं, उसी प्रकार १९२४ के पहले साम्प्रदायिक दंगे की काली और कड़वी स्मृतियाँ भी अंकित हुए बिना न रहीं। वे दिन जब याद आते हैं, तो दिल काँप उठता है। यदि रौलट ऐक्ट के आन्दोलन ने दिल्ली के अन्तरिक्ष में सुप्रभात का रूप बाँध दिया था, तो कहना पड़ेगा कि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१९२४ के फिसाद ने भयावनी रात्रि का दृश्य दिखला दिया। सुप्रभात के पीछे इतना शीघ्र रात्रि आ जायगी, यह आशंका किसी को नहीं थी।

दंगा अकसमात् नहीं हुआ। उसकी तैयारी और समय तक का निश्चय प्रत्यक्ष में हुआ। स्थानीय सरकार को उस उद्योगपर्व का एक-एक सर्ग मालूम था। एक ओर जाटों के इलाके पहाड़ी धीरज पर से कुर्बानी की गाय को धूम-धाम से ले जाने की तैयारी हो रही थी, और दूसरी ओर उस रास्ते को रोकने की योजना खुले तौर पर बनाई जा रही थी। सारा शहर जानता था, और स्थानीय सरकार भी जानती थी। सरकार ने उन योजनाओं को नहीं रोका—और ईद के मौके पर फिसाद हो गया।

फिसाद भी दिन दहाड़े अधिकारियों की नाक के नीचे हुआ। दिन के दो बजे होंगे। हजारों आदमियों की भीड़ के साथ कुर्बानी की गाय का जुलूस पहाड़ी धीरज पर से निकाला जा रहा था। उसके साथ पुलिस की गारद थी। जब वह जलूस एक विशेष स्थान पर पहुँचा तब पहले से आशंकित दंगे पर हिन्दू-मुसलमानों में मार-काट और छीना-झपटी शुरू हो गई, लाठी चली पत्थर चले और छुरे भी चले कुर्बानी का जलूस छिन्न-भिन्न हो गया और फिसादी लोग आस-पास की गलियों में बिखर गए। वहाँ फिसाद ने बड़ा गन्दा और वीभत्स रूप धारण किया। बूढ़े बच्चे और स्त्रियाँ किसी का भी लिहाज नहीं किया गया। मुसलमानों की भीड़ ने घरों में घुस कर हिन्दुओं को आहत किया और हत्याएं भी कीं। घण्टा घर पर सिपाहियों की गोलियों से बहाए गए रुधिर ने जिस एकता की वाटिका को हरा-भरा किया था, उस दिन छुरों और लाठियों द्वारा बहाए गए रक्त ने तेजाब बन कर उसे जला दिया। १९२४ के सायंकाल स्थान पर एकता और परस्पर प्रेम के खण्डहरों को शहर में बिखरा हुआ देखकर ऐसा अनुभव होता कि १९१९ का जागरण मानों एक सपना था जिसे शत्रु ने झटका देकर तोड़ दिया।

दिल्ली भारत का हृदय है, कलकत्ता और बम्बई आकार में बड़े हैं उसमें ऐश्वर्य और शिक्षा की बहुतायत है—यह सब कुछ होते हुए भी यह मानना पड़ेगा कि दिल्ली देश की अनुभव, शक्ति का केन्द्र है। उसके हर्ष और शोक का असर देश पर तुरन्त और व्यापी होता है। जब दिल्ली से एकता का झोंका उठा तब देश भर में सुखकारी पवन बहने लगा और जब दिल्ली में साम्प्रदायिक झगड़े का उत्पात मचा तो भारत प्रकम्पित हो उठा। फलतः उठते हुए बवंडर को रोकने के लिए सितम्बर मास में देश के प्रतिनिधियों की एक बृहद् कान्फ्रेंस बुलाई गयी। जिसमें सम्मिलित होने के लिए महात्मा गांधी, पं० मदनमोहन मालवीय, मौलाना अब्दुल कलाम, आजाद, मौलाना मोहम्मद अली जिन्ना आदि सार्वदेशिक हिन्दू मुसलमान नेता एकत्र हुए।

सिंहावलोकन

महात्मा जी साम्प्रदायिक दंगे के भयानक समाचारों को सुनकर दिल्ली आये, और सब्जी-मण्डी में मेसर्स नन्हेमल जानकी दास की कोठी में ठहरे। वहाँ उन्होंने २२ दिन का स्मरणीय उपवास किया। उस उपवास और उसके साथ हुए एकता सम्मेलन की स्मृतियों को स्पष्ट रूप से अंकित करने के लिए कुछ थोड़े से सिंहाव--

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लोकन की आवश्यकता है। पूरा चित्र समझने में पाठकों को उससे सहायता मिलेगी।

१९२२ के दिसम्बर मास के गुरु के बाग वाले मोर्चे के सम्बन्ध में अकाली सत्याग्रहियों को आशीर्वाद देने के लिए पिता जी अमृतसर गये। वहाँ, अकाल-तख्त के समीप हुई सार्वजनिक सभा में दिये व्याख्यान पर पंजाब की सरकार ने आपको गिरफ्तार कर लिया। वस्तुतः यह गिरफ्तारी पंजाब सरकार के दिमाग में दो साल से घूम रही थी। अमृतसर कांग्रेस के समय से ही ओडवायर के सलाहकार 'स्वामी' के विरुद्ध दाँत पीस रहे थे। अवसर पाकर पंजाब सरकार ने पिता जी को १९१९ में अमृतसर में कांग्रेस करने के अपराध की सजा १९२२ में एक वर्ष कारागार के रूप में दे डाली।

१९२२ के अन्त में पिताजी जेल से मुक्त होकर बाहर आ गये। जेल में संपूर्ण परिस्थिति पर शान्त विचार करने से आप जिस परिणाम पर पहुँचे उसे आपने अपने संस्मरणों में निम्नलिखित भाषा में लिखा है—'मुझे निश्चय हुआ है कि अभी चरित्रगठन में बड़ी कमी है। कम से कम मैं तो ऐसे साँचे में ढला हूँ कि कई अंशों में स्वयं सदाचार की कमी अपने अन्दर अनुभव करते हुए भी चरित्रहीन पुरुषों के साथ काम नहीं कर सकता। कांग्रेस, हिन्दू महासभा, खिलाफत और अन्य अखिल भारतवर्षीय संस्थाओं को चलाने के लिए बड़े-बड़े व्यक्ति विद्यमान हैं, मुझ जैसे अल्प शक्ति वाले मनुष्य के लिए यही बड़ा काम है कि ब्रह्मचर्य के उद्धार और दलित जातियों के उत्थान का मार्ग जो अपने को सूझा है, उसका सकल्प आर्य-जाति के आगे रखने का यत्न करूँ।'

जेल से बाहर आकर अपने इसी संकल्प की पूर्ति में पिताजी ने कांग्रेस की वर्किंग कमेटी में इस आशय का प्रस्ताव भेजा कि कांग्रेस दलित भाइयों की मांगों को पूर्ण करने का तुरन्त यत्न करे। कांग्रेस कमेटी शाब्दिक रूप से दलितोद्धार के कार्य से सहानुभूति प्रकट करती हुई भी उस समय क्रियात्मक रूप से कुछ करने को तैयार नहीं थी। यह अनुभव करके पिताजी ने १९२३ के जुलाई मास में कांग्रेस के प्रधान मंत्री पं० मोतीलाल जी नेहरू को कांग्रेस से अपना त्यागपत्र भेज दिया। पं० मोती लाल जी नहीं चाहते थे कि पिताजी कांग्रेस से अलग हों, परन्तु आपके कई बार आग्रह-पूर्ण पत्र लिखने पर कमेटी ने त्यागपत्र स्वीकार कर लिया।

इन्हीं दिनों आगरा जिले में मलकानों की शुद्धि का आन्दोलन जारी हो रहा था। आर्य-समाज के प्रमुख नेता की हैसियत से आपकी भी उसमें सहानुभूति थी। शुद्धि कार्य के लिये जो शुद्धि-सभा बनी, आप उसके प्रधान चुने गये।

जो मुसलमान मौलवी हिन्दुओं तथा अन्य धर्मावलम्बियों में इस्लाम की तबलीग करना अपना मजहबी फर्ज समझते थे, वह शुद्धि कार्य, शुद्धि सभा और उसके साथ सम्बन्ध होने के कारण पिताजी से भी सख्त नाराज हो गये, और मुसलमान पत्रों ने उनके विरुद्ध विषैला आन्दोलन आरम्भ कर दिया। मोपलाओं और मुलतान के दंगों के कारण देश का साम्प्रदायिक वातावरण बिगड़ ही रहा था, उस बिगाड़ की जिम्मेदारी शुद्धि आन्दोलन और पिताजी के सिर मढ़ कर मौलाना मुहम्मद अली जैसे राष्ट्रवादी कहलाने वाले मुसलमान भी शुद्धि कार्य को स्थगित कराने के प्रस्ताव उपस्थित करने लगे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

देश में बढ़ते हुए साम्प्रदायिक विक्षोभ को शांत करने के लिये १९२३ के दिसम्बर मास में कांग्रेस के विशेषाधिवेशन के साथ दिल्ली में एकता सम्मेलन का अधिवेशन भी किया गया था। उस सम्मेलन में जब पिताजी पर यह जोर डाला गया कि वह मलकानों को शुद्धि के कार्य को बन्द करा दें तो आपने अत्यन्त न्यायपूर्ण उत्तर दिया था कि "यदि मुसलमानों के सब प्रचारक वहाँ से लौट आयेंगे तो, मैं भी शुद्धि सभा को अपने कार्य कर्त्ताओं को आगरे से लौटा लेने के लिये सलाह दूंगा और यदि सभा ने मेरा निवेदन न माना तो उक्त सभा के पद से अलग हो जाऊँगा।" मौलाना मुहम्मद अली ने उलेमाओं के परों में टोपी रखकर प्रार्थना की कि वे अपने प्रचारकों को वापिस बुला लें। परन्तु वे नहीं माने और शान्ति-सभा बिना किसी परिणाम पर पहुँचे ही भंग हो गई थी।

१९२४ में बकरीद पर दिल्ली में वह दंगा हो गया, जिसकी चर्चा मैं इस लेख के आरम्भ में कर आया हूँ। उस दंगे के समाचारों ने देश के राष्ट्रीय नेताओं को उद्विग्न कर दिया, जिसका परिणाम वह एकता सम्मेलन था, जिस पर महात्मा जी ने अपना प्रसिद्ध २१ दिनो का उपवास किया था।

महात्मा जी का एकता सम्बन्धी लेख

यहाँ प्रसंगवश मैं महात्मा जी के हिन्दू-मुस्लिम एकता सम्बन्धी लेख की चर्चा भी कर देना चाहता हूँ, जो यंगइण्डिया में प्रकाशित हुआ था उसमें महात्मा जी ने हिन्दू-मुस्लिम विरोध के कारणों पर विचार करते हुए जिस शैली का अनुसरण किया था, उससे सम्भव है मुस्लिम संसार पर उनकी उदारता का सिक्का जमा हो, परन्तु भारत की राजनीति और सामाजिक दशा पर उस का बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा। उस लेख में महात्मा जी ने कुरान और इस्लाम की खूब प्रशंसा की और सत्यार्थप्रकाश और उसके मानने वालों के लिए बहुत तिरस्कार-सूचक शब्दों का प्रयोग किया। पिता जी (स्वामी श्रद्धानन्द जी) पर तो उस लेख में विशेष कृपा की गई थी, यह मेरा ही नहीं, प्रायः सभी हिन्दू हृदय रखने वाले भारतवासियों का मत था कि महात्मा जी ने उस लेख में स्वामी जी के सम्बन्ध में जो पक्षपात-पूर्ण आलोचना की थी, उसने देश के साम्प्रदायिक वातावरण में बहुत ही विषैला धुआं फैला दिया।

मेरा विचार है कि महात्मा जी ने भी अपना लेख प्रकाशित हो जाने के पश्चात् यह अनुभव किया था कि वे उस लेख में आर्यसमाज और स्वामी जी के साथ अन्याय कर गये हैं। यंग इण्डिया में कई सम्पादकीय लेख लिख कर उन्होंने अपने प्रारम्भिक लेख के असर को धोने की चेष्टा की परन्तु जो जहर फैल चुका था, वह दूर न हो सका। उस लेख के दो बुरे परिणाम हुए। एक तो यह कि देश के बिगड़े हुए वातावरण की मुख्य जिम्मेदारी मुख्य रूप से आर्यसमाज और स्वामी जी पर डाली गई, जो सत्य के सर्वथा विरुद्ध थी और दूसरा यह कि साम्प्रदायिक मुसलमानों को यह विश्वास हो गया कि महात्मा गाँधी हमसे डरते हैं, हम चाहे कुछ करें, वे हमें अच्छा और दूसरों को बुरा कहेंगे।

आगामी १० वर्षों में भारत की राजनीति में जो अव्यवस्था आ गई, उसका मुख्य कारण वह दूषित मनोवृत्ति थी, जो यंग इण्डिया के एकता सम्बन्धी लेख से पैदा हुई।

———

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

३२. एक नया अनुभव

इतना दुःखदायी और इतना सुखद

अब तक के इन संस्मरणों में मैंने निरन्तर प्रयत्न किया है कि मैं अपने व्यक्तित्व को कलम के पीछे छिपा कर रखूं। इस प्रयत्न में मुझे बहुत कुछ सफलता भी हुई है, परन्तु स्मृतिग्रंथ के इस परिच्छेद में, जिसे मैं आज लिखने बैठा हूँ, मुझे थोड़ी-सी अपनी बात कहनी पड़ती है। परिच्छेद को पढ़ जाने पर पाठक मान जाएँगे कि यदि मैं ऐसा न करता तो वह बात स्पष्ट न होती जो मैं सुनाना चाहता हूँ।

यह एक सचाई है कि पिता जी के जीवनकाल में मैं सदा उनका अनुयायी रहा। कभी-कभी स्थान की दृष्टि से अधिक दूरी हो जाने पर भी मानसिक दृष्टि से सदा समीपता रही। आर्यसमाज के क्षेत्र में हों या कांग्रेस के क्षेत्र में, मैं उनके दायें या बायें दिखाई देता था।

इस बीसवीं सदी में पुराने और नये का संघर्ष एक नियम सा बन गया है। बेटा जवान होते ही बाप को, और शिष्य किताब पढ़ने की योग्यता होते ही गुरु को पुराने ढर्रे का बुद्धू या खूंसट समझने लगता है। इतनी दूरी तक न जाये तो भी उसकी यह भावना तो हो ही जाती है कि पुरानी दुनियाँ नासमझ थी, इस कारण पिता या गुरु की बात मानना जरूरी नहीं। पिता और गुरु, बेटों और शिष्य की इस भावना से अपरिचित नहीं रहते, जिसका परिणाम यह होता है कि दोनों के मध्य में एक खाई बन जाती है, जो समय के साथ-साथ अधिक गहरी और चौड़ी होती जाती है।

ऐसी दुनियां में, लगभग सारी युवावस्था में मानसिक दृष्टि से अपने पिता और गुरु के निरन्तर समीप रह सकना वस्तुतः बड़े आश्चर्य की बात है मैं स्वयं इस बात को सोचकर आश्चर्यित होता हूँ कि स्नातक बनने के पश्चात् लगभग १५ वर्ष के क्रियात्मक जीवन में मैं बिना किसी व्यवधान के पिता जी का अनुयायी कैसे रह सका ?

यदि ऐसा होता कि मैं सदा पिता जी से सहमत ही रहता तो अनुयायी रहने में आश्चर्य की कोई बात नहीं थी। धार्मिक और राजनीतिक क्षेत्र में मेरी और पिता जी की प्रवृत्तियों में कई बहुत बड़े भेद थे। वह स्वभाव से श्रद्धा-प्रधान भावुक व्यक्ति थे, मैं स्वभाव से तर्क-प्रधान ठंडा प्राणी हूँ। उन्हें किसी परिणाम पर पहुँचने में और उसके अनुसार बड़े से बड़ा कदम उठाने में क्षण भर की भी देर नहीं लगती थी। मैं किसी निश्चय पर पहुँचने में बहुत धीमा हूँ और फिर उस के अनुसार लम्बी छलांग लगाने और भी अधिक समय लेता हूँ उनके हर एक विचार में कट्टरता

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

थी, मुझे में उम का अभाव है। इतनी मौलिक भिन्नताएँ होते भी १५ वर्ष के निजी और सार्वजनिक जीवन में बाप बेटे का निरन्तर साथ रह सकना वस्तुतः एक अद्भुत वस्तु थी।

इस अद्भुत वातावरण का कारण जानने के लिए थोड़े से आत्म-विश्लेषण की आवश्यकता है। मैं सदा पिताजी से सहमत—यह तो मैं किसी दशा में भी नहीं कह सकता। प्रकृति भेद के कारण शायद अधिकतर बाह्य विषयों पर मैं उनसे न्यूनाधिक असहमत ही रहता था, तो भी मैं उनके दायरे से बाहर न निकला, इसका मैं एक ही कारण समझता हूँ। मैंने असहमत होकर और बहुत सा प्रयत्न करके जब कभी उस दीवार को लांघन का प्रयत्न किया, तो देखा कि वह दीवार अभी और दूर है, और वह दायरा अभी और विशाल है, लांघने का कोई अवसर ही नहीं आता था। उनकी विशालता से मैं हार जाता था। पिता जी से असहमत हो कर रस्सी तुड़ाने की नौबत नहीं आती थी, क्योंकि वह रस्सी असीम थी। जो व्यक्ति उनके समीप रहे, वे सभी अनुभव करते थे कि उनका हृदय का घेरा बहुत विस्तृत था, वह देश और जाति की सीमाओं से सीमित नहीं था। ऐसे घेरे में से इच्छा रहते भी कैसे निकला जा सकता था।

घटना

मैंने जो विश्लेषण यहाँ किया है, उसे निम्नलिखित घटना स्पष्ट कर देगी। १९२६ में कौन्सिलों के नए चुनाव हुए। कांग्रेस ने अपने उम्मीदवार खड़े किये। इधर पं० मदनमोहन मालवीय और लाला लाजपतराय ने हिन्दू हितों की रक्षा के लिये नैशनलिस्ट पार्टी की योजना की और कई प्रान्तों, में, कांग्रेस के विरोध में, अपने उम्मीदवार खड़े किए गये। पिता जी मुख्य रूप से राजनीतिक व्यक्ति नहीं थे। हाँ, राजनीति उनके धर्म का एक भाग अवश्य थी। उनका 'राजनीति' सम्बन्धी धर्म महात्मा गांधी के समानान्तर था। जब नैशनलिस्ट पार्टी की स्थापना हुई, और मालवीय जी और लाला जी ने हिन्दू हितों के नाम पर स्वामी से सहयोग माँगा तो विचित्र परिस्थिति पैदा हो गई। कई दिनों तक विचार संघर्ष जारी रहा। पिता जी काँग्रेस की साम्प्रदायिक नीति से असहमत थे। वह इस परिणाम पर पहुँच चुके थे कि उस समय काँग्रेस हिन्दू-हितों को दबाकर मुसलमानों को सन्तुष्ट रखना चाहती है। पिताजी का मन था कि इस नीति से भारत की साम्प्रदायिक समस्या सुलझने के स्थान पर और अधिक उलझेगी: क्योंकि अन्याय के आधार पर किया गया समझौता कभी स्थायी नहीं होता। दूसरी ओर साम्प्रदायिक संस्था की ओर से राजनीतिक चुनाव लड़ने, और काँग्रेस का विरोध करने से वह सहमत नहीं थे। कई दिनों तक पिताजी के हृदय में समुद्र-मन्थन जारी रहा जिसके एक-एक उतार-चढ़ाव को देखने का मुझे अवसर मिला। बात यह थी कि १९२६ के चुनाव ने राष्ट्रवादियों के घरों तक में विचार संघर्ष उत्पन्न होने वाली फूट के बीज बो दिये थे। मैं चुनाव में काँग्रेस का पूरा सोलहों आने समर्थक था, और मेरे कुछ साथी, जो अब तक मेरे साथ सौ फीसदी सहमति रखते थे, नैशनलिस्ट पार्टी के समर्थक बन गये थे। पिताजी को मालवीय जी, लाला जी और वह नौजवान साथी नैशनलिस्ट पार्टी के समर्थन में खड़ा करना चाहते थे। स्वभाव से मैं उनके प्रयत्नों की काट करता रहता था। अन्त में मामला यहाँ तक गम्भीर समझा गया कि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लाला जी को तार देकर लाहौर से बुलाया गया और मेरी जिद को तोड़ने के लिए लाला जी की उपस्थिति में पिताजी के पास मुझे बुलाकर पेश किया गया। लाला जी ने मुझे बहुत कुछ समझाया। मैं उन्हें पिताजी के समान मानता था, मैंने आदर-पूर्वक उनकी बात सुनी, और विनय-पूर्वक अपना निवेदन किया। अन्त में लाला जी ने मुझ से जो कहा उसका अभिप्राय निम्नलिखित था—

'इस समय प्रत्येक हिन्दू का कर्त्तव्य है कि वह चुनाव में नैशनलिस्ट पार्टी के उम्मीदवारों की मदद करे। दिल्ली की ओर से कांग्रेस ने मि० आसफअली को खड़ा किया है। नैशनलिस्ट पार्टी लाला शिवनारायण का समर्थन कर रही है। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि स्वामी जी ने लाला शिवनारायण का समर्थन करना स्वीकार कर लिया है, और हमें इजाजत दे दी है कि हम उनके समर्थकों में स्वामी जी का नाम भी दे दें। तुमसे मैं उम्मीद करता हूँ कि तुम अब मि० आसफअली का समर्थन छोड़ दोगे अन्य कोई कारण नहीं तो लिहाज के कारण ही तुम्हें अब कांग्रेस का समर्थन न करना चाहिए।'

मेरे सामने बहुत बड़ा धर्मसंकट था। लाला जी और स्वामी जी दोनों को मैं पूजा के योग्य मानता था। उनमें से एक की बात को टालने की शक्ति भी मुझ में नहीं थी। जब दोनों एक मत हों तो मैं क्या करूँ? पर जो लोग किसी सम्मति पर पहुँचने में देर लगाते हैं। वे उसे छोड़ते भी देर में हैं। मैं भी उन्हीं सुस्त आदमियों में रहा हूँ। मैंने लाला जी से निवेदन किया, मेरे लिए आपकी आज्ञा उतनी ही बड़ी है, जितनी बड़ी स्वामी जी की आज्ञा, परन्तु ऐसे मन्तव्य सम्बन्धी विषयों में मुझे स्वामी जी ने सदा स्वतन्त्र रखा है। इसी बल पर मैं अपने मन्तव्य के अनुसार चलने का साहस करता रहा हूँ। मुझे आशा है, आप भी मुझे इतना अधिकार देंगे ताकि मैं अपनी आत्मा के शब्द को अनसुना न करूँ। मेरा मन्तव्य है कि राजनीतिक चुनाव में कांग्रेस का समर्थन करना प्रत्येक भारतवासी का कर्त्तव्य है।

मैंने देखा कि मेरी बातें सुन कर लाला जी के चेहरे पर क्रोध का चिह्न नहीं दिखाई दिया, प्रत्युत उन्होंने हल्के से अभिमान मिश्रित संतोष के साथ स्वामी जी की ओर देखा। स्वामी जी ने मुस्करा कर कहा 'हाँ इन्द्र ठीक कहता है। मैंने इसे विचार और कार्य की पूरी स्वतन्त्रता दे रखी है।' लाला जी और पिता जी दोनों ही अत्यन्त भावुक थे। लाला जी ने भरे हुए गले से कहा—

इंद्र जो अधिकार तुम्हें स्वामी जी ने दे रखा है, उसे मैं कैसे छीन सकता हूँ। तुम अपने विचार के अनुसार कार्य करो, परन्तु याद रखो कि इस चुनाव में तुम्हें कामयाबी न होगी। हम दोनों लाला शिवनारायण के समर्थक हैं, मैंने प्रसन्नतापूर्वक कहा,'वह तो मैं भी समझता हूँ, परन्तु मैं प्रयत्न में कोई कसर नहीं छोड़ूगा, सफलता ईश्वराधीन है।'

चुनाव खूब जोर से लड़ा गया। परिणाम ने दोनों ओर से आशावाद को व्यर्थ कर दिया। चुनाव में न कांग्रेस के उम्मीदवार सफल हुए और न नैशनलिस्ट पार्टी के उम्मीदवार। सफल हो गए एक तीसरे व्यक्ति, जिसने हिन्दू हितों के नाम पर हिन्दू नेताओं को पता बतलाया था।

उस चुनाव के सिलसिले में मैं दिल्ली में भी घूमा और दिल्ली से बाहर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

गोरखपुर आदि में भी गया। प्रायः सभी जगह मुझे स्वतन्त्र डफली बजानी पड़ी। परन्तु किसी स्थान पर भी मैंने यह अनुभव नहीं किया कि मैं पिताजी के विशाल दायरे से बाहर जा सकता हूँ।

यह चुनाव कांड मेरे लिए बहुत दुःखदायी था, क्योंकि उसमें मुझे उनके विरुद्ध कार्य करना पड़ा जिन्हें मैं पूज्य मानता था। परन्तु साथ ही सन्तोषप्रद भी हुआ क्योंकि उसने मुझे पिता जी के हृदय की विशालता को पूरी तरह अनुभव करने का अवसर दिया।

चुनाव के प्रसंग में मैं जहां भी गया, वहां पिता जी और लाला जी के हस्ताक्षरों वाले पोस्टर मेरे सामने रख दिये जाते थे और पूछा जाता था कि आप स्वामी जी के विरोध में कांग्रेस का समर्थन करेंगे? मेरा एक ही उत्तर था—'मुझे स्वामी जी ने आत्मा के आदेश के अनुसार चलने की अनुमति दे दी है।'

———

३३. बलिदान

पिताजी निमोनिया के भयंकर आक्रमण से निकल चुके थे। अभी इलाज जारी था और निर्बलता बहुत अधिक थी, परन्तु रोग का सिर कट चुका था।

मैं नित्य नियम के अनुसार दोपहर बाद बलिदान-भवन गया। अर्जुन कार्यालय, जहां मैं रहता था, बलिदान-भवन से बहुत दूर नहीं था, अधिक से अधिक चार मिनट का पैदल रास्ता होगा। पिता जी की तबियत अच्छी थी। उस समय कुछ अन्य महानुभाव भी वहां बैठे थे। पिताजी को स्वास्थ्य लाभ करते देखकर सभी प्रसन्न थे। पिता जी ने सारी बीमारी का बड़ी धीरता से सामना किया, परन्तु एक बात इस बीमारी में उनकी जिह्वा पर रही। वे बार-बार कहते थे कि अब यह शरीर सेवा करने के योग्य नहीं रहा। अब तो एक ही इच्छा है कि अगले जन्म में ऐसा शरीर प्राप्त करूं कि जो धर्म की सेवा के काम आ सके। ऐसे ही भाव उस दिन भी पिताजी ने प्रकट किए। इस पर हम सब ने निवेदन किया कि अब तो कोई खतरे की बात नहीं है। डा० अन्सारी ने भी कह दिया है कि रोग जा चुका है, कुछ ही दिनों में आप सर्वथा स्वस्थ हो जायेंगे। पिताजी ने मुस्कराकर जो उत्तर दिया, उसका आशय यह था कि होगा तो वही जो भगवान चाहेंगे, मैं तो केवल अपनी इच्छा प्रकट कर रहा हूँ।

थोड़ी देर तक बातचीत करने के पश्चात् हम लोग उठ गए, क्योंकि पिताजी के नित्य कर्म से निवृत्त होने का समय हो गया था। केवल उनका सेवक धर्मसिंह उनके पास रहता था। उसने चारपाई के पास कमोड रख दिया, पिता जी स्वयं उठ शौचादि से निवृत्त हुए और फिर चारपाई पर लेट गये। हम लोग बलिदान-भवन के दूसरे हिस्से में थोड़ी देर बातचीत करके अपने-अपने स्थानों को चले गये।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मैं घर आकर चारपाई पर बैठा ही था कि बच्चा भागता हुआ आया और उसने घबराये हुए स्वर में कहा—दादा जी को किसी ने गोली मार दी। घर के सब लोगों ने अचम्भे और अविश्वास से उसकी बात को सुना, क्योंकि मैं उन्हें पिताजी के स्वास्थ्य की सन्तोषजनक उन्नति होने के समाचार सुना रहा था। यह समझ कर कि बच्चे ने बात समझने में भूल की है' मैंने उससे पूछा—'तूने यह किससे सुना' उसने उत्तर दिया—'आप पूछ लीजिये' सड़क पर जीवनलाल जी बहुत ही घबराई आवाज में मुझे पुकार रहे थे। मुझे देखकर वे बोले—स्वामी जी को किसी ने गोली मार दी।

मैंने पूछा—गोली मारने वाला पकड़ा गया या नहीं ?

जीवनलाल जी गोली की आवाज सुनकर सड़क पर ऐसी खबर देने के लिए भाग आये थे, उन्होंने उत्तर दिया,

'यह तो पता नहीं शायद भाग गया हो।'

समाचार सुनकर मेरे पाँव तले से जमीन निकल गयी। परन्तु समाचार के मानने और समझने में देर नहीं लगी, एसी आशंका तो कुछ दिनों से हो ही रही थी। इतने में घर के और लोग आगे छज्जे पर पहुँच गये और पूछने लगे कि क्या बात है मैंने कोई उत्तर नहीं दिया—और यह कहकर कि 'मैं स्वयं देखकर आता हूँ क्या बात है।' नंगे पाँव सीढ़ियों से उतर गया। पीछे, घर के अन्य लोग—मेरी पत्नी, और सभी चल पड़े।

मैं भागता हुआ भवन के नीचे पहुँचा तो देखा कि कुछ आदमी इकट्ठे हो गये हैं और दो चार ऊपर भी जा चुके हैं। मुझे देखकर सभी तरह-तरह के प्रश्न पूछने लगे, पर मैं किसी का भी उत्तर दिये बिना ही ऊपर चढ़ गया। वहाँ जाकर अन्दर घुसते ही मेरी पहली नजर पिताजी की चारपाई पर पड़ी, पिताजी की आँखें बन्द थीं, मानो सुखपूर्वक सोये हों। सामने भगवे कुर्ते पर रक्त दिखाई दे रहा था, जो असली घटना की सूचना दे रहा था, अन्यथा पिताजी को देखकर एक दम यह अनुमान नहीं लग सकता था कि वे सजीव नहीं हैं।

दूसरी नजर सेवक धर्मसिंह पर पड़ी। वह कमरे के मध्य में जाँघ को हाथ से दबाये पड़ा था। उसके चारों ओर खून फैला हुआ था, मैंने पूछा—'धर्मसिंह तुम्हारे भी गोली लगी है ?'

धर्मसिंह ने उत्तर दिया—'हाँ पंडित जी, मेरे भी गोली लगी है। पर आप मेरी चिन्ता न करो, स्वामी जी को कई गोलियाँ लगी हैं, उन्हें सम्भालिये।' मैं तब तक पलंग के पास पहुँच चुका था। मैंने पिताजी की कलाई और माथे पर हाथ रखा, तो उसे बिल्कुल ठण्डा पाया। उसी समय मेरी दृष्टि पलंग के पीछे के कमरे के कोने में जमीन पर औंधे मुँह लेटे हुए स्नातक धर्मपाल जी पर पड़ी। मैंने पूछा—

'धर्मपाल जी क्या आप के भी गोली लगी है ?'

उन्होंने उत्तर दिया—

'मैंने गोली मारने वाले को दबा रखा है।'

मैंने घबरा कर पूछा—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

'क्या सहायता के लिए आऊँ ?'

उनका उत्तर था—

'आप इसकी चिन्ता न करें इसे मैं नहीं छोड़ूँगा। आप स्वामी जी को संभालिये।'

उस परिस्थिति में मेरा दिमाग कैसे ठिकाने रहा, मुझे इसी बात पर आश्चर्य है, इस समय बहुत से और महानुभाव भी वहाँ पहुँच चुके थे। वे भी विचार में भाग ले रहे थे। पहला काम यह किया गया कि डा० अन्सारी को टेलीफोन द्वारा बुलाया गया और दूसरा काम यह हुआ कि कोतवाली में दुर्घटना की सूचना दी गई।

यह प्रबन्ध हो ही रहा था कि कमरे के दरवाजे पर हल्ला मच गया। मैं भाग कर दरवाजे पर गया तो देखता क्या हूँ कि हमारा स्वयंसेवक राजाराम हाथ में लम्बा चाकू लिये अन्दर घुसने की चेष्टा कर रहा है और उसे बा० धनीराम जी (मेरे बहनोई) दोनों हाथों से पकड़ कर रोक रहे हैं, कुछ लोग कह रहे थे, इसे अन्दर जाने दो, और कुछ लोग उसे शान्त कर रहे थे। पूछने पर राजाराम ने कहा—मैं उस पापी को मार कर छोड़ूँगा, मुझे मत रोको, नहीं तो एक की जगह कई खून हो जायेंगे। मैंने जाकर राजाराम का चाकू वाला हाथ पकड़ लिया। वह मुझे देखकर चिल्लाया—पंडित जी, आप भी मुझे रोक रहे हैं। हमारे जीते जी उसने स्वामी जी के गोली मार दी—हम उसे अभी मार कर छोड़ेंगे।'

मैंने उसे समझाया कि यदि तुम उसे अभी मार दोगे तो इसका कोई प्रमाण न रहेगा कि वह हत्यारा है और संसार पर सचाई प्रगट न होगी। यह समय शांत रहने का है, घबराने का नहीं। यह नहीं कि हमारे जोश के कारण पापी का पाप हमारे ही सिर लगा दिया जाय।

राजाराम खूब गठे हुए शरीर का, लम्बा चौड़ा नौजवान था। उसके चेहरे से बहादुरी टपकती थी। वह ट्राम्वे के दफ्तर में चौकीदारी करता था, परन्तु उसकी नौकरी जाति सेवा के काम में कभी बाधक नहीं होती थी, बिल्कुल निर्भय, सुन्दर डीलडौल के उस सच्चे नौजवान को देखकर हृदय में अभिमान पैदा होता था, कभी किसी बड़े से बड़े खतरे के काम की आज्ञा मिलने पर मैंने उसे क्षण भर के लिए भी सोचते या घबराते नहीं देखा, आज्ञा मिलते ही मैदान में कूद पड़ना—यह राजाराम का स्वभाव था। मैंने उस समय राजाराम की आँखों में रक्त बरसता देखा तो अन्य कोई उपाय न पाकर जोरदार स्वर से आज्ञा दी—

'राजाराम क्या कर रहे हो, क्या आज्ञा का उल्लंघन करोगे ? चले जाओ यहाँ से।'

राजाराम का हाथ ढीला हो गया, उसने एक बार खून भरी आँखों से उस कोठरी की ओर देखा, जहां धर्मपाल जी के दाहिनी शिकंजे में पड़ा हुआ हत्यारा फड़फड़ा रहा था। वह जिस वेग से ऊपर चढ़ा था, उसी वेग से धड़धड़ाता हुआ सीढ़ियों से उतर गया। सच्चा सिपाही आदेश का उल्लंघन न कर सका।

राजाराम वहाँ से तो चला गया, परन्तु उसका क्रोध शांत न हुआ, उसके पश्चात् दस मिनट के अन्दर ही अन्दर नये बाजार में तीन आदमी घायल हुए, जिन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में से एक जान से मर गया। इस हत्या के अपराध में जिन तीन नौजवानों पर मुकदमा महीनों तक चलता रहा—अन्त में सब अभियुक्त बरी कर दिये गये।

बेचारा राजाराम हवालात में बीमार हो गया था। बाहर आकर उसकी देह संभल न सकी—गिरती ही गयी, अन्त में बाँका जवान असमय में ही जेल में लगी हुई बीमारी का ग्रास बन गया।

इतने वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी जब कभी मैं राजाराम को याद करता हूँ यों मेरे सामने उसकी चढ़ी हुई मूँछों वाला बहादुर चेहरा जीवित रूप से आ जाता है।

डा० अन्सारी और पुलिस को साथ ही साथ टेलीफोन किया गया था, पर डाक्टर साहब पहले ही आ पहुँचे। डाक्टर साहब अकेले नहीं आये, डा० अब्दुरहमान को साथ लेते आये थे। इस अन्तिम बीमारी में पिता जी का इलाज डा० अन्सारी ही कर रहे थे, और जब कभी उन्हें दिल्ली से बाहर जाना पड़ता था तब वह अपना स्थानापन्न डा० अब्दुरहमान को बना जाते थे।

जब डाक्टर साहब को बुलावा पहुंचा, तब उन्होंने यही समझा कि शायद निमोनिया ने अपना उग्रतम रूप धारण कर लिया है। जिससे घबरा कर डाक्टर को बुलाया गया है। १९१९ से पिताजी का डाक्टर अन्सारी से परिचय हुआ था। तब से अन्तिम समय तक पिताजी को सिवाय डा० अन्सारी के और किसी चिकित्सक का इलाज अनुकूल नहीं पड़ता था। पिताजी की अवस्था इतनी बढ़ गई थी कि जब निमोनिया के दिनों में डाक्टर जी को चार दिन के लिए भोपाल जाना पड़ा, तो पिताजी ने दूसरे डाक्टर से दवा ही नहीं ली। चार दिन तक इलाज कवल सेक-प्लास्टर और परहेज तक ही परिमित रहा। जब डाक्टर साहब भोपाल से वापिस आये तब दवा ली। इस अटल श्रद्धा का श्रेय श्रद्धालु को दें या श्रद्धा के पात्र को, इस प्रश्न का उत्तर यह है कि वह श्रेय दोनों में समान रूप से बँटना चाहिए। पिताजी जिसमें श्रद्धा रखते थे, अटल रखते थे और डा० अन्सारी से जिसने एक बार इलाज करवा लिया, उसे दूसरा दरवाजा सुहाता ही नहीं था।

हाँ, तो जब डाक्टर अन्सारी बलिदान-भवन में पहुँचे तो आश्चर्य और दुःख से स्तब्ध रह दरवाजे में घुसते ही सारे दृश्य को देखकर परिस्थिति को समझने की चेष्टा करते रहे—कुछ देर तक जहाँ के तहाँ के तहाँ खड़े रह गये—मानो पाँव भूमि में गड़ गये हों। फिर आगे बढ़कर पिताजी की नब्ज देखी—माथे और पेट को छुआ—आँखों के पर्दे पलट कर देखे और जो कुछ आवश्यक समझा देखा भाला, और अन्त में आँसू भरी आँखों से मेरी ओर देखकर कहा—

भाई, अब तो कुछ बाकी नहीं रहा, गोली सीधी छाती में लगी है। मृत्यु फौरन ही हो गयी प्रतीत होती है, फिर डाक्टर जी धर्मसिंह की ओर मुड़े, और उसके घाव पर पट्टी बाँधने लगे।

इतने में पुलिस आ पहुँची। एक इन्सपैक्टर, दो सब इन्सपैक्टर और बहुत से सिपाहा बड़ी टट फट के साथ मैदान में उतरे, मानो जंग के लिए तैयार हो कर आये हों। अनहोनी हो जाने पर शान दिखाना यह हिन्दुस्तानी पुलिस की विशेषता है।

उस समय तक—और वह समय आध घंटे से कम न होगा—धर्मपाल जी खूनी पिस्तौल को दबाये पड़े रहे। खूनी के जिस हाथ में भरा हुआ पिस्तौल था, उसे धर्मपाल जी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ने एक हाथ से दबा रखा था, दूसरे हाथ से उसके सिर को फर्श में खूंटे की तरह गाड़ रखा था, और उसकी पीठ पर अपनी छाती का पूरा जोर देकर लेटे हुए थे। कई लोगों ने बीच-बीच में सहायता के लिए हाथ बढ़ाया। उन सबको धर्मपाल जी ने दूर से हटा दिया। यह बिल्कुल ठीक था कि यदि हत्यारे पर धर्मपाल जी का शिकंजा कुछ भी ढीला पड़ जाता तो वह न जाने कितना अनर्थ करके भाग निकलता।

सर्व साधारण को धर्मपाल जी के उस धैर्य और बल को देखकर बहुत आश्चय हुआ था—पर जो लोग उन्हें बचपन से जानते थे उन्हें कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ, विद्यार्थी अवस्था में ही साथियों पर उनकी शारीरिक दृढ़ता का आतंक था। उसके बड़े दुर्भाग्य उदित हुए समझो जो फुटबाल के मैदान में हाफ-बैक धर्मपाल के सामने पड़ जाय। यदि हाफ-बैक की लात सामने के खिलाड़ी की लात पर जा लगी तो मेजर एक्सीडेंट (भयानक दुर्घटना) का हो जाना अनिवार्य था। या तो हड्डी टूट जाती थी, अथवा टाँग पर गैंद जैसा गोला सूज आता था। यह बिल्कुल आकस्मिक था, कि अब्दुल रशीद का वास्ता धर्मपाल जी जैसे ठोस आदमी से पड़ा—परन्तु विधाता की इच्छा प्रायः ऐसी घटनाओं से पूरी होती हैं जिन्हें मनुष्य आकस्मिक कहता है। यह विधाता का विधान था कि पिताजी के बलिदान का कानूनी सबूत लाल हाथों के साथ ही गिरफ्तार हो। यह काम धर्मपाल जी जैसे व्यक्ति के हाथों से ही हो सकता था।

सच्चे और पक्के साथी मैंने बहुत देखे हैं, परन्तु धर्मपाल की अपेक्षा अधिक ठोस बात निभाने वाला संगी अब तक मेरे अनुभव में नहीं आया, वह पिताजी के शिष्य भी थे, और निजी मन्त्री भी—परन्तु वह सारा आध्यात्मिक सम्बन्ध था, घर से खर्च मँगाकर निर्वाह करते थे और धर्म-भाव से पिताजी की सेवा करते थे। उन्हें उस घटना से जो यश प्राप्त हुआ, वह वस्तुतः उसके अधिकारी हैं।

———

३४. बलिदान

पुलिस अफसरों ने कमरे में पहुँच कर काफी चुस्ती से काम किया। पिता जी की मृत्यु का प्रामाणिक समाचार तो उन्हें वहाँ पहुँचते ही डा० अन्सारी से मिल गया था, एक सब इन्सपैक्टर धर्मसिंह की ओर झुका और दूसरा धमपाल जी की ओर, उसने तनिक ध्यान से देखकर स्थिति को समझ लिया और धर्मपाल जी से कहा कि जब तक मैं न कहूँ, तब तक शिकंजे को ढीला न कीजियेगा। तब उसने अपना रिवाल्वर हत्यारे के माथे पर रखकर कहा—'खबरदार, अगर हिला तो गोली छोड़ दूँगा।' फिर फुलबूट वाला अपना दाँया पाँव उसकी कलाई पर बड़े जोर से मारकर दबा दिया, जब देख लिया कि कलाई बिल्कुल ढीली हो गई तो बाँयें हाथ से उस का पिस्तौल पकड़ कर धर्मपाल जी से छोड़ देने को कहा, हाथ छोड़ देने पर हत्यारे का पिस्तौल सब इन्सपैक्टर के हाथ में आ गया। तब सब इन्सपैक्टर ने धर्मपाल जी को हत्यारे को छोड़कर उठ जाने के लिए कहा।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वहाँ जितने व्यक्ति थे, सब उस दिन-दहाड़े हत्या करने वाले व्यक्ति को देखने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे, दर्शकों ने अपनी भावना के अनुसार उसका कल्पनाचित्र मन में बना रखा था। पीछे से इस विषय में प्रायः सर्व सम्मति पाई गई कि जब हत्यारा उठकर खड़ा हुआ, तब उसकी सूरत शक्ल ने दर्शक लोगों के काल्पनिक चित्रों को सर्वथा झूठा सिद्ध कर दिया। वह किसी हट्टे-कट्टे भयानक रूप वाले खूनी को देखने की आशा रखते थे, परन्तु जब देखा तो एक ऐसा अधेड़ सामने खड़ा पाया जिसका शरीर मध्यम था। दाढ़ी-मूंछ के बाल पक रहे थे, देखने में अदालत का मुहर्रिर मालूम पड़ता था। पीछे से मालूम हुआ कि उसका नाम अब्दुल-रशीद था और वह किताबत का काम करता था।

अब्दुल रशीद ने उठकर चारों ओर देखा तो उसकी नजर डा० अन्सारी पर पड़ी, कह नहीं सकते कि उसकी वह अदा स्वाभाविक थी या कृत्रिम। वह डाक्टर जी को देखकर मुस्कराया और काफी ऊँचे स्वर से उसने कहा, डाक्टर साहिब, आदाब-अर्ज। उस आदाबअर्ज में किसी पहली मुलाकात की झलक आती थी। बाद में तहकीकात करने पर मालूम हुआ कि अब्दुल रशीद ने अपने खूनी संकल्प की सूचना बहुत से प्रतिष्ठित मुसलमानों को दे रखी थी। उनमें से कुछ ने उन्हें रोका और कुछ ने प्रोत्साहित किया। डाक्टर साहब उनमें से थे जिन्होंने उसे रोका था। वह कई महीनों से विधिपूर्वक नृशंसता की तैयारी कर रहा था। इस कार्य के समर्थन में उसने उल्माओं का फतवा तक ले लिया था।

इतनी हल्की-सी मुस्कराहट के पश्चात् अब्दुल रशीद के चेहरे पर एक गम्भीर मुर्दनी छा गई। वह उसके चेहरे का स्थायी भाव था, जो तब तक कायम रहा, जब तक वह जेल में फांसी की रस्सी से झूल कर कर्मफल पाने के लिये बड़े दरबार में नहीं चला गया।

उस दिन बलिदान-भवन में जो अमर कहानी रुधिराक्षरों से लिखी गई, उसे यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं। वह बलिदान के विस्तृत इतिहास का एक परिच्छेद है और यह मेरी निजी स्मृतियों का संकलन है। गोलीकांड के पश्चात् बलिदान-भवन में मैंने जो कुछ देखा मैं वह सुना रहा हूँ।

डा० अन्सारी अपने लिये अन्य कोई कार्य न देखकर और उस स्थान के वातावरण को अत्यधिक गर्म होता अनुभव कर के चले गये। पुलिस की एक टुकड़ी अब्दुल रशीद को हथकड़ी, बेड़ी डाल और लारी में बिठाकर कोतवाली ले गई और दूसरी टुकड़ी बलिदान-भवन के पहरे पर तैनात कर दी गई। इस समय वहाँ पुलिस के कई ऊँचे अफसर पहुँच चुके थे और बयान लिये जाने लगे थे।

यह स्वाभाविक ही था कि ऐसी भयंकर साम्प्रदायिक दुर्घटना से उस स्थान पर और धीरे-धीरे सारे शहर में साम्प्रदायिक विद्वेष की अग्नि प्रचण्ड हो उठती। वह घटना साधारण नहीं थी। ३० करोड़ व्यक्तियों के एक सर्वसम्मानित धर्माचार्य की, दूसरे मत के अनुयायी द्वारा केवल धार्मिक मतभेद के कारण हत्या इतिहास में प्रतिदिन नहीं होती। वह कभी-कभी होती है और जब कभी होती है, तब इतिहास में नये युग का आरम्भ हो जाता है। इस दुर्घटना ने भी भारत के इतिहास में एक नया युग आरम्भ कर दिया था। हत्या के पश्चात् थोड़े ही क्षणों में बलिदान-भवन से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

फैलकर एक आधे घन्टे के अन्दर-अन्दर दिल्ली शहर में, और शायद दो या तीन घन्टों में सारे देश में उस आये हुए युग की सरसराहट सुनाई देने लगी थी। संसार में कभी कोई वस्तु सर्वथा निर्गुण या निर्दोष नहीं होती। जो नया युग एक मजहबी पागल की घिनौनी चेष्टा के कारण पैदा हो वह निर्दोष होता भी कैसे ? उस नये युग के भी दो पहलू थे—एक बुरा और एक अच्छा। बुरा पहलू यह था कि हिन्दू-जाति के एक बड़े भाग में एक अद्भुत जागृति ने जन्म लिया। पहला फल अब्दुल रशीद की दुष्टता का था। अच्छी क्रिया की अच्छी और बुरी क्रिया की बुरी प्रतिक्रिया स्वाभाविक था। इसलिये केवल विवेचनात्मक दृष्टि से देखें तो उस सन्ध्या समय की दुर्घटना से हिन्दू जाति पर जो अच्छे और बुरे प्रभाव पड़े वह सर्वथा स्वाभाविक थे। उन पर प्रसन्न होना या दुखी होना अपनी तबियत का परिणाम हो सकता है, परन्तु उनकी स्वाभाविकता में शायद ही कोई मतभेद हो।

संस्मरण के इस अध्याय को समाप्त करने से पूर्व मैं दो-तीन आपबीती चीजें पाठकों को और सुना देना चाहता हूँ। जिस समय इधर अब्दुल रशीद अपनी मूर्खता भरी चेष्टा से इस्लाम के माथे पर कलंक का टीका लगा रहा था, उधर गोहाटी में अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा के अधिवेशन की तैयारियाँ हो रही थीं। स्वागताध्यक्ष महोदय ने पिताजी को एक निजी पत्र लिखकर विशेष आग्रह से महासभा के अधिवेशन में निमन्त्रित किया था। उस पत्र का उत्तर पिताजी की आज्ञा से मैंने ही दिया था। उस में अस्वस्थता के कारण न जा सकने पर दुःख प्रगट करते हुए अधिवेशन की सफलता के लिये ईश्वर से प्रार्थना की गई थी। पत्र पहुँचने पर स्वागताध्यक्ष ने एक तार द्वारा सन्देश की प्रार्थना की। वह सन्देश का तार भी पिताजी के आदेश के अनुसार मैंने ही लिखा था। मैं केवल स्मृति से उस तार को उद्धृत कर रहा हूँ। इसमें किसी शब्द का भेद हो सकता है, अभिप्राय का नहीं, तार यह था—

On Hindu-Muslim unity depends future wellbeing of India.

भारत का भावी सुख हिन्दू-मुस्लिम एकता पर आश्रित है।

यह सन्देश निमोनिया की उग्र दशा में प्रभात की शान्त वेला में बीमार की चारपाई पर से लिखवाया गया था। इस कारण मान लेना चाहिये कि यह सन्देश देने वाले की अन्तरात्मा का सन्देश था। स्नातक होने के पश्चात् लगभग १६ वर्ष तक पिताजी के निरन्तर समीप रहने पर मुझे जो अनुभव हुआ उसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि उपर्युक्त सन्देश पिताजी की अन्तरात्मा का संदेश था। वे हिन्दू-मुस्लिम एकता के कट्टर पक्षपाती थे, परन्तु साथ ही उनका यह भी विश्वास था कि वह एकता तब तक जन्म नहीं ले सकती, जब तक हिन्दू जाति के निर्बल हिन्दू सबल मुसलमानों के मित्र नहीं बन सकेंगे। इस कारण वे हिन्दुओं को मुसलमानों के समान मित्र बनाने के पक्षपाती थे। उनके हिन्दू-संगठन का अभिप्राय मुस्लिम विरोधी नहीं था—अपितु जाति के आंतरिक दोषों को दूर करना था।

मनुष्य के लिए सबसे कठिन काम अपनी भावनाओं का ठीक विश्लेषण करना है। एक प्रसिद्ध लेखक ने लिखा है कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए दूसरे व्यक्ति का मन एक बन्द कमरा है जिसके अन्दर की असली दशा का वह केवल अनुमान लगा सकता है। अनुभव बतलाता है कि मनुष्य कभी-कभी अपने अन्दर की असली दशा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का अनुमान भी नहीं लगा सकता, वह उसके लिए केवल बन्द कमरा ही नहीं, अभेद्य दुर्ग बन जाता है जिसके अन्दर का अनुमान लगाना भी उसके लिए असम्भव हो जाता है। आत्म-विश्लेषण अन्य रासायनिक तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषणों की अपेक्षा कठिन कार्य है।

यही कारण है कि मुझ से जब एक मित्र ने पूछा, जब स्वामी जी का बलिदान हुआ तब आप को कैसे अनुभव हुआ ? मैं बहुत देर तक चुप रहकर सोचता रहा कि क्या उत्तर दूँ, पाठक मेरा यह इकबाली बयान पढ़कर आश्चर्यचकित होंगे, वह सोचेंगे कि इस प्रश्न का उत्तर तो निश्चित ही है और वह यह कि 'मुझे अपार दुःख हुआ।' यह तो मैं कैसे कहूँ कि मुझे अपार दुःख नहीं हुआ, परन्तु जब आत्मविश्लेषण करके देखा तो केवल इतना उत्तर देने को हिम्मत नहीं पड़ी—क्योंकि उत्तर अधूरा होता, अपने अन्दर आँखें डालकर भी ठीक-ठीक नहीं देख सका कि उस असाधारण घटना ने मेरे हृदय और मस्तिष्क पर क्या-क्या और किस क्रम से प्रतिक्रियाएँ पैदा कीं।

समाचार सुनने का पहला असर मुझ पर यह हुआ कि ठीक परिस्थिति जानने की इच्छा पैदा हुई। यों दुर्घटना का समाचार मुझे बिल्कुल आकस्मिक या अनहोना प्रतीत नहीं हुआ। मानों किसी इस प्रकार के समाचार की तो प्रतीक्षा ही थी। इस के दो कारण थे, पहला कारण यह था कि लगभग दो वर्ष से पिताजी को मुसलमान समाचार पत्रों में छपी हुई और डाक द्वारा बिना नाम के खुली हुई धमकियाँ दी जा रहीं थी। शुद्धि-सभा का प्रधान पद स्वीकार कर लेने के कारण धर्मान्ध मुसलमानों में पिताजी के प्रति क्रोध की भावना उत्पन्न की जा रही थी जिसका प्रकाशन धमकियों के रूप में होता रहता था। इस असन्तोषाग्नि पर उन दिनों चलाये गए प्रसिद्ध शान्तिदेवी केस ने घी का काम दिया। केस चोटी से एड़ी तक बनावटी था। असगरी बेगम (शान्तिदेवी) को दिल्ली लाने, वनिता आश्रम में प्रविष्ट कराने या धर्म-परिवर्तन कराने में पिताजी या अन्य किसी हिन्दू या आर्य कार्यकर्त्ता का हाथ नहीं था, परन्तु दिल्ली के कुछ मुसलमानों ने शान्तिदेवी के पिता और मुसलमान पति को प्रेरणा देकर बिल्कुल झूठा मुकदमा दायर करवा दिया जिसकी दो-तीन पेशियों में ही असलियत प्रकट हो गई और हम लोगों की निर्दोषता का अदालत ने फैसला कर दिया, परन्तु अदूरदर्शी मदान्ध लोगों ने जो विष बिखेरा था वह अपना काम कर गया। नासमझ मुसलमानों का पिताजी के प्रति विद्वेष भाव चरम सीमा तक पहुँच गया।

परिणाम यह हुआ कि वायुमण्डल सन्देह और आशंका से भर गया। पिताजी के मन में खतरे या खतरे की धमकी से सदा उल्टी ही प्रतिक्रिया उत्पन्न होती थी। वे खतरे से डरने की जगह, खतरे का सामना करने और उस पर हावी होने के लिये तत्पर हो जाते थे। हम लोगों की चिन्ता या सावधानता उन पर कोई प्रभाव नहीं डालती थी। कभी-कभी जब उन्हें सन्देह हो जाता था कि लोगों ने उनकी संरक्षा के लिये पहरा लगाया है तो रात के समय चुपचाप अकेले बाजार में घूमने के लिये निकल जाते थे और लाल कुआँ, सदर बाजार आदि प्रमुख मुसलमान हिस्सों का चक्कर काट जाते थे। इन सब कारणों से हम लोग सदा शंकित रहते थे। कब क्या अनहोनी हो जाय, इसकी मासों प्रतीक्षा करते रहते थे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सो जब दुर्घटना का पहला समाचार मिला तो ऐसा अनुभव हुआ जैसे जो होनी थी, वह होकर रही।

एक और भी बात थी, जिसने हमारे हृदयों को इस दुर्घटना के लिए तैयार सा कर दिया था। अपने सदा के स्वभाव के सर्वथा विपरीत, लगभग एक मास से पिताजी शरीरत्याग की चर्चा किया करते थे। यों स्वभाव से वह घोर आशावादी थे—जैसा कि एक कट्टर आस्तिक को होना चाहिए। परन्तु बलिदान से लगभग एक घन्टा पूर्व ही उनकी बातचीत का रुख बदल गया था। मैंने उनकी बड़ी-बड़ी बीमारियाँ देखी थीं। वे कभी हारी हुई बात नहीं करते थे, हारी हुई बात करने वाले को डाडस देकर कहा करते थे, तुम चिन्ता क्यों करते हो? अभी धर्म की सेवा के लिए मेरे शरीर की आवश्यकता है, उसकी रक्षा परमात्मा करेगा। १९२६ के अन्त में जब उन पर निमोनिया का आक्रमण हुआ, उससे पूर्व ही उनकी भाषा में परिवर्तन आ गया था। नवम्बर के अन्त में वह लाहौर गये और गुरुदत्त-भवन में व्याख्यान दिया। सुनने वाले बतलाते हैं कि उस व्याख्यान में उन्होंने यह भाव स्पष्ट रूप से व्यक्त किया था कि सम्भवतः लाहौर में उनका यह व्याख्यान अन्तिम है, ऐसा ही भाव उन्होंने दो-तीन अन्य व्याख्यानों में भी प्रकट किया था।

रोगी होने पर तो वह प्रायः नित्य ही ऐसी बात करते थे, यों भाषा में कुछ भेद आ गया था।

बलिदान से दो दिन पूर्व व्याख्यान-वाचस्पति पं० दीनदयालु जी शास्त्री आपका स्वास्थ्य समाचार पूछने आये। कुशल समाचार पूछने पर आपने कहा डाक्टर कहते हैं अच्छा है. शास्त्री जी ने मुस्करा कर पूछा कि आपकी क्या सम्मति है? पिताजी ने उत्तर दिया—'मेरी तो अब जीने की इच्छा नहीं है।' इस पर शास्त्री जी ने कहा—

'स्वामी जी, मुझसे मालवीय जी एक डेढ़ वर्ष बड़े हैं और आप उनसे एक वर्ष बड़े हैं। अभी हम लोगों को बहुत-सा काम करना है। आप क्यों इतनी जल्दी मोक्ष की तैयारी करने लगे। अब तो राजी हो जाओगे।' पिताजी ने उत्तर दिया—

'पण्डित जी, इस समय मुझे मोक्ष की इच्छा नहीं, मैं तो चोला बदल कर दूसरा शरीर धारण करना चाहता हूं। अब यह शरीर सेवा के योग्य नहीं रहा, इच्छा है फिर भारतवर्ष में ही पैदा होकर फिर इसकी सेवा करूँ।'

२२ दिसम्बर के प्रातःकाल ५ बजे के लगभग पिताजी का सेवक धर्मसिंह मुझे घर बुलाने आया। उसी समय डा० सुखदेव जी को और लाला देशबन्धु जी को भी बुलाया गया था। हम सब के एकत्र हो जाने पर पिताजी ने कहा—'भाई, मेरी वसीयत लिखा लो। इस शरीर का कुछ भरोसा नहीं। कब क्या हो जाय, यह भगवान् के सिवाय किसी को पता नहीं।'

उस दिन पिताजी की तबीयत काफी अच्छी समझी जा रही थी। डा० अन्सारी ने पहले दिन कहा था कि अब कोई खतरा नहीं रहा। डा० सुखदेव जी ने निवेदन किया कि अब चिन्ता या घबराहट की कोई बात नहीं। आप शीघ्र ही बिल्कुल ठीक हो जायेंगे, हम लोग भी इस निवेदन में शामिल हो गये और यह

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समझकर कि वसीयत लिखने का पिताजी के दिल पर बुरा असर न हो, लिखने में आनाकानी करने लगे। पिताजी इस बात से कुछ खिन्न से हो गए और कहा—'अच्छा भाई, तुम्हारी मर्जी, पर मैं जो कुछ चाहता हूँ वह सुन तो लो। जब चाहो तब लिखा लेना है। हम लोग सुनने लगे। उस समय हम लोग चर्म के चक्षुओं से देखते थे और पिताजी ज्ञान के चक्षुओं से। अन्यथा हम से ऐसी हिमाकत भरी भूल न होती कि हम उनके शब्दों को लेखबद्ध न करते। हमसे इतनी बड़ी भूल हुई कि उस का मार्जन नहीं हो सकता। यह समझ कर कि रोगी को यह अनुभव न होने देना चाहिये कि उनकी दशा चिन्ताजनक है हमने उस समय की बातों को पूरी तरह हृदयंगम नहीं किया। पीछे से स्मृति को ताजा करने पर निम्नलिखित बातें ध्यान मे आईं—

आपने अपनी निम्नलिखित इच्छाएँ प्रकट की थीं—

१. मैं आर्यसमाज का इतिहास लिखना चाहता था। लिख नहीं सका, इन्द्र उसे लिखकर पूरा कर दे।

२. 'तेज' और 'अर्जुन' पत्र मेरी भावना के अनुसार चलते रहें।

३. गुरुकुल की रक्षा की जाय।

२२ दिसम्बर को बलिदान से कुछ ही समय पहले शुद्धि-सभा के प्रधान सर राजा रामपालसिंह के स्वास्थ्य सम्बन्धी तार के उत्तर में पिताजी ने जो तार दिलवाया था, उसमें लिखा था कि अब तो यही इच्छा है कि दूसरा शरीर धारण कर इस जीवन के अधूरे काम को पूरा करूँ।

यही कारण था कि जब मुझे जीवनलाल जी ने स्वामी जी पर गोली चलने का समाचार दिया तब वह आकस्मिक नहीं प्रतीत हुआ। सुनकर ऐसा अनुभव हुआ कि यह तो होने वाला ही था—पर हुआ कैसे ? अभी तो हम लोग उठकर आये हैं, इतने में क्या हो गया ?

जाकर देखा तो किंकर्त्तव्यता सामने आ गई। ध्यान उस ओर चला गया। शहर में बलिदान का समाचार हवा की तरह फैल गया और श्रद्धानन्द बाजार में भीड़ इकट्ठी होने लगी। हरेक के दिल में दुःख था, और आँखों में जोश। जिसे देखता, वह इतना प्रभावित दिखाई देता कि जितना कोई सम्बन्धी भी नहीं हो सकता, मैं उस समय अपने को विशेष रूप से दुःखी कैसे समझ लेता। मैं उनका पुत्र था, पर अन्य लोग उनकी स्मृति पर मुझसे बढ़ कर दावा कर रहे थे। अनुभव होता था कि सारी दुनिया मेरे साथ समवेदना प्रकट करना चाह रही है—और मेरी अपेक्षा भी मुझ से अधिक वेदना प्रकट करना चाहती है। इस कारण मैं संवेदना का पूरा अनुभव नहीं कर सका और न उसे प्रकट ही कर सका।

इस सहानुभूति की भावना के साथ एक और चीज भी मिल गई। स्वभावतः मुझ अनुभव हुआ कि यह बड़ा भारी बलिदान था। जैसी कहानियाँ और घटनाएँ इतिहास में पढ़ते आये थे, यह तो वैसा ही हो गई। मेरे पिताजी शहीद हो गये, वे अमर पदवी को प्राप्त हो गये, इस विचार ने मेरे दिल को भर दिया। इसे मनोविज्ञान के पंडित किस दृष्टि से देखेंगे, शायद वे मेरी भावना को क्षुद्र ही समझेंगे, यह सम्भावना होते हुए भी यह स्वीकार कर लेने में मुझे संकोच नहीं कि इस विचार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ने मेरे हृदय में अभिमान मिश्रित संतोष की बाढ़ सी ला दी। परिणाम यह हुआ कि जब तक वह दिल्ली के इतिहास में स्मरणीय अर्थी का जलूस निगमबोध घाट पर पहुँच कर, दाहक्रिया करके वापिस नहीं आ गया तब तक मैं बिल्कुल स्थिर रहा। शायद मुझसे मिलने वाले मेरा उस स्थिरता से आश्चर्यित होते होंगे। या तो उसे वे मेरी दृढ़ता का प्रमाण मानते होंगे अथवा हृदयहीनता का। वस्तुतः दोनों ही बातें नहीं थीं। वह स्थिरता उन परिस्थितियों का परिणाम थी, जिनका मैंने वर्णन किया है।

मैंने स्वयं इस बात को तब अनुभव किया, जब यमुना के तट से लौटकर और सहानुभूति प्रकट करने वाले मित्रों से अवकाश पाकर मैं अकेला अपने लिखने के कमरे में पहुँचा। कमरे में मेरी बैठने की कुर्सी के ऊपर पिताजी का बड़ा चित्र था (अब वह मेरी कुर्सी के सामने रखा हुआ है) और मैं था। उस समय एक-दम मैंने अनुभव किया कि मैं अकेला रह गया। मेरे बड़े भाई पहले ही विलायत जाकर लापता हो चुके थे, पिताजी चले गये—और अब इस तूफानी दुनिया में—आकाश और पृथ्वी के बीच में—मैं अकेला लटकता रह गया, मन में यह भाव आते ही मेरा वह कृत्रिम धर्म और स्थिर भाव जाता रहा और आँसू मानों बाँध को तोड़ कर बह निकले। मैं बहुत देर तक और आवाज के साथ रोया—यह मुझे भली प्रकार याद है।

●

वे शहीद हो गए,
पर हमने क्या किया ?
श्रद्धांजलि शब्दों में देने से क्या होगा ?
कौन चलेगा उनकी राह पर,
कौन करेगा धर्म प्रचार,
श्रद्धा की गंगा कौन बहाएगा ?
उत्तर दो ···उत्तर दो·····

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भारी संख्यामें मंगाकर प्रचार करें

१. **सामवेद भाष्य**

पं० विश्वनाथ विद्यामार्तण्ड का अनुपम आध्यात्मिक भाष्य।

सुनहरी जिल्द २५)

२. **वैदिक-गीता भाष्य** २०)

स्व० पं० आर्यमुनि कृत यह गीता भाष्य आज तक के सभी गीता भाष्यों में सर्वश्रेष्ठ है १५)

३. **वेदांजलि**

३६५ मंत्रों का भाष्य, प्रतिदिन के स्वाध्याय के लिए अनुपम। सजिल्द मूल्य १५)

४. **अपने प्रभु से-प्रार्थना**

आर्याभिविनय के प्रथम भाग की विस्तृत व्याख्या। श्री ज्ञानी पिन्डीदास जी के परिश्रम व स्वाध्याय का परिणाम। सजिल्द मूल्य १०)

५. **श्रीमद्दयानन्द प्रकाश : स्वामी जी का भक्तिपूर्ण जीवन**

स्वामी सत्यानन्द जी की लेखनी का प्रसाद जिसे पढ़कर आप भाव विभोर हो जाएंगे। मूल्य ६) सजिल्द ८)

६. **वेदामृत**

वेद मंत्रों का अर्थ सहित संग्रह। स्वामी वेदानन्द जी महाराज व पं० श्रीपाद दामोदर जी सातवलेकर द्वारा लिखित वेद मंत्रों का सारगर्भित अनुपम भाष्य विषयवार। मू० सजिल्द ८)

७. **अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र**

स्वामी ब्रह्ममुनि जी का खोजपूर्ण अतुलनीय ग्रन्थ। सजिल्द १०)

८. **अथर्ववेदीय मंत्र विद्या**

स्वामी ब्रह्ममुनि जी की अथर्ववेद में खोजों का अनुपम ग्रंथ। सजिल्द मूल्य ६)

९. **वेदों का यथार्थ स्वरूप**

वेद क्या हैं और क्या है उनका सत्य रूप : यह इस पुस्तक में पं० धर्मदेवजी विद्यामार्तण्ड ने गागर में सागर के रूप में भर दिया है। सजिल्द मूल्य १०)

१० **संक्षिप्त महाभारत**

महाभारत का सार संक्षेप में उपस्थित है इस ग्रन्थ में। मूल्य सजिल्द १०)

रेलवे स्टेशन लिखें। १/८ धन अग्रिम भेजें।

प्रबन्धक

जन-ज्ञान प्रकाशन

वेद मन्दिर, हरध्यानसिंह मार्ग, नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सुन्दर फरनीचर का प्रगतिशील नाम

डिलाईट

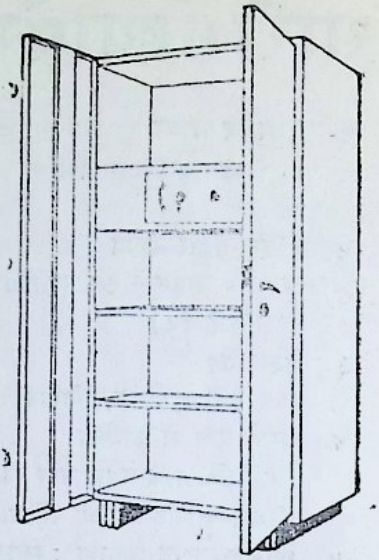

वर्षा उपवन व और कार्यकुशलता के कारण आज डिलाईट पक्की अलमारियां और फर्नीचर सारे भारत में प्रसिद्ध हैं क्योंकि यह देखने में सुन्दर, मजबूत, टिकाऊ और पक्के रंगों में उपलब्ध हैं। दुकान हो या घर, विवाह हो या कोई शुभ अवसर, यह सबका शोभा बढ़ाता है।

आप भी आज डिलाईट फरनीचर खरीद कर अपने घर, आफिस व दुकान की शोभा बढ़ावें और आनन्द पावें।

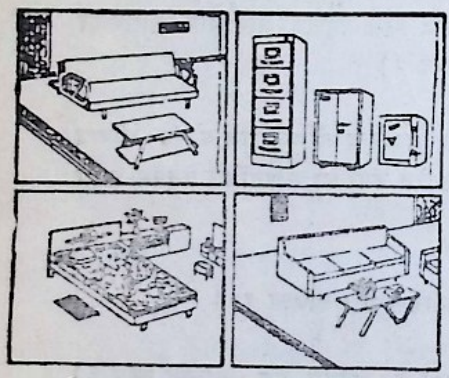

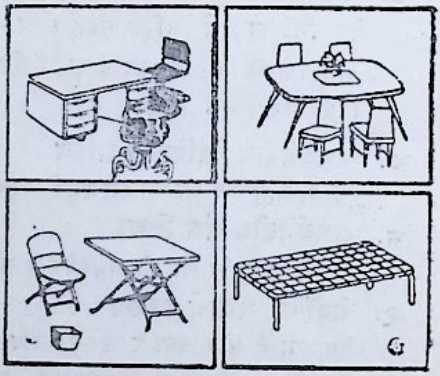

डिलाईट सेफ वर्क्स

कुतुब रोड, दिल्ली-६. फोन 511380

विक्रेता

१ काटेज स्टोर, २० विनय नगर मार्कीट, नई दिल्ली।
२. काश्मीर क्राकरी हाऊस, लक्कड़ बाजार, लुधियाना।
३. मित्तल ब्रादर्स, सिरकी बाजार, भटिण्डा। ४. निहालचन्द गोपालदास, अबोहर।
५. महेन्द्रा ब्रादर्स, कोर्ट रोड, मोगा।
६. जैम सेल्स कार्पोरेशन, सेक्टर ७-सी दु० नं० ३० मध्य मार्ग, चण्डीगढ़।
७. हरयाणा आयरन एण्ड स्टील इण्डस्ट्रीज, बाजार हिसारिया, सिरसा।
८. लीला इलैक्ट्रिक कं०, ७० कोतवाली रोड, श्री गंगानगर (राज०)।
९. राणा इण्डस्ट्रीज, लाडपुरा बाजार, कोटा (राज०)
१०. आदर्श इलैक्ट्रिक एण्ड जनरल सप्लायर्ज, नैकाओली, नीमच (म० प्र०)।
११. ओवरसीज ट्रेड एजेन्सीज, केसरगंज, अजमेर।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार की
औषधियां प्रयोग करें

गुरुकुल कासारि

खाँसी की अपूर्व गुणकारी औषधि

उपयोग किसी भी कारण से हुई खाँसी, नजला, जुकाम आदि में लाभदायक है।
सेवन विधि दिन में तीन बार छोटी चम्मच लेकर उंगली से चाटें।

आँखों के अनेक रोगों के लिए

भीमसेनी सुरमा

. . . .

च्यवनप्राश

उत्तम स्वादिष्ट रसायन

शरीर को बलिष्ठ और कान्तिमय बनाता है।

**शारीरिक क्षीणता एवं फेंफड़ों के लिए प्रसिद्ध
आयुर्वेद रसायन**

पो० गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी (सहारनपुर)

**शाखा कार्यालय—६३ गली राजा केदारनाथ
चाबड़ी बाजार, दिल्ली-११०००६ फोन नं० २६१४३८**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

क्या आप
अपने
परिवार
में
प्रभु की
अमर
वाणी
वेद
नहीं
लाएंगे
?

अधिक से अधिक सत्यार्थ-प्रकाश बाँटें

मूल्य : २००) सैकड़ा । २५०) सैकड़ा ।
३००) सैकड़ा । ४५०) सैकड़ा ।

दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली-५

मुद्रक : प्रकाशक : संपादक पंडिता राकेशरानी द्वारा भाटिया प्रेस दिल्ली में छपा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भूमंडल पर लहराओ तुम प्यारा झंडा ओ३म् का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जन-ज्ञान (मासिक)
१५६७, हरध्यानसिंह मार्ग
करोल बाग, नई दिल्ली-५
दूरभाष : ५६६६३६

D.A.V.P. से स्वीकृत

दिसम्बर १९७६

रजि० नं०
डी०—(सी०) २०
R.N. No. 107119/65

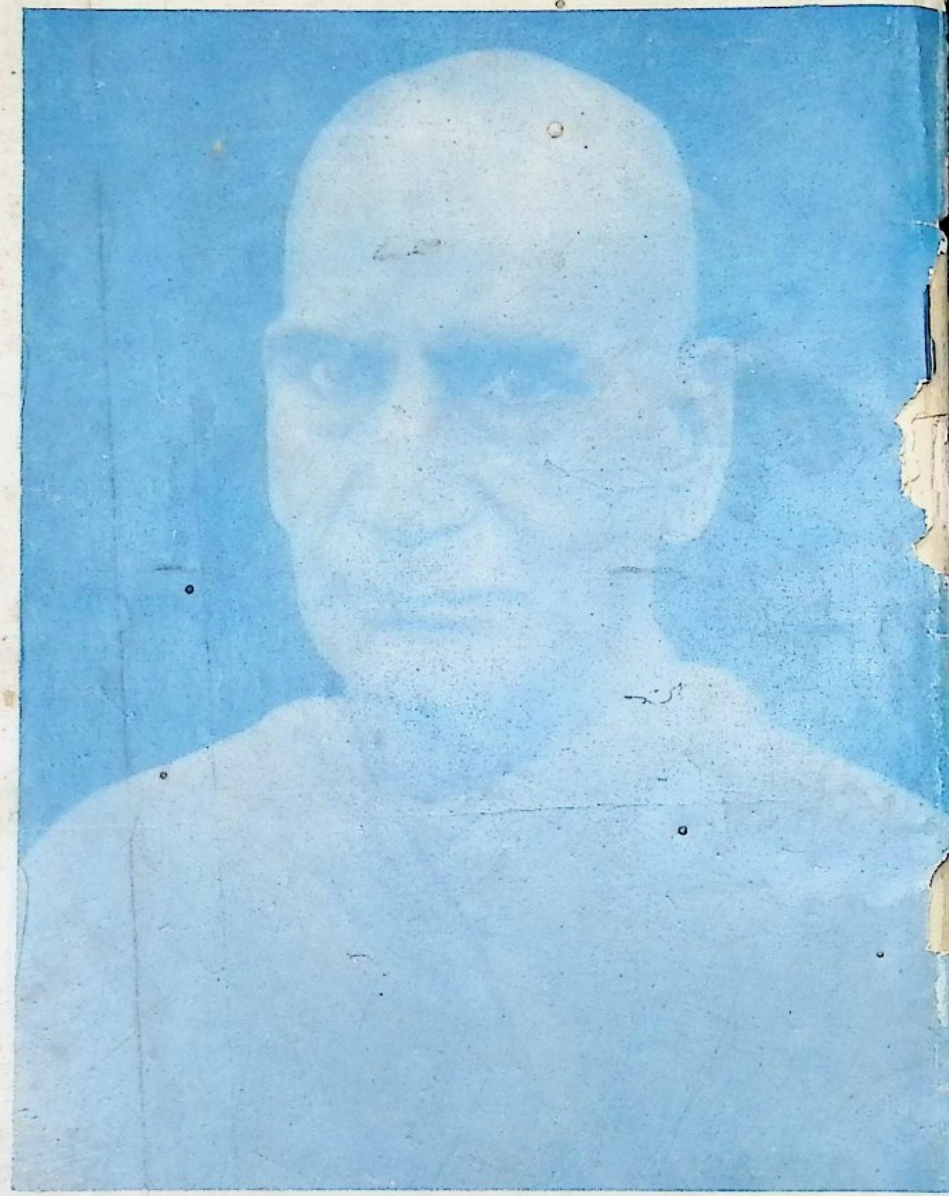

अमर शहीद श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द जी सरस्वती

जन्म—फाल्गुन वदी १३ संवत १९१३ बलिदान २३-१२-२६

CC-0. Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi.